विभागीय जांच

विनोद कुमार सिंह

न्यायिक प्रशिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान, उ.प्र.

1/19, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर

लखनऊ

दो शब्द

विभागीय जाँच, संपार्श्विक अतीत में, प्रशासन की एक अक्षुण्ण शक्ति की परिचायिका थी। हस्तक्षेप या तो शून्य था, अथवा नगण्य। शनैः शनैः नियमों एवं उप नियमों ने अपनी अपनी पकड़ जोड़ी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों की व्याख्याओं ने उनमें प्रासंगिक निर्वचन विरोध और नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों को संजोया। अब इस विशाल क्षेत्र का एक-एक बिन्दु विधिक सीमाओं से ग्रस्त एवं प्रशस्त है।

श्री विनोद कुमार सिंह, उप निदेशक, का इस दुरूह विषय पर श्रम सराहनीय है। विभागीय कार्यवाही के "श्रीगणेश" से "अंत" तक कोई पक्ष उनकी लेखनी से छूटा नहीं है। मेरा विश्वास है कि पुस्तक की उपयोगिता भविष्य की एक स्थाई धरोहर होगी।

शुभकामनाओं सहित,

अक्षय बिहारी सक्सेना

निदेशक

न्यायिक प्रशिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान,

मार्च ,1992

उत्तर प्रदेश,

लखनऊ

भूमिका

विभागीय जाँच की प्रक्रिया एवं अनुषंगिक विषय कई अधिनियमों, नियमावलियों, शासनादेशों एवं निर्णयज विधियों में बिखरे हुए हैं। सरकारी सेवक, सामान्यतया, इन विधाओं से भिज्ञ नहीं हो पाते हैं, क्योंकि उन्हें ऐसी पाठ्य सामग्री उपलब्ध नहीं हो पाती, जिसमें जाँच की सम्पूर्ण विधियाँ समेकित हों।

इस पुस्तक द्वारा प्रयास किया गया है कि विभागीय जाँच की सम्पूर्ण विधियों को, समेकित रूप से, उपलब्ध कराया जाए।

इस पुस्तक की कम्पोजिंग, प्रूफरीडिंग एवं विषयानुक्रमणिका आदि तैयार करने में संस्थान के सर्वश्री बृजेन्द्र सिंह कोतवाल, भास्करानन्द पांडेय, दीपक चन्द्र कापरी एवं अरविन्द शंकर ने रचनात्मक योगदान दिया है।

पाठकगण के सुझाव का, भविष्य में, मार्गदर्शन हेतु, स्वागत है।

लेखक

विभागीय जाँच

विषय-वस्तु

वादानुक्रमणिका
संदर्भित अधिनियम एवं नियमावलियाँ
संक्षेपाक्षर

अध्याय		पृष्ठ
एक	सरकारी सेवा, नियुक्तियाँ व सेवाशर्तें	1
दो	प्रसाद का सिद्धान्त	17
तीन	प्रत्याशित आचरण	27
चार	दुराचरण	35
पाँच	दण्ड	43
	लघुदण्ड	44
	महादण्ड	51
छः	जाँच प्रक्रिया	69
	लघुदण्ड देने के लिए जाँच प्रक्रिया	69
	महादण्ड देने के लिए जाँच प्रक्रिया	75
सात	विभागीय जाँच की अपेक्षाएं	156
	नैसर्गिक न्याय का सिद्धान्त	159
आठ	जाँच के अपवाद	175
नौ	दूसरी जाँच	184
दस	दाण्डिक विचारण एवं विभागीय जाँच	188
ग्यारह	न्यायिक अधिकारियों के विरुद्ध जाँच	194
बारह	सेवानिवृत्त होने पर जाँच	199

तेरह	अधिकरण द्वारा जाँच	209
चौदह	निलम्बन	214
पन्द्रह	अस्थायी सेवकों की सेवा समाप्ति	239
सोलह	वैकल्पिक सेवानिवृत्ति	248

परिशिष्ट

एक	अनुशासनिक कार्यवाही सम्बन्धी शासकीय निदेश	258
दो	आरोप-पत्र का प्ररूप	275
तीन	साक्षी को समन का प्ररूप	277
चार	निलम्बन आदेश का प्ररूप	278
पाँच	अस्थायी सेवक की सेवा समाप्ति की नोटिस का प्ररूप	280
	विषयानुक्रमणिका	285

वादानुक्रमणिका

अकल सेवक सिंह बनाम पंजाब राज्य	124
अर्जुन चौबे बनाम भारत संघ	167
अनिल कुमार सिंह बनाम उ0प्र0 राज्य	102,103,109
अनिल कुमार शील बनाम मदन मोहन मालवीय इंजीनियरिंग कालेज	136
अम्मर सिंह बनाम पंजाब राज्य	58,66
अब्दुल अजीज खान बनाम भारत संघ	41
अमूल्य रतन मुखर्जी बनाम डिप्टी चीफ मेकैनिकल इंजीनियर	90,91
अवतार सिंह बनाम आई0जी0	140,
असम राज्य बनाम बिमल कुमार पंडित	137,143
असम राज्य बनाम मोहन चन्द्र	130
आई0डी0 गुप्ता बनाम दिल्ली प्रशासन	106
आई0एन0 सक्सेना बनाम मध्य प्रदेश राज्य	252
आनन्द नारायण शुक्ला बनाम मध्य प्रदेश राज्य	186
आंध्र प्रदेश राज्य बनाम मोहम्मद सरवर	124,172
आंध्र प्रदेश राज्य बनाम श्री रामाराव	130,191
आबिद मोहम्मद खान बनाम राज्य	214,223
आयल एण्ड नेचुरल गैस कमीशन बनाम डाक्टर स्कन्दर अली	234,242
आर0सी0 लेसी बनाम बिहार राज्य	237
आर0के0 तिवारी बनाम भारत संघ	115,121
आर0एम0 मलकानी बनाम महाराष्ट्र राज्य	126
आर0पी0 कपूर बनाम भारत संघ	191
आर0पी0 कुमार बनाम भारत संघ	215,216,228
आशुतोष बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य	109
ईश्वर चन्द्र अग्रवाल बनाम पंजाब राज्य	195
ई0 वेंकटेश्वर राव नायडू बनाम भारत संघ	252
उच्च न्यायालय,कलकत्ता बनाम अमल कुमार राय	50,55,56
उड़ीसा राज्य बनाम राम नारायण दास	63,242
उड़ीसा राज्य बनाम डा0 बीनापाणि देई	161,162,171
उड़ीसा राज्य बनाम शिव प्रसाद दास	216
उ0प्र0 राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम उ0प्र0 लोक सेवा अधिकरण	6
उ0प्र0 राज्य बनाम बाबू राम उपाध्याय	22

उ0प्र0 राज्य बनाम साबिर हुसैन	60
उ0प्र0 राज्य बनाम श्याम लाल शर्मा	68,250
उ0प्र0 राज्य बनाम नारायण सिंह	78,93
उ0प्र0 राज्य बनाम राम नरेश लाल	86
उ0प्र0 राज्य बनाम मोहम्मद शरीफ	99
उ0प्र0 राज्य बनाम मोहम्मद नूह	109,167
उ0प्र0 राज्य बनाम सी0एस0 शर्मा	121
उ0प्र0 राज्य बनाम ओम प्रकाश	125
उ0प्र0 राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम उ0प्र0राज्य	131
उ0प्र0 राज्य बनाम मनबोधन लाल श्रीवास्तव	148
उ0प्र0 राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम मुनुरुद्दीन	173
उ0प्र0 राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम उ0प्र0 लोक सेवा अधिकरण	177
उ0प्र0 राज्य बनाम जय सिंह दीक्षित	218
उ0प्र0 राज्य बनाम कौशल किशोर शुक्ला	233,236,237 238,239,244
ए0आर0एस0 चौधरी बनाम भारत संघ	76,84,90, 121
ए0के0 केयक बनाम भारत संघ	159,168
ए0के0 वर्मा बनाम जिलाधिकारी गोरखपुर	221
ए0जी0 बेन्जामिन बनाम भारत संघ	237,242
ए0बी0 कृष्णामूर्ति बनाम तमिलनाडु राज्य	103,114
एच0के0 खन्ना बनाम भारत संघ	155
एच0एल0 मेहरा बनाम भारत संघ	214,224
एन0एस0 रमारेड्डी बनाम श्री बी0बी0 गिरी	126
एम0पी0 चाह्वाण बनाम महाराष्ट्र राज्य	221
एम0एम0 रबर क0लि0,मद्रास बनाम एस0 नटराजन	192
एस0एन0 मुखर्जी बनाम भारत संघ	159
एस0एस0 पाण्डेय बनाम मध्य प्रदेश राज्य	184
एस0के0 घोष बनाम भारत संघ	56
एस0के0 जार्ज बनाम केरल विश्वविद्यालय	163
एस0गोविन्द मेनन बनाम भारत संघ	36
एस0 दोराई स्वामी बनाम भारत संघ	155
एस0 पार्थसारथी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य	108,171
एस0 प्रताप सिंह बनाम पंजाब राज्य	126
एस0बी0जी0 अयंगर बनाम बनाम महाराष्ट्र राज्य	184
एस0 सभापति बनाम तमिलनाडु राज्य	93,94
एस0सी0 चक्रवर्ती बनाम पश्चिम बंगाल राज्य	96

ओम प्रकाश गुप्ता बनाम उ0प्र0 राज्य 215
ओलगाटेलिस बनाम बम्बई म्युनिसिपल कारपोरेशन 158

कलकत्ता जूट मैनुफेक्चरिंग कं0 बनाम वर्कर्स यूनियन 37
कलकत्ता उच्च न्यायालय बनाम अमल कुमार 195
कामेश्वर बनाम राज्य 24
काशीनाथ दीक्षित बनाम भारत संघ 99
कारपोरेशन आफ नागपुर बनाम रामचन्द्र 191
कासी लिंगम बनाम पी0एस0जी0 कालेज 199
कुलवन्त सिंह गिल बनाम पंजाब राज्य 49
के0 माधवन बनाम आयकर आयुक्त कोचीन 47
के0एस0 राव बनाम तमिल नाडु राज्य 41
के0 फारूक अहमद बनाम भारत संघ 126
के0एम0 सोलंकी बनाम अधीक्षक, पोस्ट आफिस 191
कृष्ण चन्द्र बनाम भारत संघ 113

खेम चन्द बनाम भारत संघ 77,78,137, 171,214

गुलाम मोहिउद्दीन बनाम पश्चिम बंगाल राज्य 36
गोविन्द शंकर बनाम आंध्र प्रदेश राज्य 109

चन्द्र कान्त बनाम महाराष्ट्र राज्य 37
चन्द्रमा तिवारी बनाम भारत संघ 96,100
चम्पक लाल बनाम भारत संघ 65,89,90

जगदीश प्रसाद सक्सेना बनाम मध्य भारत राज्य 105
जगदीश प्रसाद सिंह बनाम उ0प्र0 राज्य 116
जगदीश मितर बनाम भारत संघ 64,236,237, 238
जनरल मैनेजर ईस्टर्न रेलवे बनाम ज्वाला प्रसाद सिंह 110,135
जनरल मैनेजर दक्षिणी रेलवे बनाम रंगाचारी 157
जय शंकर बनाम राजस्थान राज्य 14
जे0 महापात्रा बनाम उड़ीसा राज्य 110,163,167
जसवन्त सिंह बनाम पंजाब राज्य 181
जंग बहादुर सिंह बनाम बैजनाथ 189

टाटा आयल मिल्स कं0लि0 बनाम कर्मकार 189
टी0एन0 बन्सल बनाम हरियाणा राज्य 72
टी0एन0 वर्मा का मामला 123
टी0 काजी बनाम यू0जे0 सिरेम 216

डा0एस0एस0 अहलूवालिया बनाम गोविन्द बल्लभ पंत विश्वविद्यालय 41
डा0 जी0 सरन बनाम लखनऊ विश्वविद्यालय 169
डा0 बूल चन्द बनाम कुलपति, कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय 40
डा0 श्रीमती सुमति पी0 सेरी बनाम भारत संघ 234
डी0आई0जी0 बनाम अमलनाथन 110
डी0ए0 कोरेगाँवकर बनाम बम्बई राज्य 109
डी0टी0सी0 बनाम डी0टी0सी0 मजदूर कांग्रेस एवं अन्य 2,6,157
डी0डी0 सहमत बनाम पंजाब नेशनल बैंक 189
डी0बी0 पठान बनाम भारत संघ 115,123
डी0 रामास्वामी बनाम तमिल नाडु राज्य 255
डी0सी0 दास बनाम भारत संघ 60

तारा सिंह बनाम राजस्थान राज्य 68

द्वारका चन्द्र बनाम राजस्थान राज्य 184
दिल्ली क्लोथ एण्ड जनरल मिल्स लि0 बनाम कोशलभान 188
दिल्ली ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन बनाम डी0टी0सी0 मजदूर संघ कांग्रेस 240
देवेन्द्र बनाम उ0प्र0 राज्य 184,186

नन्द किशोर प्रसाद बनाम बिहार राज्य 103,114
नथान सिंह बनाम भारत संघ 47
नारायण प्रसाद बनाम उड़ीसा राज्य 215
नीलकण्ठ मिश्र बनाम उड़ीसा राज्य 206,207
नेपाल सिंह बनाम उ0प्र0 राज्य 242

पंजाब लैंड डेवलपमेंट कारपोरेशन का मामला 244
पंजाब राज्य बनाम अमर सिंह हरिका 150
पंजाब राज्य बनाम इकबाल सिंह 201
पंजाब राज्य बनाम के0आर0 परी 201

पंजाब राज्य बनाम खेमीराम	151,199,222
पंजाब राज्य बनाम जगदीप सिंह	56
पंजाब राज्य बनाम दीवान चुनी लाल	124,173
पंजाब राज्य बनाम भगत राम	98
पंजाब राज्य बनाम युवराज बहादुर	67
पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय बनाम हरियाणा राज्य	195
प्रकाश नाथ बनाम वित्त आयुक्त	184
प्रताप सिंह बनाम पंजाब राज्य	188
प्रद्युत कुमार बोस बनाम माननीय मुख्य न्यायाधीश, कलकत्ता उच्च न्यायालय	107,108
पश्चिम बंगाल राज्य बनाम नृपेन्द्र नाथ बागची	195,196,198
पी0आर0 नायक बनाम भारत संघ	215,216,229
पी0 इममबरम् पेन्नुरंगम बनाम जी0एम0, मैसूर राज्य परिवहन विभाग	190
पी0एन0 मजोगे बनमा मध्य प्रदेश राज्य	98
पी0 चनप्पा बनाम मैसूर राजस्व अपीलीय अधिकरण	190
पी0वी0 सुधाकरन बनाम केरल स्टेट फाइनेन्सिंग इन्टरप्राइजेज	199
पुत्तु लाल मिश्र बनाम भारत संघ	15
पुन्नोज बनाम मैनेजर, पी0 एण्ड टी0 मोटर सर्विस, कोचीन	51,72
पुरूषोत्तम लाल धिंगरा बनाम भारत संघ	6,20,53,61, 62,67,238
प्यारे लाल शर्मा बनाम एम0डी0	37
फुलबारी टी स्टेट बनाम इसके कर्मकार	125
बम्बई राज्य बनाम एफ0ए0 अब्राहम	54
बम्बई राज्य बनाम नरूललतीफ खान	121,122
बम्बई राज्य बनाम सुभग चन्द दोशी	252,253
बरदकान्त मिश्र बनाम उड़ीसा उच्च न्यायालय	56,60,195
ब्रज किशोर दास बनाम उड़ीसा राज्य	95
ब्रज मोहन सिंह बनाम बिहार राज्य	252,254
बलदेव सिंह बनाम पंजाब राज्य	38
बलदेव राज बनाम भारत संघ	253,254
बलदेव राज बनाम पंजाब राज्य	255
बिहार राज्य बनाम अब्दुल माजिद	17
बिहार राज्य बनाम शिवभिक्षुक मिश्रा	60
बिहार राज्य बनाम गोपी किशोर	245

बी0बी0 पाण्डेय बनाम प्रधानाचार्य, के0जी0एम0सी0	109
बी0एम0 त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	15
बी0आर0 पटेल बनाम महाराष्ट्र राज्य	216,229
बी0आर0सिंह बनाम भारत संघ	150
बोर्ड आफ ट्रस्टीज बम्बई पोर्ट बनाम दिलीप कुमार राघवेन्द्र नाथ नादकर्णी	112
भगत राम बनाम हिमाचल प्रदेश	95,112,150
भगवान सिंह बनाम डिप्टी कमिश्नर, सीतापुर	189
भारत संघ बनाम आर0एस0 धाबा	58
भारत संघ बनाम इन्द्रजीत राजपूत	256
भारत संघ बनाम ई0 बशायन्	140
भारत संघ बनाम एच0सी0 गोयल	130,134,135, 139
भारत संघ बनाम एम0पी0 पटनायक	110,186
भारत संघ बनाम जे0 अहमद	35,36
भारत संघ बनाम जे0एन0 सिन्हा	163,252,256
भारत संघ बनाम टी0आर0 वर्मा	78,158
भारत संघ बनाम तुलसी राम पटेल	17,21,22,23, 24,43,68,78, 157,162,163, 176,177,179, 180,181,183,
भारत संघ बनाम पी0के0 राय	164
भारत संघ बनाम बख्शी राम	192
भारत संघ बनाम मोहम्मद रमज़ान खान	142
भारत संघ बनाम सरदार बहादुर	130
भीम सिंह सरदार सिंह बनाम कारागार अधीक्षक	149
मदन गोपाल बनाम पंजाब राज्य	238,242
मदन लाल बनाम भारत संघ	109,154
मद्रास राज्य बनाम ए0आर0 श्रीनिवासन	130
मध्य प्रदेश राज्य बनाम चिन्तामन	78,79
मध्य प्रदेश बनाम लाडली सरन सिन्हा	188,190
मध्य प्रदेश राज्य बनाम सारदुल सिंह	23,87,157
मसद्दीलाल बनाम भारत संघ	37
महाराष्ट्र राज्य बनाम बी0ए0 जोशी	140
महाराष्ट्र राज्य बनाम शिवसप्पा	125
महावीर आटो स्टोर बनाम भारतीय तेल निगम	156,160
महेश चन्द्र जिन्दल बनाम उ0प्र0 राज्य	201
माधो सिंह बनाम बम्बई राज्य	39
मिहिर कुमार दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य	223
मुख्यन्यायाधीश आंध्र प्रदेश बनाम एल0बी0ए0 दीक्षितलु	196,250

मुमताज हुसैन अंसारी बनाम उ0प्र0 राज्य	121,122
मुरली सरन सहाय सिन्हा बनाम उ0प्र0 राज्य	202,204,205
मे0बनारस इलेक्ट्रिकसिटी लाइट एण्ड पावर कम्पनी बनाम लेबर कोर्ट	131
मे0महावीर प्रसाद संतोष कुमार बनाम उ0प्र0 राज्य	136,155
मेनका गाँधी बनाम भारत संघ	158,159,161,163
मैनेजमेण्ट, मेसर्स एम0एस0 नेशनल भारत इंजीनियरिंग कम्पनी लि0 बनाम बिहार राज्य	161
मैसूर राज्य बनाम के0 मांचेगोड़ा	94
मोतीराम डेका बनाम एन0ई0 फ्रन्टियर रेलवे	22,24
मोहम्मद उमर बनाम आई0जी0,उ0प्र0 पुलिस	91
मो0 शरीफ खान बनाम ओंकार सिंह	90
मोहिन्दर सिंह गिल बनाम मुख्य चुनाव आयुक्त, नई दिल्ली	161
यूसुफ अली बनाम महाराष्ट्र राज्य	126
रघुनाथ ठाकुर बनाम बिहार राज्य	161
रघुबीर सिंह चौहान बनाम उ0प्र0 राज्य सड़क परिवहन निगम	255
रमेश चन्द्र वर्मा बनाम आर0डी0 वर्मा	184
रवीन्द्र कुमार मिश्रा बनाम यू0पी0 हैण्डलूम कारपोरेशन लि0	243
राम चन्द्र बनाम पश्चिम बंगाल राज्य	6
राम चन्द्र राम बनाम भारत संघ	93
राम नरेश बनाम उ0प्र0 राज्य	109
रामु बापू गायकवाड़ बनाम महाराष्ट्र राज्य	113
राम लाल खुराना बनाम पंजाब राज्य	8
राम लाल बनाम भारत संघ	105
राम सिंह व अन्य बनाम कर्नल राम सिंह	126
रोशन लाल बनाम भारत संघ	2
लक्ष्मी नारायण पाण्डेय बनाम जिलाधिकारी,बलिया	38
वशिष्ठ नारायण बनाम कमिश्नर इन्कमटैक्स,बिहार	256
वी0बी0 पाण्डेय बनाम प्रधानाचार्य के0जी0एम0सी0	150
वी0 मुप्पन बनाम राज्य	186
वी0पी0 गिन्डरोनिया बनाम म0प्र0 राज्य	229,230

वेद प्रकाश गुप्ता बनाम मे0 डेल्टन केबिन इंडिया	149
वैंकटेश्वर राव नायडू बनाम भारत संघ	252
श्याम लाल रोशन लाल बनाम पंजाब राज्य	123
श्याम लाल बनाम उ0प्र0 राज्य	248,249,250, 252
शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य	195,238,240
शर्मानन्द बनाम सुपरिन्टेण्डेण्ट,गन कैरेज फैक्ट्री,जबलपुर	125
शिव शंकर तिवारी बनाम उ0प्र0 लोक सेवा अधिकरण	225
सत्यवीर सिंह बनाम भारत संघ	78,176,177, 179,180,181, 183
सम्पूरन सिंह बनाम पंजाब राज्य	86,87
सरदार बहादुर बनाम भारत संघ	190
सरदारी लाल बनाम भारत संघ	23
सवाई सिंह बनाम राजस्थान राज्य	93
स्वदेशी कटन मिल्स बनाम भारत संघ	161
सिकन्दर सिंह बनाम भारत संघ	130
सी0एल0 सुब्रमणियम बनाम कस्टम कलेक्टर,कोचीन	113
सी0डी0 आइलावाडी बनाम भारत संघ	256
सुखबीर सिंह बनाम पुलिस उपायुक्त,नई दिल्ली	115,149
सुरेन्द्र चन्द्र दास बनाम संघीय राज्य क्षेत्र त्रिपुरा	95,130
सैक्रेटरी सेन्ट्रल बोर्ड आफ एक्साइज एण्ड कस्टम बनाम के0एस0 महालिंगम	140
सेन्ट्रल बैंक आफ इण्डिया बनाम प्रकाश चन्द्र जैन	103,114
हीर सिंह बनाम उ0प्र0 राज्य	192
हरियाणा राज्य बनाम इन्दर प्रकाश आनन्द	197
हरियाणा राज्य बनाम रतन सिंह	126,131
हीरा नाथ मिश्रा बनाम प्रधानाचार्य,राजेन्द्र मेडिकल कालेज, रांची	163,171
हेमन्त कुमार बनाम एस0एन0 मुकर्जी	222
त्रिलो राम बनाम बी0के0 सेठ	177
त्रिपुरा संघीय राज्य क्षेत्र बनाम गोपाल चन्द्र दत्तचौधरी	87,240
त्रिलोक नाथ बनाम भारत संघ	98
श्रीकान्त बनाम भारत संघ	109
श्रीमती राजेन्द्र कौर बनाम पंजाब राज्य	241

संदर्भित अधिनियम एवं नियमावलियाँ

	पृष्ठ
अखिल भारतीय सेवाएं (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1969	46, 71, 96, 129, 133, 217
अखिल भारतीय सेवाएं (आचरण) नियमावली, 1968	27, 36
उ0प्र0 नगरमहापालिका सेवा नियमावली, 1966	70
उ0प्र0 मूल नियमावली, 1942	3, 4, 13, 226, 250
उ0प्र0 राज्य सड़क परिवहन निगम कर्मचारी (अधिकारियों से भिन्न) सेवा विनियमावली, 1981	36, 45, 71, 217, 228
उ0प्र0 सरकारी सेवक आचरण नियमावली, 1956	27, 36
केन्द्रीय सिविल सेवाएं (आचरण) नियमावली, 1964	27
गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया एक्ट, 1919	17
गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया एक्ट, 1935	17
दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973-	
धारा-175	119
धारा-178	119
धारा-179	119
धारा-180	120
धारा-345	118, 120
धारा-346	118, 120

पनिशमेण्ट ऐण्ड अपील रूल्स फार सबोर्डिनेट सर्विसेज, यू0पी0 1932	44,45,48,69, 70,217,228
भारत का संविधान-	
अनुच्छेद-14	156
अनुच्छेद-16	156
अनुच्छेद-124[4]	18
अनुच्छेद-148[1]	18
अनुच्छेद-218	18
अनुच्छेद-235	194,196
अनुच्छेद-309	23
अनुच्छेद-310[1]	17
अनुच्छेद-311	51,56,75, 139
अनुच्छेद-311[1]	19
अनुच्छेद-311[2]	76,136,138, 175,178,199, 236,246
अनुच्छेद-320	145
अनुच्छेद-324[5]	19
भारतीय विदेश सेवा[आचरण एवं अनुशासन] नियमावली,1961	27
यू0पी0 डिसिप्लिनरी प्रोसीडिंग्स[ऐडमिनिस्ट्रेटिव ट्रिब्यूनल] रूल्स,1947	74,148,204, 209
यू0पी0 म्युनिसिपल बोर्डस सर्वेन्ट्स [इन्क्वायरी, पनिशमेण्ट ऐण्ड टर्मिनेशन आफ सर्विस] रूल्स	46,70
यू0पी0 स्टेट इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड [आफीसर्स ऐण्ड सर्वेन्ट्स] [कन्डीशन्स आफ सर्विसेज] रेगुलेशन्स,1975	44,70,217

यू0पी0 सबोर्डिनेट कोर्ट स्टाफ़|पनिशमेण्ट ऐण्ड अपील|रूल्स, 1976 — 70

यूनियन-पब्लिक सर्विस कमीशन|एक्जेमशन्स फ्राम कन्सल्टेशन| रेगुलेशन्स, 1958 — 74, 148

रेलवे सर्वेण्ट्स|डिसिप्लिन ऐण्ड अपील|रूल्स, 1968 — 46, 96, 128, 129, 133, 217, 228

रेलवे सेवाएं|आचरण| नियमावली, 1966 — 27, 36

वित्तीय हस्त पुस्तिका खण्ड-2, भाग 2-4 — 4, 14

सिविल सर्विसेज|क्लासिफिकेशन, कंट्रोल ऐण्ड अपील| रूल्स, 1930 — 44, 45, 55, 69, 70, 83, 93, 96, 128, 129, 133, 217, 223, 224, 227, 228

सेन्ट्रल सिविल सर्विसेज|क्लासिफिकेशन, कंट्रोल ऐण्ड अपील|रूल्स, 1965 — 3, 36, 46, 71, 83, 96, 217, 228

संक्षेपाक्षर

आ0इं0रि0	=आल इण्डिया रिपोर्टर
एफ0एल आर0	=फैक्ट्रीज एण्ड लेबर ला रिपोर्टस
एस0सी0आर0	=सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट
एस0सी0सी0	=सुप्रीम कोर्ट केसेज
क्रि0ला ज0	=क्रिमिनल ला जर्नल
दी0प्र0सं0	=दीवानी प्रक्रिया संहिता
ले0इं0के0	=लेबर एण्ड इण्डस्ट्रियल केसेज
स0ला ज0	=सर्विस ला जर्नल
स0ला रि0	=सर्विस ला रिपोर्ट
सु0को0	=सुप्रीम कोर्ट
सु0को0रि0	=सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट
सु0को0के0	=सुप्रीम कोर्ट केसेज

अध्याय- एक

सरकारी सेवा, नियुक्तियाँ व सेवाशर्तें

सरकारी सेवकों को, दुराचरण, कर्तव्य के प्रति उपेक्षा, अक्षमता आदि के लिए, विभागीय स्तर पर दण्डित करने से पूर्व तत्सम्बन्धी "नियत प्रक्रिया" का अनुपालन करना अनिवार्य है। यह नियत प्रक्रिया "विभागीय जाँच" कहलाती है। परन्तु कुछ मामलों में पद के लिए अयोग्यता के आधार पर, या लोकहित में, सरकारी सेवकों की सेवा समाप्त करनी होती है तथा इसका विनिश्चय करने से पूर्व सक्षम प्राधिकारी जाँच करते हैं, जो उक्त चर्चित विभागीय जाँच से स्पष्टतः और पूर्णतः भिन्न है। इस विभेद को समझने के लिए सरकारी सेवा एवं नियुक्तियों की प्रकृति, पद धारण करने के अधिकार एवं अनिवार्य सेवा शर्तों का ज्ञान होना आवश्यक है।

किसी भी देश अथवा राज्य की शासन प्रणाली में सिविल सेवाओं का होना अपरिहार्य है। यद्यपि लोकतंत्रात्मक राष्ट्र में राज्य की नीतियों का निर्धारण जन प्रतिनिधियों अर्थात मन्त्रियों या मन्त्रिमण्डलों द्वारा किया जाता है, परन्तु उन नीतियों के क्रियान्वयन हेतु सिविल सेवाओं का होना परम् आवश्यक है। राज्य की नीतियों का क्रियान्वयन केवल अनुशासनबद्ध, योग्य एवं चरित्रवान सिविल सेवकों द्वारा ही सम्भव है। सिविल सेवा का अर्थ सशस्त्र सेना की सेवाओं को छोड़कर ऐसी सेवाओं से है, जो राज्य के प्रति समर्पित हो एवं उसके वेतन का भुगतान राज्य द्वारा किया जाता हो।

सरकारी सेवा [सिविल सेवा] तथा निजी [प्राइवेट] सेवा के बीच मूलभूत अन्तर है। निजी [प्राइवेट] सेवा पूर्णतः संविदा पर आधारित होती है। नियोजक एवं कर्मकार के बीच "मालिक-सेवक" का सम्बन्ध होता है और यह सम्बन्ध सम्पूर्ण सेवावधि के दौरान बना रहता है। प्राइवेट सेवकों के अधिकार एवं दायित्व उभय पक्षों की सहमति के आधार पर अवधारित होते हैं।

इसके विपरीत सरकारी सेवा, यद्यपि आरम्भ में संविदा पर आधारित होती है, तथापि सेवा में नियोजित हो जाने के उपरान्त यह "प्रास्थिति" [स्टेटस] का विषय हो जाता है। प्रत्येक सरकारी-सेवा के मामले में शासन का प्रस्ताव होता है, जिसका प्रतिग्रहण अभ्यर्थीगण द्वारा किया जाता है, अतः सरकारी सेवा की शुरुआत संविदा पर आधारित होती है परन्तु जैसे ही वह अभ्यर्थी सरकारी-सेवा में किसी पद पर नियुक्त कर दिया जाता है, वैसे ही वह सेवा में एक "प्रास्थिति" अर्जित कर लेता है। विधि-शास्त्र के शब्दों में "प्रास्थिति" एक ऐसे समुदाय की सदस्यता की शर्त है जिसके सदस्यों की शक्तियाँ और कर्तव्य, पक्षों की संविदा द्वारा नहीं अपितु कानून द्वारा अभिनिर्धारित होते हैं। सरकारी सेवकों के अधिकार एवं दायित्व उभय पक्षों की सहमति द्वारा अभिनिर्धारित नहीं होते हैं, बल्कि कानून एवं नियमावलियों द्वारा अभिनिर्धारित होते हैं, जिन्हें शासन द्वारा एकपक्षीय रूप से विरचित एवं परिवर्तित किया जा सकता है।[1] अतः सरकारी सेवा का विशिष्ट लक्षण "प्रास्थिति" है तथा सरकारी सेवक की विधिक स्थिति "संविदा" के स्थान पर "प्रास्थिति" पर आधारित होती है।

सरकारी सेवक

सरकारी सेवक की सर्वमान्य परिभाषा कहीं नहीं दी गई है। विभिन्न सेवा नियमावलियों में सरकारी सेवक को परिभाषित किया गया है। लेकिन यह परिभाषा सम्बन्धित नियमावली के संदर्भ में ही लागू होती है। भारत के संविधान में भी सरकारी सेवक को परिभाषित नहीं किया गया है, परन्तु अनुच्छेद 310 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि सरकारी सेवक का अर्थ-

1· भारत संघ के सिविल सेवा के सदस्यों से है, या

1· रोशन लाल बनाम भारत संघ-आ·ई·आर·1967 सु·को·1889, एवं डी·टी·सी· बनाम डी·टी·सी· मजदूर कांग्रेस एवं अन्य-1991 [1] ए·ला·ज·56 [सु०को०]

2. अखिल भारतीय सिविल सेवा के सदस्यों से है, या
3. राज्य की सिविल सेवा के सदस्यों से है, या
4. भारत संघ या राज्य के अधीन सेवा के पदधारकों से है, या
5. भारत संघ की रक्षा सेवा के सदस्यों से है, या
6. रक्षा से सम्बन्धित किसी पद को धारण करने वाले व्यक्ति से है।

सेन्ट्रल सिविल सर्विसेज [क्लासिफिकेशन, कंट्रोल एण्ड अपील] रूल्स, 1965 के नियम 2[एच] में इस नियमावली के प्रयोजन हेतु "सरकारी सेवक" की परिभाषा दी हुई है। जिसके अनुसार सरकारी सेवक का अर्थ ऐसे व्यक्ति से है-

1. जो भारतीय संघ की सेवा का सदस्य हो, या संघ के अधीन सिविल पद धारण करता हो। इसमें वे सभी व्यक्ति सम्मिलित है, जो बाह्य सेवा में हों अथवा जिनकी सेवाएं अस्थायी रूप से राज्य सरकार या अन्य स्थानीय प्राधिकारी के नियन्त्रणाधीन कर दी गयी हों।
2. जो राज्य सरकार की सेवा का सदस्य हो या राज्य के अधीन सिविल पद धारण करता हो एवं उसकी सेवाएं अस्थायी रूप से केन्द्र सरकार के नियन्त्रणाधीन कर दी गयी हों।
3. जो स्थानीय अथवा अन्य प्राधिकारी की सेवा में हो एवं उसकी सेवाएं अस्थायी रूप से केन्द्र सरकार के नियंत्रणाधीन कर दी गई हों।

उत्तर प्रदेश मूल नियमावली, 1942 के नियम 9[7-ख] में, इस नियमावली के प्रयोजन हेतु सरकारी सेवक को परिभाषित किया गया है, जिसके अनुसार सरकारी सेवक का तात्पर्य उन व्यक्तियों से है जो भारतीय गणतंत्र में किसी सिविल पद पर अथवा सिविल सेवा में नियुक्त हों तथा उत्तर प्रदेश के शासकीय कार्यों के संचालन के संबंध में सेवा कर रहे हों और उनकी सेवा शर्तें राज्यपाल द्वारा निर्धारित की गई हों अथवा की जा सकती हों।

अतः किसी भी देश या प्रदेश की सिविल एवं रक्षा सेवाओं के सदस्यों को सरकारी सेवक कहा जा सकता है।

सरकारी सेवा

सरकारी सेवा में सिविल सेवा एवं रक्षा सेवा, दोनों ही, सम्मिलित हैं। सिविल सेवा का तात्पर्य राज्य की सिविल प्रशासन की सेवाओं से है। रक्षा सेवाओं का तात्पर्य देश की सुरक्षा से संबंधित सेवाओं से है। अतः प्रत्येक सिविल सेवा तो सरकारी सेवा होती है परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक सरकारी सेवा, सिविल सेवा हो।

प्रत्येक सरकारी सेवा का एक संवर्ग होता है। संवर्ग [कैडर] का अर्थ उस सेवा के संपूर्ण पदों की संख्या से है अथवा किसी सेवा के एक भाग के, जो अलग इकाई के रूप में स्वीकृत हो, पदों की कुल संख्या से है।[2]

पदों का वर्गीकरण

सरकारी सेवा में नियुक्तियों हेतु पदों को मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है:-

1. स्थायी पद
2. अस्थायी पद

वित्तीय हस्त पुस्तिका खण्ड-2, भाग 2-4, में उ0प्र0 मूल नियमावली,1942 दी हुई है, जो भाग 2 में अंतर्विष्ट है। इस नियमावली के मूल नियम 9 में परिभाषाएं दी हुई हैं।

"स्थायी पद" की परिभाषा मूल नियम 9[22] में दी हुई है, जिसके अनुसार स्थायी पद का तात्पर्य ऐसे पद से है, जिसके वेतन की एक निश्चित दर, समय की सीमा लगाए बगैर, स्वीकृत की गई हो।

मूल नियम 9[3] में अस्थाई पद को परिभाषित किया गया है, जिसके अनुसार "अस्थायी पद" का तात्पर्य ऐसे पद से है, जिसके वेतन की एक निश्चित दर, एक सीमित समय के लिए स्वीकृत की गई हो।

सरकारी सेवा में किसी व्यक्ति की नियुक्ति, स्थायी अथवा अस्थायी पद पर, निम्नलिखित में से किसी एक प्रकार की हो सकती

---

2. मूल नियम 9[4]

है:-

1. अधिष्ठायी [सब्सटेन्टिव], या
2. परिवीक्षा पर, या
3. स्थानापन्न।

स्थायी पद पर अधिष्ठायी नियुक्ति से संबंधित सेवक को उस पद पर बने रहने का वास्तविक अधिकार प्राप्त हो जाता है जिसे धारणाधिकार [लियन] कहते हैं।

स्थायी पद पर परिवीक्षाधीन नियुक्ति का अर्थ यह है कि उस सरकारी सेवक को परीक्षण पर सेवा में लिया गया है। परिवीक्षाकाल, एक नियत अवधि के लिए हो सकता है अथवा अनिर्धारित भी हो सकता है। इस प्रकार की नियुक्ति में किसी प्रकार का धारणाधिकार संबंधित सरकारी सेवक को प्राप्त नहीं होता है।

"स्थानापन्न" की परिभाषा मूल नियम 9[19] में दी हुई है जिसके अनुसार, जब कोई सरकारी सेवक ऐसे पद के कर्तव्यों का निष्पादन करे जिस पद पर किसी अन्य व्यक्ति का धारणाधिकार हो तब उस सरकारी सेवक को उस पद पर स्थानापन्न रूप से नियुक्त हुआ कहा जाएगा। शासन, यदि चाहे तो, किसी सरकारी सेवक को ऐसे रिक्त पद पर, जिस पर किसी अन्य सरकारी सेवक का धारणाधिकार न हो, स्थानापन्न रूप से नियुक्त कर सकता है। स्थानापन्न नियुक्ति से सरकारी सेवक को कोई धारणाधिकार प्राप्त नहीं होता।

अतः स्थायी पद पर अधिष्ठायी नियुक्ति की दशा में ही संबंधित सरकारी सेवक को धारणाधिकार प्राप्त होता है। परिवीक्षा पर या स्थानापन्न नियुक्ति की दशा में संबंधित सरकारी सेवक को धारणाधिकार प्राप्त नहीं होता है, भले ही वह पद स्थायी हो। ऐसे नियुक्तियों की यह अन्तर्निहित शर्त होती है कि वे किसी भी समय समाप्त की जा सकती हैं।

स्थायी पद पर किसी सरकारी सेवक की नियुक्ति यदि अस्थायी रूप से की गई हो अर्थात् अग्रिम आदेश तक के लिए की गई हो तो उस दशा में सेवक की वही स्थिति होगी जो स्थानापन्न रूप से नियुक्त

सेवक की होती है।[3]

उच्चतम न्यायालय[4] ने कहा है कि स्थायी पद पर अधिष्ठायी नियुक्ति से संबंधित सेवक को उस पद को तब तक धारण किए रहने का अधिकार प्राप्त हो जाता है जब तक कि-

[1] वह नियमों के अन्तर्गत सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त न कर लेवे, अथवा

[2] वह नियत सेवावधि पूरी करने के उपरान्त वैकल्पिक सेवानिवृत्त न कर दिया जाए, अथवा

[3] उस पद को ही समाप्त न कर दिया जाए, अथवा

[4] उसे दुराचरण के लिए दण्डित करके सेवा-समाप्त न कर दी जाए।

अस्थायी पद पर किसी "नियत अवधि" तक के लिए नियुक्त सरकारी सेवक को उस सम्पूर्ण नियत अवधि के लिए पद धारण करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है एवं उस "नियत अवधि" के दौरान, उसकी सेवा समाप्त नहीं की जा सकती है। परन्तु इस नियत अवधि के दौरान यदि वह दुराचरण के लिए दोषी पाया जाए तो दण्डस्वरूप उसकी सेवा समाप्त की जा सकती है।[4]

उपरोक्त दोनों प्रकार के मामलों को छोड़ कर अन्य सभी नियुक्तियों में, चाहे वे स्थायी पद पर हों या अस्थायी पद पर हों, परिवीक्षा पर हो अथवा स्थानापन्न रूप से की गई हों, सम्बन्धित सेवक को पद धारण किए रहने का अधिकार प्राप्त नहीं होता है।[4] अस्थायी पद पर अधिष्ठायी नियुक्ति से भी सम्बन्धित सेवक को पद धारण किए रहने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता है। अस्थायी सेवक जब तक अपने पद पर पुष्ट न कर दिए जायें उन्हें उस पद का धारणाधिकार प्राप्त नहीं होता।[5]

सरकारी सेवा में किसी स्थायी पद पर, अधिष्ठायी रूप से,

---

3. राम चन्द्र बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य-आ०इ०आर० 1965 कलकत्ता 265

4. पुरुषोत्तम लाल धिंगरा बनाम भारत संघ-आ०ई०आर०1958 सु०को०36, एवं डी०टी०सी० बनाम डी०टी०सी० मजदूर कांग्रेस एवं अन्य-1991[1] ल०ला०ज०56

5. उ0प्र0 राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम उ0प्र0 लोक सेवा अधिकरण,1990[60] एफ०एल०आर०563 [इलाहाबाद उच्च न्यायालय]

कोई व्यक्ति स्वास्थ्य के चिकित्सकीय प्रमाण-पत्र के बगैर, नियुक्त नहीं किया जा सकता है। यह प्रमाण-पत्र उस सेवक के प्रथम वेतन बिल के साथ संलग्न किया जाना चाहिए। राज्यपाल विशिष्ट मामले में किसी व्यक्ति को प्रमाण-पत्र देने से अवमुक्त कर सकते हैं तथा अपने सामान्य आदेश द्वारा किसी विनिर्दिष्ट वर्ग के सरकारी सेवकों को प्रमाण-पत्र देने से छूट प्रदान कर सकते हैं।[6]

सहायक नियम 10 में चिकित्सकीय प्रमाण-पत्र का प्रपत्र निर्धारित है जो निम्नलिखित है:

चिकित्सीय प्रमाण-पत्र का प्रपत्र

मैं एतद्द्वारा प्रमाणित करता हूँ कि मैंने श्री.............. ....जो...........विभाग में नियुक्ति के अभ्यर्थी हैं की परीक्षा कर ली है और मैं.............के अतिरिक्त उनमें कोई[संचारी या अन्य] रोग, गठन की दुर्बलता या शारीरिक निर्बलता नहीं पा सका हूँ..............मैं इसके.............विभाग में नियुक्ति के लिए अयोग्यता नहीं समझता।

अभ्यर्थी की आयु उसके/उनके कथनानुसार........वर्ष है, तथा देखने से..........वर्ष है।

[चिकित्साधिकारी का हस्ताक्षर]

परन्तु, यदि किसी विशेष सेवा में या पद पर भर्ती को विनियमित करने वाले नियमों, विनियमों या अनुदेशों के अन्तर्गत कोई अन्य प्रपत्र निर्धारित किया गया हो, तो वह प्रपत्र प्रयोग में लाया जाएगा।

स्थायी पद पर अधिष्ठायी नियुक्ति से सरकारी सेवक को पद धारण किए रहने का अधिकार अर्थात धारणाधिकार प्राप्त हो जाता है।

धारणाधिकार

मूल नियम 9 [13] में "धारणाधिकार" को परिभाषित किया गया है, जिसके अनुसार धारणाधिकार सरकारी सेवक का पद धारण किए रहने का ऐसा अधिकार है जो उसे स्थायी पद, जिसमें सावधि पद भी

---

6. मूल नियम 10

सम्मिलित है, पर अधिष्ठायी रूप से नियुक्त होने पर, तत्काल या अनुपस्थिति की अवधि समाप्त होने पर, प्राप्त होता है।

अतः धारणाधिकार अर्जित करने हेतु यह आवश्यक है कि,

[1] सरकारी सेवक को स्थायी पद या सावधि पद पर नियुक्त किया गया हो एवं

[2] यह नियुक्ति अधिष्ठायी रूप से की गयी हो।

अतः जब कोई व्यक्ति या सरकारी सेवक किसी स्थायी पद पर अधिष्ठायी रूप से नियुक्त किया जाता है तो उसे उस पद पर बने रहने का अधिकार प्राप्त होता है, जिसे धारणाधिकार कहते हैं। यह अधिकार तत्काल अथवा अनुपस्थिति की अवधि समाप्त होने पर प्राप्त हो सकता है।

"सावधि पद" का अर्थ उस स्थायी पद से है जिस पर कोई सरकारी सेवक एक निश्चित अवधि से अधिक समय तक तैनात नहीं रह सकता।[7]

राम लाल खुराना बनाम पंजाब राज्य[8] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि धारणाधिकार, सिविल सेवक द्वारा पद को अधिष्ठायी रूप से धारण किए रहने का एक अधिकार है। सेवा विधिशास्त्र का यह प्रचलित सिद्धान्त है कि कोई सिविल सेवक एक साथ दो पदों पर धारणाधिकार अर्जित नहीं कर सकता। किसी सेवा संवर्ग में एक पद पर धारणाधिकार रखने वाला सरकारी सेवक यदि किसी अन्य पद पर अधिष्ठायी रूप से नियुक्त किया जाता है, तब वह बाद वाले पद पर बने रहने का धारणाधिकार प्राप्त कर लेता है एवं पूर्व पद का धारणाधिकार स्वतः लुप्त हो जाता है।

दो या उससे अधिक सरकारी सेवक को एक ही समय में एक ही स्थायी पद पर अधिष्ठायी रूप से नियुक्त नहीं किया जा सकता है।[9] केवल अस्थायी प्रबन्ध को छोड़कर कोई सरकारी सेवक दो या अधिक

---

7. मूल नियम 9[30-ए]
8. 1989[4] सुप्रीम कोर्ट केसेज 99
9. मूल नियम 12 ए

स्थायी पदों पर एक ही समय अधिष्ठायी रूप से नियुक्त नहीं किया जा सकता है।[10] किसी सरकारी सेवक को ऐसे पद पर अधिष्ठायी रूप से नियुक्त नहीं किया जा सकता है जिस पर किसी अन्य सरकारी सेवक का धारणाधिकार हो।[11]

जब तक किसी मामले में इन नियमों से अन्यथा कोई व्यवस्था न की गई हो, किसी सरकारी सेवक को स्थायी पद पर अधिष्ठायी रूप से नियुक्त होने पर, उस पद पर उसे धारणाधिकार प्राप्त हो जाता है और दूसरे पद पर उसके द्वारा पहले से प्राप्त किया हुआ धारणाधिकार समाप्त हो जाता है।[12]

धारणाधिकार मूल नियम 14 के अन्तर्गत निलम्बित रखा जा सकता है तथा मूल नियम 14-बी के अन्तर्गत अंतरित किया जा सकता है। यदि धारणाधिकार निलम्बित या अंतरित न किया गया हो तो, स्थायी पद पर अधिष्ठायी रूप से नियुक्त सरकारी सेवक को उस पद पर, निम्नलिखित मामलों में, धारणाधिकार प्राप्त रहता है-[13]

[अ] जब तक वह उस पद के कर्तव्यों का पालन करता रहे,

[ब] जब वह वाह्य सेवा में हो या किसी अन्य स्थायी पद पर नियुक्त हो अथवा किसी अन्य पद पर स्थानापन्न रूप से कार्य कर रहा हो,

[स] किसी अन्य पद पर स्थानान्तरित होने पर कार्य-ग्रहण काल में, जब तक कि उसका स्थानान्तरण अधिष्ठायी रूप से निम्न वेतन वाले पद पर न हो गया हो उस दशा में उसके पूर्व पद का धारणाधिकार नये पद पर उस तिथि से अंतरित हो जाता है जिस तिथि को वह पुराने पद के कर्तव्यों से अवमुक्त हुआ हो,

[द] जब वह अवकाश पर हो। यह अवकाश नियम 86 या 86-क के अन्तर्गत स्वीकृत किए जाने वाले अवकाश से अन्यथा होना

10- मूल नियम 12 [बी]
11- मूल नियम 12 [सी]
12- मूल नियम 12-ए
13- मूल नियम 13

किसी स्थायी पद पर अधिष्ठायी रूप से नियुक्त सरकारी सेवक के धारणाधिकार को निम्नलिखित परिस्थितियों में निलम्बित कर सकती है:-

1. यदि वह सरकारी सेवक भारत से बाहर प्रतिनियुक्ति पर चला जावे, या

2. यदि वह सरकारी सेवक वाह्य सेवा में स्थानान्तरित कर दिया जावे, या

3. यदि सरकारी सेवक को, ऐसी परिस्थितियों में जो उक्त वर्णित नियम 14[ए] के अन्तर्गत न आती हों, दूसरे संवर्ग के किसी पद पर अधिष्ठायी या स्थानापन्न रूप से स्थानान्तरित कर दिया जावे, या

4. यदि इनमें से किसी भी मामले में यह विश्वास करने का कारण हो कि वह सरकारी सेवक उस पद से जिस पर उसका धारणाधिकार है, कम-से-कम तीन वर्ष की अवधि तक अनुपस्थित रहेगा।

मूल नियम 14[बी] के अंतर्गत निलम्बित धारणाधिकार, निम्नलिखित परिस्थितियों में पुनर्जीवित हो जाएगा:-[16]

1. जैसे ही उस सेवक की भारत से बाहर प्रतिनियुक्ति समाप्त हो जाए, या

2. जैसे ही उस सेवक की वाह्य सेवा समाप्त हो जाए, या

3. जैसे ही वह सेवक दूसरे सेवा संवर्ग का पद छोड़ देवे, परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि निलम्बित धारणाधिकार सरकारी सेवक के अवकाश लेने के कारण पुनर्जीवित नहीं होगा, यदि यह विश्वास करने का कारण हो कि अवकाश से वापस आने पर वह सेवक भारत से बाहर प्रतिनियुक्ति पर बना रहेगा या वाह्य सेवा में बना रहेगा या अन्य सेवा संवर्ग में पद धारण किये रहेगा एवं ड्यूटी से उसकी अनुपस्थिति की अवधि तीन वर्ष से अन्यून नहीं होगी या वह सरकारी सेवक उपनियम [ए] के उक्त वर्णित पदों की प्रकृति का कोई पद अधिष्ठायी

---

16. मूल नियम 14[स्फ]

रूप से धारण किये रहेगा।

इस नियम से संबंधित राज्यपाल के आदेश द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि अपने सेवा संवर्ग से बाहर स्थानान्तरित होने वाला सरकारी सेवक यदि तीन वर्ष के अंदर ही सेवानिवृत्त होने वाला हो तो स्थायी पद पर उसका धारणाधिकार निलम्बित नहीं किया जा सकता।

नियम 14 के उप नियम [ए] एवं [बी] के उक्त चर्चित अन्यथा उपबन्धों के होते हुए भी, सावधिक पद पर सरकारी सेवक का धारणाधिकार किसी भी परिस्थिति में निलम्बित नहीं किया जा सकता है। यदि सरकारी सेवक किसी अन्य स्थायी पद पर अधिष्ठायी रूप से नियुक्त किया जाता है तो सावधिक पद पर उसका धारणाधिकार अवश्य ही समाप्त हो जाएगा।[17]

यदि किसी सरकारी सेवक का धारणाधिकार नियम 14 के उक्त चर्चित उप-नियम [ए] या [बी] के अंतर्गत निलम्बित किया गया हो तो उस पद पर अधिष्ठायी नियुक्ति की जा सकती है तथा उस पर नियुक्त सरकारी सेवक उस पद पर धारणाधिकार अर्जित करेगा। परन्तु निलम्बित धारणाधिकार के पुनर्जीवित होते ही यह व्यवस्था उलट जाएगी।[18]यदि संबंधित पद, संवर्ग के चयन श्रेणी [सलेक्शन ग्रेड] का पद हो तब भी यह प्रावधान लागू होगा।[19]इस प्रावधान के अंतर्गत किसी पद पर अधिष्ठायी रूप से की गई नियुक्ति को अनंतिम नियुक्ति [प्रोविजनल ऐपोइन्टमेन्ट] कहा जाएगा, तथा इस प्रकार नियुक्त सरकारी सेवक का उस पद पर अनंतिम धारणाधिकार बना रहेगा जो उप नियम [ए] के अंतर्गत निलम्बित किया जा सकेगा, उप नियम [बी] के अंतर्गत नहीं।[20]

धारणाधिकार की समाप्ति

किसी सरकारी सेवक के पद का धारणाधिकार, उसकी सहमति होते हुए भी, किसी भी परिस्थिति में समाप्त नहीं किया जा सकता

---

17. मूल नियम 14 [बी]
18. मूल नियम 14 [डी]
19. मूल नियम 14 [डी] का नोट [1]
20. मूल नियम 14 [डी] का नोट [2]

है, यदि परिणाम यह होवे कि वह सरकारी सेवक स्थायी पद पर बगैर किसी धारणाधिकार या निलम्बित धारणाधिकार के रह जावे।[21]

सेवा संवर्ग से बाहर किसी स्थायी पद पर अधिष्ठायी नियुक्ति के कारण सरकारी सेवक का निलम्बित धारणाधिकार, जब वह सरकारी सेवक सेवा में बना रहा है, समाप्त नहीं किया जा सकता। परन्तु यदि वह सरकारी सेवक लिखित प्रार्थना पत्र दे तो निलम्बित धारणाधिकार समाप्त किया जा सकता है।[22]

धारणाधिकार का अंतरण

सरकारी सेवक का स्थानान्तरण एक पद से दूसरे पद पर करने संबंधी प्रावधान मूल नियम 15 में दिए हुए हैं। स्थानान्तरण के इस प्रावधान के अध्यधीन, यदि कोई सरकारी सेवक अपने उस पद की ड्यूटी नहीं कर रहा हो जिस पर उसे धारणाधिकार प्राप्त हो तो शासन उस धारणाधिकार को, एक ही संवर्ग में एक से दूसरे स्थायी पद पर, अंतरित कर सकता है, भले ही धारणाधिकार निलम्बित कर दिया गया हो।[23]

महत्वपूर्ण सेवा शर्तें

उत्तर प्रदेश मूल नियमावली के तीसरे अध्याय में सेवा की सामान्य शर्तें दी हुई हैं, जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण सेवा शर्तें निम्नलिखित हैं:-

1. सरकारी सेवक का संपूर्ण समय, शासन के अधीन रहता है। सक्षम प्राधिकारी द्वारा सरकारी सेवक को किसी प्रकार की सेवा में लगाया जा सकता है। तथा उसके लिए वह सेवक किसी अतिरिक्त पारिश्रमिक का दावा नहीं कर सकता।[24]

2. सरकारी सेवक कार्यभार ग्रहण करने की तिथि से अपने पद की अवधि पर संबद्ध वेतन एवं भत्तों को पाने लगेगा और जैसे ही वह उस पद के कर्तव्यों से उन्मुक्त हो जावे वैसे ही वेतन एवं भत्तों का पाना भी समाप्त हो जाएगा।[25]

---

21. मूल नियम 14-ए(ए)।
22. मूल नियम 14-ए(बी)।
23. मूल नियम 14-बी
24. मूल नियम 11
25. मूल नियम 17(1)।

3· भारत में बाह्य सेवा के अतिरिक्त, सामान्यतः यदि कोई सरकारी सेवक लगातार पाँच वर्षों तक अनुपस्थित रहा हो, चाहे अवकाश पर रहते हुए या बिना अवकाश के, तब उसकी सरकारी सेवा समाप्त हो जाएगी। परन्तु शासन किसी मामले की विशेष परिस्थितियों को दृष्टिगत करके इस सामान्य उपधारणा के विपरीत विनिश्चय कर सकता है।[26] अर्थात् यदि सरकारी सेवक लगातार पाँच वर्षों तक अनुपस्थित रहा हो तो उसकी सेवा समाप्त मानी जाएगी। इसके दो अपवाद हैं:-

(1) यदि वह सरकारी सेवक भारत में ही किसी बाह्य सेवा में कार्यरत हो,

(2) यदि शासन किसी मामले की विशेष परिस्थितियों को दृष्टिगत करके उक्त वर्णित सामान्य नियम के विपरीत अवधारणा करे।

जय शंकर बनाम राजस्थान राज्य[27] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि ऐसे मामले में सरकारी सेवक की सेवा स्वतः समाप्त नहीं मानी जाएगी, क्योंकि उस सेवक को अपनी अनुपस्थिति का कारण बताने का अवसर दिया जाएगा। अवसर दिए बगैर सेवा समाप्त करना अनुचित एवं अवैध होगा।

4· वित्तीय हस्त पुस्तिका खण्ड 2, भाग 2-4 के तीसरे भाग में सहायक नियम दिए हुए हैं। मूल नियम 85 तथा सहायक नियम 157-ए(4)(ए) के अंतर्गत सरकारी सेवक को असाधारण अवकाश स्वीकृत किया जा सकता है। सहायक नियम 157-ए(4)(क)(iv) के अंतर्गत अधिकतम 36 माह का असाधारण अवकाश अनुमन्य है।

5· यदि कोई सरकारी सेवक असाधारण अवकाश की अधिकतम अवधि समाप्त होने पर भी ड्यूटी पर नहीं आता तो यह माना जाएगा कि उसने अपना पद त्याग दिया है और तदनुरूप उसकी सरकारी सेवा समाप्त हो जाएगी। परन्तु राज्यपाल किसी मामले की विशेष परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए अन्यथा विनिश्चय कर सकते हैं।[28]

26· मूल नियम 18

27· आ·इ·रि· 1966 सु·को·492

28· सहायक नियम 157-ए(4)(ख)

बी०एम० त्रिपाठी बनाम उ०प्र० राज्य,[29] के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने कहा है कि सरकारी सेवक की सेवा यह कह कर समाप्त करना कि वह जानबूझकर ड्यूटी से अनुपस्थित रहा, उसे कलंकित करना है, क्योंकि इस कथन से यह प्रतीत होता है कि वह एक गैर जिम्मेदार व्यक्ति है, जिसे कर्तव्य का कोई भान नहीं है। अतः सहायक नियम 157-ए के अधीन सरकारी सेवक की सेवा समाप्त करना एक दण्ड है तथा यह सुप्रतिष्ठित विधि है कि यदि किसी विशिष्ट गलती के लिए सरकारी सेवक की सेवा दण्डस्वरूप समाप्त की जानी हो तो उसे सुनवाई का अवसर देना अनिवार्य है, भले ही वह सेवक अस्थायी हो। सरकारी सेवक को सुनवाई का अवसर देने से यह कहकर इंकार नहीं किया जा सकता है कि सेवा नियमों के अधीन सरकारी सेवक ने स्वयं ही पद त्याग दिया है।

पुत्तु लाल मिश्र बनाम भारत संघ,[30] के मामले में श्री मिश्र आर्डिनेन्स पैराशूट फैक्ट्री कानपुर में टिकट क्वार्टर थे। अक्तूबर,1967 में बीमारी के कारण वह अपने गाँव चले गये तथा अपने रिश्तेदार श्री बी·एस· शुक्ल के जरिए अवकाश प्रार्थना-पत्र भेजा। बाद में दूसरा प्रार्थना-पत्र डाक द्वारा भी भेजा, लेकिन फैक्ट्री की तरफ से कोई प्रतिउत्तर उन्हें नहीं दिया गया। दिनांक 17·1·1968 को श्री पुत्तु लाल को एक नोटिस दिनांकित 11·1·1968 मिली कि तीन माह तक अनुपस्थिति के कारण उसकी सरकारी सेवा की सदस्यता समाप्त हो चुकी है तथा इस अनुपस्थिति के कारण यह माना गया है कि वह त्यागपत्र दे चुका है।

उच्च न्यायालय ने कहा कि ऐसे मामलों में भी सेवक को कारण बताने का अवसर दिया जाना चाहिए कि क्यों न अवकाश से अधिक दिनों तक अनुपस्थित रहने के कारण उन्हें सेवा से हटा दिया जाय। यदि ऐसा अवसर न दिया गया हो तो सेवा-समाप्ति का आदेश अवैध एवं दूषित होगा।

•

अतः मूल नियम 18 एवं सहायक नियम 157-ए[4][ख]

29· आ·इ·रि·1971 इला·346

30· 1990[60] एफ०एल०आर० 379[इलाहाबाद उच्च न्यायालय]

के अधीन सरकारी सेवक की सेवा, उसकी अनुपस्थिति के कारण, स्वतः समाप्त नहीं होगी। इन नियमों के अधीन सेवा समाप्ति का आदेश करने से पूर्व उस सेवक को, अपनी अनुपस्थिति का कारण बताने का अवसर प्रदान किया जायगा।

सरकारी सेवकों के सेवाकाल के संबंध में एक अतिमहत्वपूर्ण उपबंध संविधान के अनुच्छेद 310(1) में है कि, सरकारी सेवक, यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त पद धारण करता है। इसे प्रसाद-पर्यन्तता का सिद्धान्त कहते हैं।

अध्याय- दो

प्रसाद का सिद्धान्त

"प्रसाद का सिद्धान्त" से यह अभिप्रेत है कि सिविल सेवक, क्राउन के प्रसाद पर्यन्त पद धारण करता है। इंगलैण्ड में प्रत्येक सिविल सेवक, क्राउन के प्रसादपर्यन्त अपना पद धारण करता है तथा क्राउन बिना कोई कारण बताए उनकी सेवाएं कभी भी समाप्त कर सकता है। क्राउन के इस अधिकार को "प्रसाद का सिद्धान्त" कहते हैं। इंगलैण्ड में, क्राउन को प्रसाद का प्रयोग संसद द्वारा बनाए गए विधानों के अधीन करना होता है, क्योंकि वहाँ संसद को विधायी संप्रभुता प्राप्त है।[1]

भारत में यह सिद्धान्त, सर्वप्रथम, गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया ऐक्ट, 1919 में अंगीकृत किया गया था। इस ऐक्ट की धारा 96-बी में कहा गया था कि-इस ऐक्ट के उपबंधों के अधीन रहते हुए, सिविल सेवक हिजमेजेस्टी के प्रसादपर्यन्त पद धारण करता है। पुनश्च, इसे गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की धारा 240 के प्रत्युत्पादित किया गया। तदुपरान्त, भारत का संविधान में "प्रसाद का सिद्धान्त" को सांविधानिक अनुशासित प्राप्त हुआ। उक्त चर्चित उपबंध में रुपांतरण करके संविधान के अनुच्छेद 310 के उपखण्ड(1) में "प्रसाद का सिद्धान्त" इस प्रकार अंगीकृत किया गया,

> इस संविधान द्वारा अभिव्यक्त रूप से यथा उपबंधित के सिवाय प्रत्येक व्यक्ति जो रक्षा सेवा का या संघ की सिविल सेवा का या अखिल भारतीय सेवा का सदस्य है अथवा रक्षा से संबंधित कोई पद या संघ के अधीन कोई सिविल पद धारण करता है, राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त पद धारण करता है और प्रत्येक व्यक्ति जो किसी राज्य की सिविल सेवा का सदस्य है या राज्य के अधीन कोई सिविल पद धारण करता है, उस राज्य के राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त पद धारण करता है।"

---

1. बिहार राज्य बनाम अब्दुल मजिद- आ॰ई॰रि॰ 1954 सु॰को॰ 245, तथा भारत संघ बनाम तुलसीराम पटेल- आ॰ई॰रि॰ 1985 सु॰को॰ 1416

अतः यह स्पष्ट है कि इंगलेण्ड में लागू "प्रसाद का सिद्धान्त", भारत में पूर्णतः अंगीकृत नहीं किया गया है; बल्कि उपान्तरित करते हुए अंगीकृत किया गया है। अंतर यह है कि इंगलेण्ड में क्राउन को प्रसाद का प्रयोग संसद द्वारा बनाए गए विधान के अधीन करना होता है जबकि भारत में "प्रसाद का प्रयोग" संविधान में अभिव्यक्त उपबंधों के अधीन करना होता है।

प्रसाद का विस्तार

प्रसाद का सिद्धान्त सरकारी सेवक की पदावधि से संबंधित है। संविधान का अनुच्छेद 310{1} सरकारी सेवक की पदावधि को राष्ट्रपति या राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त करता है। "पदावधि" का अभिप्राय संघ या राज्य की सेवा करने वाले व्यक्तियों के कार्यकाल से है।

राष्ट्रपति या राज्यपाल का यह "प्रसाद" आत्यंतिक या बन्धनरहित नहीं है, अपितु संविधान में अभिव्यक्त अन्य उपबंधों के अनुरूप प्रवर्तनीय है। इसका प्रयोग स्वच्छन्द या मनमाने ढंग से नहीं बल्कि संविधान में अभिव्यक्त उपबंधों के अधीन करना होता है। ये उपबंध निम्नवत हैः-

{1} अनुच्छेद 124{4}- उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश को उसके पद से तब तक नहीं हटाया जाएगा जब तक साबित कदाचार या असमर्थता के आधार पर ऐसे हटाए जाने के लिए संसद् के प्रत्येक सदन द्वारा अपनी कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा तथा उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के कम-से-कम दो तिहाई बहुमत द्वारा समर्थित समावेदन, राष्ट्रपति के समक्ष उसी सत्र में रखे जाने पर राष्ट्रपति ने आदेश नहीं दे दिया है।

{2} अनुच्छेद 218- अनुच्छेद 124 के खण्ड{4} और खण्ड{5} के उपबंध, जहाँ-जहाँ उनमें उच्चतम न्यायालय के प्रति निर्देश है वहाँ-वहाँ उच्च न्यायालय के प्रति निर्देश प्रतिस्थापित करके, उच्च न्यायालय के संबंध में वैसे ही लागू होंगे जैसे वे उच्चतम न्यायालय के संबंध में लागू होते हैं।

{3} अनुच्छेद 148{1}-भारत का एक नियंत्रक-महालेखापरीक्षक होगा जिसको

राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा नियुक्त करेगा और उसे उसके पद से केवल उसी रीति से और उन्हीं आधारों पर हटाया जाएगा जिस रीति से और जिन आधारों पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है।

[4] अनुच्छेद 324[5]- संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए, निर्वाचन आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों की सेवा की शर्तें और पदावधि ऐसी होंगी जो राष्ट्रपति नियम द्वारा अवधारित करे:

परन्तु मुख्य निर्वाचन आयुक्त को उसके पद से उसी रीति से और उन्हीं आधारों पर ही हटाया जाएगा, जिस रीति से और जिन आधारों पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है अन्यथा नहीं, और मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सेवा की शर्तों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जाएगा:

परन्तु यह और कि किसी अन्य निर्वाचन आयुक्त या प्रादेशिक आयुक्त को मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश पर ही पद से हटाया जाएगा, अन्यथा नहीं।

[5] अनुच्छेद 311[1]- किसी व्यक्ति को जो संघ की सिविल सेवा का या अखिल भारतीय सेवा का या राज्य की सिविल सेवा का सदस्य है अथवा संघ या राज्य के अधीन कोई सिविल पद धारण करता है, उसकी नियुक्ति करने वाले प्राधिकारी के अधीनस्थ किसी प्राधिकारी द्वारा पदच्युत नहीं किया जाएगा या पद से नहीं हटाया जाएगा।

[2] यथापूर्वोक्त किसी व्यक्ति को, ऐसी जाँच के पश्चात् ही, जिसमें उसे अपने विरुद्ध आरोपों की सूचना दे दी गई है और उन आरोपों के संबंध में सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर दे दिया गया है, पदच्युत किया जाएगा या पद से हटाया जाएगा या पंक्ति में अवनत किया जाएगा, अन्यथा नहीं:

परन्तु जहाँ ऐसी जाँच के पश्चात् उस पर ऐसी कोई शास्ति अधिरोपित करने की प्रस्थापना है वहाँ ऐसी शास्ति ऐसी जाँच के दौरान दिए गए साक्ष्य के आधार पर अधिरोपित की जा सकेगी और ऐसे व्यक्ति को प्रस्थापित शास्ति के विषय में अभ्यावेदन करने का अवसर देना आवश्यक

नहीं होगाः

परन्तु यह और कि यह खण्ड वहाँ लागू नहीं होगा-

[क] जहाँ किसी व्यक्ति को ऐसे आचरण के आधार पर पदच्युत किया जाता है या पंक्ति में अवनत किया जाता है जिसके लिए आपराधिक आरोप पर उसे सिद्धदोष ठहराया गया है, या

[ख] जहाँ किसी व्यक्ति को पदच्युत करने या पद से हटाने या पंक्ति में अवनत करने के लिए सशक्त प्राधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि किसी कारण से, जो उस प्राधिकारी द्वारा लेखबद्ध किया जाएगा, यह युक्तियुक्त रूप से साध्य नहीं है कि ऐसी जाँच की जाए, या

[ग] जहाँ, यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्यपाल का यह समाधान हो जाता है कि राज्य की सुरक्षा के हित में यह समीचीन नहीं है कि ऐसी जाँच की जाए।

संविधान के उक्त चर्चित उपबंधों से यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 124[4], 218, 148[1] व 324[5] में तो सांविधानिक कृत्यकारियों की पदावधि के संबंध में "प्रसाद-प्रयोग" का ढंग विहित है जबकि अनुच्छेद 311 में सिविल सेवकों की पदावधि के संबंध में प्रसाद-प्रयोग का प्राधिकार एवं प्रक्रिया अधिकथित है। इसके उपखण्ड[1] के अनुसार प्रसाद का प्रयोग नियुक्ति प्राधिकारी अथवा उनके समकक्ष प्राधिकारी ही कर सकते है, उनसे अधीनस्थ प्राधिकारी उसका प्रयोग नहीं कर सकते है। उपखण्ड[2] के अनुसार प्रसाद-प्रयोग के पूर्व संबंधित सेवक के विरूद्ध लगाए गए आरोप की विभागीय जाँच की जाएगी, जिसमें उसे सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर दिया जाएगा। इस प्रकार सिविल सेवकों के मामलों में राष्ट्रपति या राज्यपाल के प्रसाद-प्रयोग पर अनुच्छेद 311 के खण्ड [1] व [2] में निर्बन्धन अधिरोपित किए गए हैं एवं उच्चतम न्यायालय ने[2] स्पष्टतः कहा है कि अनुच्छेद 310[1] का अपवाद अनुच्छेद 311 है।

प्रसाद का सिद्धान्त सामंतीयुग का स्मृतिशेष अथवा क्राउन का विशेष परमाधिकार नहीं है। यह सिद्धान्त किसी देश के क्राउन,

---

2. पुरुषोत्तम लाल धिंगरा बनाम भारत संघ-आ॰इ॰रि॰1958 सु॰को॰36

राष्ट्रपति या राज्यपाल के विशेष परमाधिकार पर नहीं, अपितु इस लोकनीति पर आधारित है कि सरकारी सेवक अपने कर्तव्यों का सम्यक् निष्पादन करें तथा अक्षम एवं भ्रष्ट व्यक्ति सेवा में न रहने पाएं।[3]

भारत एक लोकतंत्रात्मक गणराज्य है। लोकतंत्र में मंत्रिगण नीति निर्धारित करते हैं तथा विधान-मण्डल विधि विरचित करके इन नीतियों के कार्यान्वयन का ढंग अधिकथित करता है। सरकारी सेवकों को विधि के अनुकूल इन नीतियों का दक्षतापूर्ण एवं प्रभारी कार्यान्वयन करना होता है। अतः सरकारी सेवकों की दक्षता एवं सत्यनिष्ठा में पब्लिक का महत्वपूर्ण हित निहित रहता है। समाज की अभिरुचि इस बात में होती है कि सरकारी सेवक अपने कर्तव्यों का सम्यक् निष्पादन करें। ये कर्तव्य विधि द्वारा नियत किए जाते हैं, जिनका प्रवर्तन कराने में राज्य एवं समाज का हित निहित होता है।[3]

सरकारी सेवकों को वेतन "लोक-राजकोष" से, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कर अदा करके अभिदाय करता है, दिया जाता है। अतः सरकारी सेवक, जो लोकहित में प्रशासनिक कार्यों के प्रभारी हैं, को अपने कर्तव्यों का निर्वहन दायित्व की भावना से करना होता है। लोक प्रशासन की दक्षता सेवा के उच्चाधिकारियों पर ही नहीं बल्कि अन्य सदस्यों, जिनमें सबसे अधीनस्थ सदस्य भी सम्मिलित है, पर भी निर्भर होती है। उदाहरणस्वरूप, रेल गाड़ियाँ सिर्फ रेलवे बोर्ड के सदस्य, सामान्य प्रबन्धकों अथवा रेल प्रशासन के उच्चाधिकारियों की दक्षता मात्र से ही नहीं चलती बल्कि इंजन ड्राइवर, फायर मैन, बुकिंग क्लर्क वगैरह की दक्षता भी रेल गाड़ियाँ चलाने में उतनी ही सहायक होती है।

अतः किसी सेवा के दक्षतापूर्ण संचालन के लिए, सेवकों में सामूहिक दायित्व की भावना होनी आवश्यक है। सरकारी सेवक को निष्ठा पूर्वक एवं शुद्ध अंतःकरण से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए

3. तुलसी राम पटेल का पूर्वोक्त मामला

अपनी पदावधि की सुरक्षा के प्रति आश्वस्त होना आवश्यक है, जो संविधान ने अनुच्छेद 311 में प्रदान किया ही है, साथ-ही-साथ अनुच्छेद 309 के अधीन बनाए गए अधिनियमों एवं नियमावलियों में भी रक्षोपाय हैं। लोकहित में यह भी आवश्यक है कि ऐसे सरकारी सेवक, जो अक्षम, भ्रष्ट, बेईमान या खतरनाक हैं, को सेवा में नहीं रहना चाहिए एवं उक्त चर्चित रक्षोपाय का दुरूपयोग नहीं होने देना चाहिए। इसी कारणवश अनुच्छेद 311 के उपखण्ड [2] के द्वितीय परन्तुक में इन रक्षोपायों को वापस ले लिया गया है।[4]

प्रसाद का प्रयोग

विचारणीय प्रश्न है कि, क्या प्रसाद का प्रयोग राष्ट्रपति या राज्यपाल को स्वयं करना होता है? अथवा उनका प्रतिनिधि या अन्य कोई प्राधिकारी, जो अनुच्छेद 309 के अधीन बनाए गए अधिनियम या नियमावली में प्राधिकृत हो, प्रसाद का प्रयोग कर सकता है?

यह प्रश्न उ0प्र0 राज्य बनाम बाबू राम उपाध्याय के मामले[5] में विचाराधीन था, जिसमें उच्चतम न्यायालय ने कहा कि प्रसाद का प्रयोग राष्ट्रपति या राज्यपाल को स्वयं ही करना होता है। वह इस शक्ति का प्रत्यायोजन नहीं कर सकते। परन्तु **मोतीराम डेका बनाम एन0ई0 फ्रन्टियर रेलवे,** के मामले,[6] में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि इसका यह तात्पर्य नहीं है कि प्रसाद का प्रयोग करने वाले प्राधिकारी तथा उसकी प्रक्रिया नियत करने संबंधी कोई अधिनियम या नियमावली अनुच्छेद 309 के अधीन नहीं बनायी जा सकती है। अर्थात् ऐसी विधि बनाई जा सकती है जो प्रसाद के प्रयोग की प्रक्रिया तथा प्राधिकारी नियत करे। अतः अनुच्छेद 311 के अधीन रहते हुए राष्ट्रपति या राज्यपाल का "प्रसाद" अधीनस्थ अधिकारी को प्रत्यायोजित किया जा सकता है। तुलसी राम पटेल के मामले में उच्चतम न्यायालय ने मोतीराम डेका के मामले की उपर्युक्त निर्णयज विधि का अनुमोदन करते हुए स्पष्ट किया कि बाबूराम के मामले की उपर्युक्त निर्णयज विधि सही नहीं है।

अतः राष्ट्रपति या राज्यपाल को अपने प्रसाद का प्रयोग व्यक्तिगत

---

4. भारत संघ बनाम तुलसी राम पटेल-आ०ई०रि०1985 सु०को०1416
5. आ०ई०रि०1961 सु०को०751
6. आ०ई०रि०1964 सु०को०600

रूप से स्वयं करना अपेक्षित नहीं है, वह अधीनस्थ अधिकारी को यह शक्ति प्रत्यायोजित कर सकते हैं। जहाँ सेवा विधि या नियमावली में प्रसाद का प्रत्यायोजन किसी प्राधिकारी को किया गया हो वहाँ विनिर्दिष्ट प्राधिकारी प्रसाद का प्रयोग कर सकता है। राष्ट्रपति या राज्यपाल को स्वयं प्रसाद का प्रयोग करने में मंत्रिपरिषद् की सहायता एवं सलाह पर कार्य करना होता है।[7]

दूसरा प्रश्न यह है कि, क्या प्रसाद का प्रयोग अनुच्छेद 309 के अधीन करना होता है?

अनुच्छेद 309 में लोक सेवा तथा संघ या राज्य की सेवा करने वाले व्यक्तियों की भर्ती और सेवा की शर्तें विरचित करने की शक्ति दी गई है। इसमें सरकारी सेवकों की भर्ती के नियम या सेवा की शर्तें नहीं बताई गई हैं, बल्कि इन विषयों के संबंध में विधि बनाने की शक्ति समुचित विधान-मण्डल को तथा नियमावली बनाने की शक्ति राष्ट्रपति या राज्यपाल को दी गई है। इस शक्ति का निर्बन्धन यह है कि ये अधिनियम एवं नियमावली संविधान के उपबंधों के अधीन ही बनाए जाने होते हैं। "सेवा की शर्तों" का अभिप्राय उन सभी शर्तों से है जो किसी व्यक्ति के नियुक्ति से सेवानिवृत्ति तक तथा उसके उपरान्त पेंशन आदि विषयों को नियंत्रित करते हैं।[8]

अतः अनुच्छेद 309 के अधीन सरकारी सेवक के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही करने वाले प्राधिकारी, तथा प्रक्रिया, नियत करने की विधि समुचित विधान-मण्डल द्वारा एवं नियमावली समुचित कार्यपालिका द्वारा बनाई जा सकती है।[9] ये अधिनियम एवं नियमावली संविधान के अन्य उपबंधों के अधीन विरचित करने होते हैं। यदि संविधान के किसी उपबंध का उल्लंघन किया गया तो ऐसा अधिनियम या नियमावली असंवैधानिक एवं शून्य होगी। उदाहरणस्वरूप, बिहार सरकारी सेवक आचरण नियमावली, 1956 के नियम 4(1) में सरकारी सेवक द्वारा कोई प्रदर्शन करने पर रोक लगाई गई थी, जो संविधान के अनुच्छेद 19 का अतिक्रमण करने

---

7. भारत संघ बनाम तुलसी राम पटेल-आ॰ई॰रि॰ 1985 सु॰को॰1416
8. मध्य प्रदेश राज्य बनाम भारतूल सिंह-1970(3)सु॰को॰रि॰302
9. सरदारी लाल बनाम भारत संघ-आ॰ई॰रि॰ 1971 सु॰को॰1547

के कारण उच्चतम न्यायालय द्वारा विखण्डित कर दी गयी।[10] इससे स्पष्ट है कि अनुच्छेद 309 के अधीन विरचित अधिनियम एवं नियमावली संविधान के भाग-3 में दिए गए मूलभूत अधिकारों का अतिक्रमण नहीं कर सकते। यदि अतिक्रमण करते हैं तो वे असंवैधानिक एवं शून्य होंगे।

पुनः, राष्ट्रपति या राज्यपाल अनुच्छेद 309 के अधीन, उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के अधिकारियों एवं सेवकों की सेवा नियमावली नहीं बना सकते हैं, क्योंकि अनुच्छेद 146|2| में उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति तथा अनुच्छेद 229|2| में उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को उनकी सेवा नियमावली बनाने की शक्ति प्रदान की गई है।

अनुच्छेद 148|5| के अनुसार भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा विभाग के सेवकों की सेवा नियमावली, नियंत्रक लेखा महापरीक्षक से परामर्श करने के पश्चात् राष्ट्रपति द्वारा बनाई जाएगी। अनुच्छेद 309 के अधीन दी गई शक्ति का प्रयोग करके राष्ट्रपति इन सेवकों की सेवा नियमावली नहीं बना सकते।

अनुच्छेद 309 के अधीन अधिनियम या नियमावली विरचित करने में, अनुच्छेद 311 के खण्ड|1| एवं |2| में सिविल सेवकों को दिए गए अधिकारों पर, अतिक्रमण नहीं किया जा सकता है। यदि उन अधिकारों पर अतिक्रमण करते हुए अधिनियम या नियमावली विरचित किए जाते हैं तो वे असंवैधानिक एवं शून्य होंगे।[11] राष्ट्रपति या राज्यपाल के प्रसाद पर संविधान के अनुच्छेद 311 आदि में जो पूर्वोक्त निर्बन्धन अधिरोपित किए गए हैं, उससे अधिक निर्बन्धन अनुच्छेद 309 के अधीन बनाए गए अधिनियम या नियमावली द्वारा अधिरोपित नहीं किए जा सकते। यदि ऐसा किया जाता है तो ऐसा अधिनियम या नियमावली असंवैधानिक एवं शून्य होगी।[12]

अनुच्छेद 309 के अनुसार राष्ट्रपति या राज्यपाल को, संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, सिविल सेवकों की सेवा नियमावली विरचित करनी होती है। इस उपबंध में कोई ऐसी प्रक्रिया अधिकथित नहीं की गई है जो अनुच्छेद 310|1| के अधीन प्रसाद-प्रयोग का अल्पीकरण करे;

10· कामेश्वर बनाम राज्य-आ·ई·रि·1962 सु·को·1166
11· मोतीराम डेका का मामला-आ·ई·रि·1964 सु·को·600
12· तुलसी राम पटेल का पूर्वोक्त मामला

अपितु इसके द्वारा समुचित विधान-मण्डल को सेवाविधि तथा राष्ट्रपति या राज्यपाल को सेवा नियमावली बनाने की शक्ति प्रदान की गई है, जिसका प्रयोग संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए करना होता है। जबकि अनुच्छेद 310॥1॥ के अधीन प्रसाद-प्रयोग करने में राष्ट्रपति या राज्यपाल को संविधान में अभिव्यक्त उपबंधों के अधीन कार्य करना होता है। अतः अनुच्छेद 310॥1॥ के अधीन अनुच्छेद 309 प्रवर्तनीय है; एवं किसी सेवा विधि या नियमावली द्वारा अनुच्छेद 310॥1॥ के उपबंध का अतिक्रमण नहीं किया जा सकता। इस प्रकार-अनुच्छेद 309, "प्रसाद पर्यन्तता के सिद्धान्त" का अपवाद नहीं है। अर्थात् "प्रसाद का प्रयोग" अनुच्छेद 309 के अधीन नहीं करना होता है।

सारांश

सरकारी सेवक, यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्यपाल या अन्य नियुक्ति अधिकारी के प्रसाद पर्यन्त पद धारण करता है; जिसका प्रयोग अनुच्छेद 311 के अधीन रहते हुए करना होता है। अर्थात्, प्रसाद का प्रयोग, सामान्यतया, सरकारी सेवक के दुराचरण के लिए आरोप विरचित करके जाँच कराने के उपरान्त ही किया जा सकता है। सरकारी सेवक का कौन-सा कार्य या लोप दुराचरण है? इसके लिए "आचरण संहिता" होनी अनिवार्य है; अर्थात् सरकारी सेवकों से कैसा आचरण प्रत्याशित है? इसका ज्ञान होना आवश्यक है।

अध्याय- तीन

प्रत्याशित आचरण

सरकारी सेवक का आचरण राज्य की छवि को प्रतिबिम्बित करता है। अतः यह आवश्यक है कि राज्य अपने कर्मचारीगण के आचरण को इस प्रकार नियन्त्रित करे जिससे राज्य का हित हो, साथ ही साथ जनता के हितों की रक्षा हो।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 में प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति ने संघीय सेवा तथा राज्यपाल ने राज्य सेवा के सरकारी सेवकों की सेवा शर्तों एवं प्रत्याशित आचरण के सम्बन्ध में नियमावलियाँ विरचित की हैं। केन्द्रीय सिविल सेवाएं [आचरण] नियमावली, 1964 संघीय सेवा के सिविल सेवकों पर लागू होती है, परन्तु रेलवे सेवक तथा अखिल भारतीय सेवा के सदस्यों पर लागू नहीं होती है। अखिल भारतीय सेवाएं [आचरण] नियमावली, 1968 भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय इन्जीनियरिंग सेवा, भारतीय वन सेवा तथा भारतीय चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवा के सदस्यों का आचरण नियन्त्रित करती है। भारतीय विदेश सेवा [आचरण एवं अनुशासन] नियमावली, 1961 विदेश सेवा के अधिकारियों के आचरण को नियन्त्रित करती है। रेलवे सेवाएं [आचरण] नियमावली, 1966 रेलवे सेवकों के आचरण को नियन्त्रित करती है।

उत्तर प्रदेश के सरकारी सेवकों के आचरण को उ0 प्र0 सरकारी सेवक आचरण नियमावली, 1956 नियन्त्रित करती है। इसके कुछ नियमों में सकारात्मक आचरण किया जाना अपेक्षित है, परन्तु अधिकांश नियम विभिन्न आचरणों को निषिद्ध करते हैं। उदाहरणस्वरूप-

[1] सरकारी सेवक सभी व्यक्तियों से; उनकी जाति, सम्प्रदाय/पंथ अथवा धर्म पर विचार किये बगैर, समान व्यवहार करेगा।

सरकारी सेवक किसी भी प्रकार से अस्पृश्यता का व्यवहार नहीं करेगा।[1]

[2] सरकारी सेवक सार्वजनिक स्थान पर मादक पान नहीं करेगा तथा मादकपान करके सार्वजनिक स्थान पर नहीं जाएगा।[2]

[3] सरकारी सेवक किसी राजनैतिक पार्टी का सदस्य नहीं होगा और न ही ऐसे किसी संस्था के कार्यकलापों से सम्बद्ध रहेगा तथा अपने परिवार के सदस्यों को ऐसी किसी संस्था को चन्दा देने, अथवा सम्बद्ध होने, से रोकेगा।[3]

[4] सरकारी सेवक, भारत की अखण्डता एवं सम्प्रभुता के हित अथवा राज्य की सुरक्षा या लोकहित के प्रतिकूल, किसी प्रदर्शन में भाग नहीं लेगा तथा किसी ऐसे प्रदर्शन में भी भाग नहीं लेगा जिससे न्यायालय की अवमानना या मानहानि होती हो, अथवा अपराध-उद्दीपन होता हो। वह किसी भी प्रकार से सेवा संबंधी हड़ताल में भाग नहीं लेगा।[4]

[5] सरकारी सेवक ऐसी किसी एसोसिएशन, जो भारत की अखण्डता एवं सम्प्रभुता के हित के प्रतिकूल कार्य करती हो, का सदस्य नहीं होगा।[5]

[6] शासन की पूर्व अनुमति के सिवाय, सरकारी सेवक किसी समाचार-पत्र अथवा अन्य किसी पत्रिका के प्रकाशन में पूर्णतः या अंशतः भाग नहीं लेगा, न ही समाचार-पत्र अथवा पत्रिका में कोई लेख देगा और न ही रेडियो प्रसारण में भाग लेगा

परन्तु यदि वह प्रसारण अथवा लेख पूर्णतः कलात्मक, साहित्यिक अथवा वैज्ञानिक स्वरूप का हो, तब शासन की पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होगी।[6]

[7] सरकारी सेवक अपने वरिष्ठ अधिकारी के किसी विनिश्चय अथवा राज्य या केन्द्र* सरकार के किसी क्रियाकलाप अथवा नीति के प्रतिकूल आलोचना रेडियो प्रसारण अथवा लेख में नहीं करेगा और न ही इस आशय का कोई कथन करेगा।[7]

---

1. नियम-4
2. नियम 4-क
3. नियम-5
5. नियम 5-क
6. नियम-6
7. नियम-7

[8] शासन की पूर्व सहमति के सिवाय, सरकारी सेवक किसी जाँच के संबंध में साक्ष्य नहीं देगा। यदि ऐसी सहमति दे दी गयी हो तो सरकारी सेवक, साक्ष्य देने के दौरान, राज्य या केन्द्र सरकार की नीति की आलोचना नहीं करेगा।

पूर्वोक्त सहमति की आवश्यकता निम्नलिखित जाँच कार्यवाहियों में नहीं होगी :-

[1] यदि जाँच प्राधिकारी की नियुक्ति शासन, केन्द्र सरकार, उत्तर प्रदेश विधान-मण्डल अथवा संसद द्वारा की गयी हो, तथा

[2] किसी न्यायिक जाँच में।[8]

[9] सरकारी सेवक कार्यालय की कोई सूचना अथवा दस्तावेज किसी ऐसे सरकारी सेवक अथवा अन्य किसी व्यक्ति को संसूचित नहीं करेगा जिनसे, वह सूचना या दस्तावेज संसूचित करने के लिए प्राधिकृत न हो।[9]

[10] शासन की पूर्व अनुमति के सिवाय, सरकारी सेवक किसी भी प्रकार का चन्दा नहीं माँगेगा, न ही स्वीकार करेगा, न ही कोई निधि बनाने से सम्बद्ध होगा।[10]

[11] शासन की पूर्व अनुमति के सिवाय, सरकारी सेवक अपने निकट-सम्बन्धी से भिन्न किसी व्यक्ति से कोई दान, उपदान, अथवा पुरस्कार, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नहीं लेगा, न ही अपने परिवार के किसी सदस्य को ऐसा करने की अनुमति देगा।

परन्तु वह अथवा उसके परिवार का कोई सदस्य अधिकतम रू0 51/- मूल्य का वैवाहिक उपहार, अथवा किसी धर्मानुष्ठान के अवसर पर उपहार, प्राप्त कर सकता है। यद्यपि प्रयास यह होना चाहिए कि ऐसे उपहारों को भी हतोत्साहित किया जाए।[11]

---

8. नियम-8
9. नियम-9
10. नियम-10
11. नियम-11

[12] सरकारी सेवक न तो दहेज लेगा, न देगा और न ही दहेज की मांग करेगा।[12]

[13] शासन की पूर्व अनुमति के सिवाय, सरकारी सेवक, अपने सम्मान में आयोजित, लोक-सत्कार में सम्मिलित नहीं होगा।

परन्तु सरकारी सेवक अपने स्थानान्तरण या सेवानिवृत्ति के अवसर पर आयोजित विदाई समारोह, जो प्राइवेट अथवा औपचारिक किस्म का हो, में सम्मिलित हो सकता है।[13]

[14] शासन की पूर्व अनुमति के सिवाय, सरकारी सेवक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई व्यवसाय आदि नहीं करेगा।

परन्तु वह अवैतनिक रूप से साहित्यिक, कलात्मक या वैज्ञानिक प्रकृति के सामाजिक अथवा परोपकारी प्रकृति के कार्य कर सकता है। शर्त यह है कि ऐसे कार्य से उसके पदीय कर्तव्यों की हानि न हो, तथा उस कार्य की सूचना एक माह के अन्दर विभागाध्यक्ष को दे दी जाए। यदि शासन ऐसा कार्य न करने का निदेश देता है तो वह कार्य उस सेवक द्वारा नहीं किया जाएगा।[14]

[15] शासन की पूर्व अनुमति के सिवाय, सरकारी सेवक किसी बैंक या कम्पनी के पंजीकरण, उत्थान अथवा प्रबन्ध का कार्य नहीं करेगा।[15]

[16] सरकारी सेवक अपनी नियुक्ति वाले जनपद में अपनी पत्नी या अन्य रिश्तेदार, जो पूरी तरह उस पर आश्रित है, अथवा उसके पास रहता है, को बीमा अभिकर्ता के रूप में कार्य करने की अनुमति नहीं देगा।[16]

[17] समुचित प्राधिकारी की पूर्व अनुमति के सिवाय, सरकारी सेवक अपने आश्रित से भिन्न किसी व्यक्ति अथवा अवयस्क की सम्पत्ति के कानूनी अभिभावक के रूप में कार्य नहीं करेगा।[17]

---

12. नियम 11-क
13. नियम-14
14. नियम-15
15. नियम-16
16. नियम-17
17. नियम-18

यहाँ पर समुचित प्राधिकारी का तात्पर्य निम्नलिखित से है :-

1.	विभागाध्यक्ष, आयुक्त अथवा कलेक्टर	के लिए	राज्य सरकार
2.	जिला न्यायाधीश	के लिए	उच्च न्यायालय के प्रशासनिक न्यायाधीश
3.	अन्य सरकारी सेवकों	के लिए	सम्बन्धित विभागाध्यक्ष

{18} सरकारी सेवक किसी पूँजी निवेश में सट्टेबाजी नहीं करेगा।[18] तथा स्वयं या अपने परिवार के किसी सदस्य को ऐसा कोई पूँजी निवेश करने की अनुमति नहीं देगा, जिससे कि उसके पदीय कर्तव्यों के निष्पादन पर प्रभाव पड़ता हो।[19]

{19} समुचित प्राधिकारी की पूर्व अनुमति के सिवाय, सरकारी सेवक किसी व्यक्ति को ब्याज पर कोई धनराशि कर्ज के रूप में नहीं देगा।

परन्तु वह अपने प्राइवेट सेवक को अग्रिम वेतन दे सकता है अथवा ब्याज रहित छोटी धनराशि का कर्ज या ऋण किसी मित्र अथवा रिश्तेदार को दे सकता है।

राजपत्रित अधिकारियों के समुचित प्राधिकारी शासन तथा अन्य सेवकों के समुचित प्राधिकारी कार्यालयाध्यक्ष होंगे।[20]

{20} सरकारी सेवक अपने वैयक्तिक कार्यों को इस प्रकार व्यवस्थित करेगा, जिससे कि वह ऋणी या दीवालिया होने से बचे। यदि किसी सरकारी सेवक के विरुद्ध दिवालियापन के लिए विधिक कार्यवाही चलाई जाती है, तब वह पूर्ण तथ्यों सहित इसकी रिपोर्ट कार्यालयाध्यक्ष अथवा विभागाध्यक्ष को तत्काल देगा।[21]

{21} सक्षम प्राधिकारी के पूर्व ज्ञान के सिवाय, सरकारी सेवक किसी अचल सम्पत्ति को, पट्टा, बन्धक, क्रय-विक्रय, दान या

---

18. नियम-20
19. नियम-21
20. नियम-22
21. नियम-23

अन्य प्रकार से, न तो अर्जित करेगा और न ही निस्तारित करेगा।

परन्तु नियमित एवं प्रतिष्ठित वितरक से भिन्न किसी व्यक्ति से ऐसा कोई संव्यवहार सक्षम प्राधिकारी की पूर्व अनुमति से ही किया जा सकेगा।[22]

प्रथम नियुक्ति के समय एवं उसके उपरान्त पाँच वर्षों के अन्तराल पर सरकारी सेवक उचित माध्यम से सभी अचल सम्पत्ति, जो उसने अर्जित की अथवा उत्तराधिकार में प्राप्त की, का विवरण नियुक्ति प्राधिकारी को देगा।[22]

[22] शासन की पूर्व अनुमति के सिवाय, सरकारी सेवक किसी कार्यालयी कार्य के दोष निवारण के लिए प्रेस का सहारा नहीं लेगा।[23]

[23] सरकारी सेवक अपने सेवा सम्बन्धी किसी हित के लिए स्वयं या अपने परिवार के किसी सदस्य के माध्यम से कोई राजनीतिक अथवा अन्य बाहरी प्रभाव डालने का प्रयत्न नहीं करेगा।[24]

[24] सरकारी सेवक, किसी अन्य सरकारी सेवक अथवा किसी अन्य व्यक्ति के साथ कोई अनाधिकृत आर्थिक व्यवस्था नहीं करेगा।[25]

[25] सरकारी सेवक, जिसकी पत्नी जीवित है, शासन की पूर्व अनुमति प्राप्त किये बगैर, दूसरा विवाह नहीं करेगा, भले ही दूसरा विवाह उस पर लागू होने वाली स्वीय विधि[पर्सनल लॉ] में अनुमन्य हो।

शासन की अनुमति प्राप्त किए बगैर, महिला सरकारी सेवक किसी ऐसे व्यक्ति से विवाह नहीं करेगी, जिसकी पत्नी जीवित है।[26]

[26] सरकारी सेवक, अपने पदीय कर्तव्यों के निष्पादन में सुगमता के लिए, शासन द्वारा उपलब्ध करायी गयी सुविधाओं का उपयोग असावधानीपूर्वक नहीं करेगा।[27]

---

22. नियम-24
23. नियम-25
24. नियम-27
25. नियम-28
26. नियम-29
27. नियम-30

[27] सरकारी सेवक जो भी वस्तु क्रय करेगा, उसके मूल्य का भुगतान तुरन्त उसके द्वारा किया जाएगा। यदि मूल्य की अदायगी किस्तों में करने का रिवाज हो अथवा विशेष उपबन्ध हों, तब किस्तों में अदायगी की जा सकती है।[28]

[28] सरकारी सेवक किसी ऐसी सेवा या मनोरंजन का, जिसके लिए किराया या मूल्य या प्रवेश शुल्क दिया जाना हो, उचित एवं पर्याप्त भुगतान किए बगैर उपभोग नहीं करेगा।[29]

[29] आपवादिक परिस्थितियों के सिवाय, सरकारी सेवक किसी अधीनस्थ सरकारी सेवक या प्राइवेट व्यक्ति के वाहन का उपयोग नहीं करेगा।[30]

[30] सरकारी सेवक, अपने अधीनस्थ सरकारी सेवक से, सामान क्रय करने के लिए नहीं कहेगा।[31]

यद्यपि उक्त नियमों में सरकारी सेवक के आचरणों की संहिता दी हुई है, परन्तु यह सर्वांगीण नहीं है, इनके अतिरिक्त भी आचरण की "अलिखित संहिता" होती है, जिसका अनुपालन प्रत्येक सरकारी सेवक को करना होता है। ऐसी ही अलिखित संहिता, आंशिक रूप से उक्त नियमावली के नियम-3 में इस प्रकार समाविष्ट है,

[1] प्रत्येक सरकारी सेवक, हमेशा, परम सत्यनिष्ठा एवं कर्तव्यपरायणता बनाए रखेगा।

[2] प्रत्येक सरकारी सेवक, हमेशा, व्यवहार एवं आचरण को विनियमित करने वाले प्रवृत्त विशिष्ट अथवा अन्तर्निहित शासकीय आदेशों के अनुरूप आचरण करेगा।

उक्त वर्णित आचरण संहिता लगभग सभी सरकारी सेवाओं की आचरण नियमावलियों में समाविष्ट है तथा प्रत्येक सरकारी सेवक से इसके अनुरूप आचरण करना प्रत्याशित है।

---

28. नियम-31
29. नियम-32
30. नियम-33
31. नियम-34

अतः सरकारी सेवकों से अपेक्षित है कि वे अपने पदीय कर्तव्यों के निष्पादन में आचरण नियमावली तथा शासन द्वारा यथासमय जारी आदेशों के अनुरूप आचरण करें, साथ-ही-साथ वे अपने निजी जीवन में भी अपनी सेवा एवं पद की मानमर्यादा को ध्यान में रखते हुए अनुशासित रहें तथा शालीनतापूर्वक व्यवहार करें।

अध्याय- चार

दुराचरण

"दुराचरण" को आचरण नियमावली में परिभाषित नहीं किया गया है. इसका शाब्दिक अर्थ ऐसे कार्य या लोप से है जो दुराशय से किया गया हो। "स्ट्राउड्स ज्यूडिशियल डिक्शनरी" के अनुसार दुराचरण का तात्पर्य दुराशय से किए गए दुराचरण से है; परन्तु उपेक्षा का कार्य, निर्णय की त्रुटि अथवा अनभिज्ञताका की गई हानि, दुराचरण नहीं है। उच्चतम न्यायालय[1] के अनुसार, सामान्यतया, लोप के किसी एक कार्य या निर्णय की एक त्रुटि से दुराचरण नहीं बनता है, किन्तु यदि उस लोप या त्रुटि के फलस्वरूप गंभीर या नृशंस परिणाम हों तो वह दुराचरण हो सकता है। क्षमता की कमी अथवा महत्वपूर्ण पद की उच्चतम अपेक्षाओं तक पहुँचने में असफल होने मात्र से दुराचरण नहीं बनता है। कर्तव्य निर्वहन में उपेक्षा हो सकती है अथवा कोई कमी रह सकती है, अथवा बदलती हुई परिस्थितियों के अंकलन में निर्णय की त्रुटि हो सकती है, परन्तु ये तब तक दुराचरण नहीं होंगे, जब तक कि उसका दुष्परिणाम सीधे उस उपेक्षा से जुड़ा न हो, अथवा अपूरणीय क्षति न हुई हो।

सरकारी सेवक के आचरण को नियंत्रित करने के लिए आचरण नियमावली है, जिसमें नियत आचरण के प्रतिकूल अथवा उल्लंघन में किया गया कार्य या लोप दुराचरण है; परन्तु इनके अतिरिक्त भी ऐसे कार्य अथवा लोप हो सकते हैं, जो दुराचरण की श्रेणी में आएं। अतः प्रत्येक आचरण नियमावली में सामान्य प्रकृति के निम्नलिखित आचरण सरकारी सेवक से अपेक्षित हैं;

।1। प्रत्येक सरकारी सेवक, सदैव, परमसत्यनिष्ठा एवं कर्तव्य-परायणता बनाए रखेगा।

।2। प्रत्येक सरकारी सेवक, सदैव, व्यवहार एवं आचरण

1- भारत संघ बनाम जे0 अहमद-आ0ई0रि0 1977 सु0को0 1022

विनियमित करने वाले प्रवृत्त विशिष्ट अथवा अन्तर्निहित शासकीय आदेशों के अनुरूप आचरण करेगा।

उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक आचरण नियमावली के नियम-3, उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम कर्मचारी [अधिकारियों से भिन्न] सेवा विनियमावली, 1981 के विनियम-61, सेन्ट्रल सिविल सर्विसेज [कन्डक्ट] रूल्स, 1964 के नियम-3, रेलवे सर्विसेज [कन्डक्ट] रूल्स, 1966 के नियम-3 तथा आल इंडिया सर्विसेज [कन्डक्ट] रूल्स, 1968 के नियम-3 में पूर्वोक्त आचरण नियत हैं।

सत्यनिष्ठा का अभिप्राय ईमानदारी से है। सत्यनिष्ठ होने का अर्थ है कि सरकारी सेवक सत्यतापूर्वक, बिना किसी पक्षपात, भय या पूर्वाग्रह के, अपने कर्तव्यों का निर्वहन करे। सरकारी सेवक की सत्यनिष्ठा की कमी यदि सिद्ध हो तो उसे दुराचरण के लिए दोषी ठहराया जा सकता है।[2]

कर्तव्यपरायणता का अभिप्राय कर्तव्य के प्रति उदासीनता, आराम या हल्केपन, से कर्तव्य निर्वहन के विरुद्ध होने से है। महत्वपूर्ण पद को धारण करने वाले अधिकारी के उच्चतम अपेक्षाओं तक पहुँचने में असफल रहने अथवा नेतृत्व के गुणों की कमी या काबीलियत की कमी से यह नहीं कहा जा सकता है कि वह कर्तव्यपरायण बने रहने में असफल रहा।[2]

कलकत्ता उच्च न्यायालय[3] ने कहा है कि दुराचरण का तात्पर्य ऐसे आचरण से भी है, जो सरकारी सेवक के पद के अयोग्य हो, अथवा जिससे प्रशासन को लज्जित होने या उलझन में पड़ने की संभावना हो। अर्थात् जनजीवन में सरकारी सेवक का अनुचित या अशोभनीय आचरण भी दुराचरण हो सकता है।

उच्चतम न्यायालय ने एस0 गोविन्द मेनन बनाम भारत संघ,[4] के मामले में कहा है कि, यदि सरकारी सेवक का कार्य या लोप ऐसा है जो उसकी सत्यनिष्ठा• या पदीय प्रतिष्ठा को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता हो, अथवा उसकी कर्तव्यनिष्ठा को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता

2• भारत संघ बनाम जे0 अहमद-आ•ई•रि•1977 सु•को•1022

3• गुलाम मोहिउद्दीन बनाम पश्चिम बंगाल राज्य-आ•ई•रि•1964 कलकत्ता 503

4• आ•ई•रि•1967 सु•को•1274

हो, तो वह कार्य या लोप दुराचरण माना जाएगा तथा उसके विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई की जा सकती है।

सरकारी सेवक का कार्य यदि "तैयारी" के स्तर पर हो, उसके आगे कुछ न किया जाए तो कोई "दुराचरण" नहीं बनेगा[5] सरकारी सेवक को ऐसे आचरण के लिए, जो कारित करने के दिन दण्डनीय नहीं था, दण्डित नहीं किया जा सकता है।[6]

अतः, कोई कार्य या लोप दुराचरण है या नहीं? इसे जानने का सूत्र यह है कि क्या सरकारी सेवक के प्रश्नगत कार्य या लोप का, उसकी सेवा-शर्तों एवं सेवा की प्रकृति से, युक्तियुक्त संबंध है?

अथवा

क्या उस कार्य या लोप से सेवा के सदस्य की प्रतिष्ठा, सत्य-निष्ठा, अथवा कर्तव्यपरायणता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है?
यदि उसका उत्तर सकारात्मक हो तो ऐसा कार्य या लोप दुराचरण होगा। दुराचरण के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं;

[।] यदि सरकारी सेवक, सेवा में भर्ती के समय अपनी जन्म तिथि अथवा अन्य किसी महत्वपूर्ण तथ्य का गलत विवरण देता है तो यह दुराचरण है, जिसके लिए उसके विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई की जा सकती है[7]

[।।] यदि कोई सरकारी सेवक, शासकीय संसूचना लेने से इंकार करता है तो उसका यह कार्य आज्ञोलंघन के रूप में दुराचरण है।[8]

[।।।] एक राजकीय कालेज के स्टेनो-टाइपिस्ट एक दिन दो बदमाशों को कालेज परिसर में बुलाकर लाए तथा कालेज के मुख्य लिपिक पर उनसे हमला करवाया। इस आरोप पर स्टेनो-टाइपिस्ट के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही की गई और कालेज के प्राधिकारियों ने उसकी सेवा समाप्त करने का आदेश किया, क्योंकि उसका उक्त कार्य सरकारी सेवक के लिए अशोभनीय

---

5. चन्द्रकांत बनाम महाराष्ट्र राज्य-1991[62]एफ-एल-आर-302[बम्बई उच्च न्यायालय]
6. प्यारे लाल शर्मा बनाम एम०डी०-1989[59]एफ-एल-आर-220[सु-को-]
7. मकड़ूदीलाल बनाम भारत संघ-1981[2]स-ला-रि-555[पंजाब एवं हरियाणा उ-न्या-]
8. कलकत्ता जुट मैनुफैक्चरिंग कं० बनाम वर्कर्स यूनियन-आ-ई-रि-1966 सु-को-173।

एवं अनुचित था तथा गंभीर दुराचरण था?

निजी जीवन में दुराचरण

कभी-कभी प्रश्न उठता है कि क्या सरकारी सेवक का, उसके निजी जीवन में किया गया, कार्य या लोप दुराचरण माना जा सकता है?

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने **लक्ष्मी नारायण पाण्डेय बनाम जिलाधिकारी,बलिया**,[10] में कहा है कि उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक आचरण नियमावली का नियम–3 आचरण की अलिखित संहिता निर्दिष्ट करता है तथा सरकारी सेवक से, अपने निजी जीवन में भी, शिष्ट नागरिक की तरह व्यवहार करने की अपेक्षा करता है। शासन के मतानुसार यदि सरकारी सेवक द्वारा किया गया कार्य उसकी पदीय गरिमा के लिए अशोभनीय एवं अयोग्य हो तो वह दुराचरण माना जा सकता है, भले ही वह कार्य उसके पदीय कर्तव्यों से असंबंधित हो। इस मामले के तथ्य इस प्रकार हैं, श्री लक्ष्मी नारायण पाण्डेय बलिया में नायब तहसीलदार थे। उनके पड़ोस में श्री चतुर्भुज सहाय रहते थे, जिन्होंने श्री पाण्डेय के विरूद्ध विभागीय परिवाद किया कि दिनांक 26/27 जुलाई, 1958 की रात में श्री पाण्डेय उनकी पत्नी के साथ व्यभिचार करने के प्रयोजन से उनके घर में घुसे थे। इस परिवाद पर विभागीय जाँच की कार्यवाही हुई तथा श्री पाण्डेय के विरूद्ध आरोप विरचित किए गए। श्री पाण्डेय का तर्क था कि इस परिवाद का उनके पदीय कर्तव्यों से कोई संबंध नहीं है, अतः विभागीय स्तर पर उनके विरूद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती है। उच्च न्यायालय के समक्ष प्रश्न उठा कि क्या सरकारी सेवक अपने पदीय कर्तव्यों से असंबंधित कार्यों के लिए विभागीय स्तर पर उत्तरदायी है? इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने कहा कि, शासन को अपने सेवकों से यह अपेक्षा करने का अधिकार प्राप्त है कि वे अपने निजी जीवन में शालीनता एवं नैतिकता के निश्चित मानकों का पालन करेंगे तथा अपने पड़ोसी के घर में उसकी पत्नी के

9- बलदेव सिंह बनाम पंजाब राज्य-1981[1] सन-ला-ज-372 [पंजाब-हरियाणा उ-न्या]
10-आ-ई-रि-1960 इलाहाबाद 55

साथ व्यभिचार करने के प्रयोजन हेतु नहीं जायेंगे। शासन अपने सेवकों से उनके पदीय कर्तव्यों के निष्पादन के समय उनके सदाचारी होने की अपेक्षा तो कर ही सकता है, साथ-ही-साथ उन्हें निजी जीवन में भी सदाचारी होने की अपेक्षा कर सकता है।

सरकारी सेवक आचरण नियमावली सर्वांगीण नहीं है, इसके अलावा भी आचरण की अलिखित संहिता होती है, जिसका पालन प्रत्येक सरकारी सेवक को करना अनिवार्य है। आचरण की अलिखित संहिता को आंशिक रूप से उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक आचरण नियमावली के नियम-3 में समाविष्ट किया गया है। अतः सरकारी सेवक के पदीय कर्तव्यों से असंबंधित कार्य या लोप भी दुराचरण हो सकते हैं, यदि वे सेवा अथवा पदीय गरिमा के लिए अशोभनीय एवं अयोग्य हों, अथवा आचरण की अलिखित संहिता का उल्लंघन करते हों। उच्च न्यायालय ने श्री पाण्डेय के उक्त तर्क को अस्वीकार करते हुए अवधारणा किया कि उक्त चर्चित परिवाद पर दुराचरण के लिए विभागीय कार्यवाही की जा सकती है।

इस मत का अनुसरण बम्बई उच्च न्यायालय ने, माधो सिंह बनाम बम्बई राज्य[11] के मामले में किया है, जिसके तथ्य इस प्रकार हैं; श्री माधो सिंह, पुलिस-सिपाही, के मकान के ऊपर होमगार्ड के कम्पनी-कमाण्डर श्री देसाई रहते थे। दोनों मकानों का एक ही शौचालय था। शौचालय के प्रयोग को लेकर माधो सिंह ने श्री देसाई से अपमानकारी एवं अभद्र व्यवहार किया। श्री देसाई ने श्री माधो सिंह के विरुद्ध परिवाद, विभागीय स्तर पर, किया। तदनुसार श्री माधो सिंह के विरुद्ध विभागीय जाँच आरम्भ हुई। इस केस में भी यह प्रश्न उठा कि क्या निजी जीवन में किए गए कार्य के लिए विभागीय कार्यवाही की जा सकती है? बम्बई उच्च न्यायालय ने अवधारणा किया कि जब कोई व्यक्ति किसी सेवा में नियोजित होता है तब आवश्यक विवक्षा से स्वीकार करता है कि वह इस

11· आ·ई·आर·1960 बम्बई 285

प्रकार आचरण एवं व्यवहार करेगा जो उसकी सेवा की प्रकृति के प्रतिकूल न हो। यदि वह अपनी सेवा की प्रकृति के प्रतिकूल आचरण एवं व्यवहार करता है तो उसका आचरण सेवायोजक की प्रतिष्ठा अथवा हितों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है और जब भी ऐसा होता है, तब सेवायोजक ऐसे सेवक के विरूद्ध अनुशासनिक कार्यवाही करने का अधिकारी होता है।

अतः किसी सेवायोजक को अपने सेवक के विरूद्ध अनुशासनिक कार्यवाही करने की यह पूर्ववर्ती शर्त नहीं है कि दुराचरण "कार्यावधि" में ही किया गया हो; अपितु निजी जीवन में भी सेवक द्वारा दुराचरण करने पर उसके विरूद्ध अनुशासनिक कार्यवाही की जा सकती है।

पुलिस के सिपाही से अपेक्षित है कि वह निजी जीवन में जनमानस से भद्रता एवं शिष्टतापूर्वक व्यवहार करे। परन्तु श्री माधो सिंह ने इसके प्रतिकूल व्यवहार श्री देसाई से किया। उनके इस आचरण से पुलिस बल की बदनामी होने की संभावना है। अतः इस दुराचरण के लिए उनके विरूद्ध विभागीय स्तर पर कार्यवाही की जा सकती है।

अतः यह विधि सुस्पष्ट है कि सरकारी सेवक यदि अपने निजी जीवन में कोई ऐसा दुराचरण करता है जो उस सेवा को बदनाम करने वाला हो अथवा पद की गरिमा के प्रतिकूल हो, तब ऐसे दुराचरण के लिए उसके विरूद्ध अनुशासनिक कार्रवाई की जा सकती है।

पूर्ववर्ती दुराचरण

डा0 बूलचन्द बनाम कुलपति,कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय,[12] का मामला "पूर्ववर्ती दुराचरण" के संबंध में अनुशासनिक कार्रवाई का उदाहरण प्रस्तुत करता है। डा0 बूलचन्द भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्य थे। वर्ष 1963 में उन्हें अनुशासनहीनता एवं गंभीर दुराचरण के आरोप में बेबयक सेवानिवृत्त किया गया था। वर्ष 1965 में डा0 बूलचन्द को पंजाब विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किया गया तथा कुछ माह

12. आ०इ०रि० 1968 सु०को० 292

बाद उन्हें कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय का उपकुलपति नियुक्त किया गया था। वर्ष 1966 में कुलपति ने उन्हें निलम्बित कर दिया तथा पूर्ववर्ती सेवा में दुराचरण के लिए दंडित होने के संदर्भ में कारण बताओ नोटिस देकर उनकी सेवा समाप्त कर दी। उच्चतम न्यायालय ने सेवा-समाप्ति के इस आदेश को वैध माना।

अतः यह स्पष्ट है कि वर्तमान सेवा में नियोजित होने से पूर्व की सेवा में किए गए दुराचरण के लिए दण्डित सेवक, यदि इस तथ्य को छिपाकर सेवायोजित होता है तो इस आधार पर वर्तमान सेवा में उसके विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई की जा सकती है। परन्तु पूर्ववर्ती सेवा में किए गए दुराचरण के लिए वर्तमान सेवा में आरोपित नहीं किया जा सकता, न ही विभागीय जाँच की जा सकती है।[13]

सारांश

अतः आचरण नियमावली तथा शासन द्वारा यथासमय जारी किए गए आदेशों के प्रतिकूल या उल्लंघन में किया गया कार्य या लोप दुराचरण है। सामान्यतया, सेवक की लापरवाही का कार्य दुराचरण नहीं होता; अपितु दुराशय से किया गया कार्य या लोप दुराचरण होता है।[14] सरकारी सेवक को अपने निजी जीवन में भी अपनी सेवा एवं पद की मानमर्यादा को ध्यान में रखते हुए अनुशासित रहना होता है तथा शालीनता पूर्वक व्यवहार करना होता है। यदि कोई सेवक इसके विपरीत आचरण करता है तो उसे "दुराचरण" कहा जाता है। दुराचरण करने वाले सरकारी सेवक के विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई करके उसे दण्डित किया जा सकता है।

---

13. अब्दुल अजीज खान बनाम भारत संघ-1974 । । सलारि-67 । इलाहाबाद । तथा के-एस-रौव बनाम तमिल नाडु राज्य-1984 । । स-ला क-510 । मद्रास उ-न्या ।
14. डा0 एस0एस0 अहलुवालिया बनाम गोविन्द बल्लभ पन्त विश्वविद्यालय-1991 । 62 । एफ-एल-आर-49 । इलाहाबाद उच्च न्यायालय ।

यदि सरकारी सेवक ने पूर्व की किसी सेवा के दौरान दुराचरण किया हो तो वर्तमान सेवा में उसे उस दुराचरण के लिए आरोपित नहीं किया जा सकता है, न ही विभागीय जाँच की जा सकती है।

अध्याय- पाँच

दण्ड

सेवा विधिशास्त्र में, सरकारी सेवकों पर, उनके दुराचरण के लिए, अधिरोपित किए जाने वाले दण्डों को दो वर्गों में विभाजित किया गया है,

[1] लघुदण्ड, तथा

[2] महादण्ड।

लघुदण्ड

निम्नलिखित दण्ड लघुदण्ड कहलाते हैं :-

[1] सैंसर,

[2] अर्थ दण्ड,

[3] वेतन वृद्धि रोकना,

[4] दक्षता-रोध पार करने से रोकना,

[5] पदोन्नति रोकना,

[6] वेतन से वसूली, यदि शासन को आर्थिक क्षति हुई हो।

लघु दण्ड सरकारी सेवक की पदावधि को प्रभावित नहीं करते हैं।[1]

महादण्ड

निम्नलिखित दण्ड महादण्ड कहलाते हैं :-

[1] रैंक में अवनति या पंक्तिच्युत करना,

[2] सेवा से हटाना,

[3] पदच्युत करना,

[4] वैकल्पिक सेवा निवृत्ति, यदि दंड स्वरूप की गई हो।[2]

महादण्ड सरकारी सेवक की पदावधि पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।[2]

1· भारत संघ बनाम तुलसी राम पटेल-1985[2]स०ला० क०145[सु०को०]

2· तुलसीराम पटेल का पूर्वोक्त मामला

सेवा विधिशास्त्र में मान्य दण्डों को सेवा नियमावलियों में अंगीकृत किया गया है, परन्तु कुछ लघुदण्ड अंगीकृत नहीं किये गये हैं। सेवा नियमावली में जो दण्ड नियत हैं वही दण्ड या उनमें से कोई दण्ड उन सेवकों पर अधिरोपित किये जा सकते हैं जिन पर वह नियमावली लागू होती है।

सेवा विधिशास्त्र में मान्य पूर्वोक्त दण्डों में से जो दण्ड जिस नियमावली में अंगीकृत नहीं हैं उनका विवरण इस प्रकार है,

सिविल सर्विसेज [क्लासिफिकेशन, कंट्रोल ऐण्ड अपील] रूल्स, 1930 के नियम 49 में उन दण्डों का विवरण दिया हुआ है, जो राज्य की सिविल सेवाओं एवं विशेषतः सेवाओं के सदस्यों पर अधिरोपित किए जा सकते हैं। इस नियम में अर्थ दण्ड लगाने तथा पदोन्नति रोकने के दण्डों का उल्लेख नहीं है। अतः ये दण्ड उक्त सेवाओं के सदस्यों पर अधिरोपित नहीं किए जा सकते।

पनिशमेण्ट ऐण्ड अपील रूल्स फार सबोर्डिनेट सर्विसेज, उ0प्र0, 1932 राज्य की अधीनस्थ सेवाओं के सदस्यों पर लागू होता है। इसके नियम-। में दण्ड नियत हैं, जिनमें पदोन्नति रोकने के दण्ड का उल्लेख नहीं है तथा यह उपबंध किया गया है कि सिर्फ निम्नतर सेवाओं के सदस्यों पर अर्थ दण्ड लगाया जा सकता है, प्रतिबन्ध यह है कि उसकी धनराशि, जिस माह में अर्थ दण्ड लगाया जाए उस माह के वेतन के एक चौथाई धनराशि से अधिक न हो।

यू0पी0 स्टेट इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड [आफीसर्स ऐण्ड सर्वेण्ट्स] [कण्डीशन्स आफ सर्विसेज] रेगुलेशन्स, 1975 के विनियम 2 में उपबंध है कि परिषद् में नियुक्त व्यक्तियों के आचरण, दण्ड आदि के संबंध में वही नियम लागू होंगे जो उत्तर प्रदेश सरकार के सहसंबंधी संवर्ग के सरकारी

सेवकों पर लागू होते हैं। अतः उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत परिषद् के अधिकारियों पर सी॰सी॰ए॰ रूल्स, 1930 तथा कर्मचारियों पर पनिशमेण्ट ऐण्ड अपील रूल्स फार सबोर्डिनेट सर्विस, यू0पी0, 1932 के उक्त वर्णित नियम लागू होते हैं। अतः इन नियमावलियों में नियत पूर्वोक्त दण्ड उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत परिषद् के सेवकों पर अधिरोपित किए जा सकते हैं।

उ0प्र0 सबोर्डिनेट कोर्ट स्टाफ [पनिशमेण्ट ऐण्ड अपील] रूल्स, 1976 सिविल न्यायालय के कर्मचारियों पर लागू होता है, जिसके नियम-4 में दण्ड नियत है। इस नियम में पदोन्नति रोकने के दण्ड का उल्लेख नहीं है तथा यह उपबंध किया गया है कि अर्थ दण्ड सिर्फ चतुर्थ श्रेणी [समूह "घ"] के कर्मचारियों पर अधिरोपित किया जा सकता है। प्रत्येक न्यायालय के पीठासीन अधिकारी अपने अधीन कार्यरत समूह "ग" एवं "घ" के कर्मचारियों को सेंसर कर सकते हैं तथा समूह "घ" के कर्मचारियों पर अर्थ दण्ड भी अधिरोपित कर सकते हैं। प्रतिबन्ध यह है कि अर्थ दण्ड की धनराशि एक माह के वेतन से अधिक न हो।

उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम कर्मचारी [अधिकारियों से भिन्न] सेवा नियमावली, 1981 के नियम 63 में उन दण्डों का विवरण दिया हुआ है जो निगम के समूह "ग" एवं "घ" के कर्मचारियों पर अधिरोपित किए जा सकते हैं। इसमें अर्थ दण्ड लगाने एवं पदोन्नति रोकने के दण्ड का उल्लेख नहीं है। अतः ये दण्ड उन कर्मचारियों पर अधिरोपित नहीं किए जा सकते।

उत्तर प्रदेश नगर महापालिका सेवा नियमावली, 1962 के नियम 29 में दण्डों का विवरण है, जिसमें दक्षतारोध एवं पदोन्नति रोकने का उल्लेख नहीं है। अतः नगर महापालिका के कर्मचारियों पर ये दण्ड अधिरोपित नहीं किए जा सकते हैं। अर्थ दण्ड सिर्फ निम्नतर सेवा के सदस्यों पर अधिरोपित किए जा सकते हैं, प्रतिबन्ध यह है कि अर्थ दण्ड की धनराशि उसके एक माह के वेतन के आधे भाग से अधिक न हो।

यू0पी0 म्यूनिसिपल बोर्डस सर्वेन्ट्स [इन्क्वायरी, पनिशमेन्ट ऐण्ड टर्मिनेशन आफ सर्विस] रूल्स, के नियम-4 में नगरपालिका के सेवकों पर अधिरोपित किए जाने वाले दण्ड नियत हैं, जिनमें पदोन्नति रोकने एवं वेतन से वसूली करने का उल्लेख नहीं है। अतः नगरपालिका के सेवकों पर ये दण्ड अधिरोपित नहीं किए जा सकते हैं।

सेन्ट्रल सिविल सर्विसेज [क्लासिफिकेशन, कंट्रोल ऐण्ड अपील] रूल्स, 1965, ऐसे सरकारी सेवकों पर लागू होता है, जो संघीय सेवा के सदस्य हों, अथवा राज्य सरकार की सेवा के सदस्य हों परन्तु उनकी सेवाएं अस्थायी रूप से केन्द्र सरकार के नियंत्रणाधीन की गई हो। इस नियमावली के नियम 11 में दण्ड नियत हैं, जिनमें अर्ध दण्ड एवं दक्षता रोध रोकने का उल्लेख नहीं है।

अखिल भारतीय सेवाएं [अनुशासन एवं अपील] नियमावली, 1969 के नियम 6 में उन दण्डों का विवरण दिया हुआ है जो भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा भारतीय पुलिस सेवा के सदस्यों पर अधिरोपित किए जा सकते हैं। इन दण्डों में अर्ध दण्ड लगाने तथा दक्षता रोध रोकने के दण्डों का उल्लेख नहीं है, अतः ये दण्ड उक्त सेवाओं के सदस्य पर अधिरोपित नहीं किए जा सकते।

रेलवे सर्वेन्ट्स [डिसिप्लिन ऐण्ड अपील] रूल्स, 1968 के नियम 6 में दण्डों का विवरण है। जिनमें अर्ध दण्ड एवं दक्षतारोध रोकने का उल्लेख नहीं है, परन्तु रेलवे पास या टिकट आदि की सुविधा रोकने का लघुदण्ड अधिरोपित करने का उपबंध है।

अतः सुस्पष्ट है कि विभिन्न सेवा नियमावलियों में नियत लघु दण्डों में कुछ अंतर है, किसी नियमावली में अर्ध दण्ड नियत नहीं है, तो किसी में दक्षतारोध या पदोन्नति रोकना नियत नहीं है। परन्तु सैंसर करना, वेतन वृद्धि रोकना तथा वेतन से वसूली का दण्ड अधिरोपित करने का प्राविधान सभी नियमावलियों में है। विभिन्न सेवा नियमावलियों में नियत महादण्डों में कोई अन्तर नहीं है, ये सभी नियमावलियों में एक समान हैं।

अतः सेवा विधिशास्त्र में मान्य पूर्वोक्त लघुदण्डों में से जो दण्ड सेवा नियमावली में नियत नहीं हैं उनके सिवाय, सेवा विधिशास्त्र के शेष लघुदण्ड उन सरकारी सेवकों पर अधिरोपित किए जा सकते हैं जिन पर वह सेवा नियमावली लागू होती है।

सेवा विधिशास्त्र में मान्य प्रत्येक दण्ड की प्रकृति एवं लक्षण की सुस्पष्ट जानकारी होनी आवश्यक है।

सैंसर

सरकारी सेवक को दिए जाने वाले दण्डों में से सबसे लघु प्रकृति का दण्ड सैंसर है। किसी सरकारी सेवक को सैंसर करने का आशय यह है कि उसे संसूचित किया जाए कि वह किसी निन्दनीय कार्य या लोप का दोषी है, जिसके लिए उसे औपचारिक दण्ड देना आवश्यक समझा गया है। सैंसर का दण्ड लिखित आदेश द्वारा संसूचित किया जाता है।

सामान्यतया, सरकारी सेवक को उसकी किसी गलती के लिए मात्र "चेतावनी" देना कोई दण्ड नहीं है।[3] परन्तु सेवक के किसी दुराचरण के लिए अनुशासनिक कार्रवाई की प्रकृति की कार्यवाही करके दुराचरण के लिए दोषी पाते हुए चेतावनी देने का आदेश किया जाता है तथा इस आदेश की प्रति उस सेवक की चरित्र-पंजिका पर रखने का भी आदेश किया जाता है तो "चेतावनी" देने का यह आदेश "सैंसर" का दण्ड माना जाएगा। इस संदर्भ में नथान सिंह बनाम भारत संघ,[4] का केस एक अच्छा उदाहरण है। श्री नथान सिंह के विरुद्ध लगाए गए दुराचरण के अभियोग का विवरण उसे कारण बताओ नोटिस सहित दिया गया था। उसने अपना लिखित स्पष्टीकरण दिया। तदुपरान्त "चेतावनी" देने का आदेश पारित किया गया, जिसमें कहा गया था कि उसके विरुद्ध लगाए गए अभियोग सही पाए गए हैं। उस आदेश में यह भी निदेश था कि इस आदेश की एक प्रति श्री नथान सिंह की चरित्र पंजिका में रखी जाए। दिल्ली उच्च न्यायालय ने कहा कि ऐसे मामलों में आदेश का रूप अथवा उसमें इस्तेमाल किए गए शब्द अथवा नामावली महत्वपूर्ण

3-के० माधवन बनाम आयकर आयुक्त, कोचीन-1983 (1) स०ला० रि०-773 (केरल उच्च न्याया०)
4-1969 स०ला० रि०-24 (दिल्ली उच्च न्याया०)

नहीं होती, बल्कि उस आदेश की "विषय-वस्तु एवं भाव", वास्तव में, महत्वपूर्ण होते हैं। श्री नथान सिंह को "चेतावनी" देने का आदेश जिस कार्यवाही में पारित किया गया उसकी प्रकृति अनुशासनिक कार्रवाई की थी तथा उसे दुराचरण के लिए दोषी पाया गया था एवं उस आदेश की प्रतिलिपि उसकी चरित्र-पंजिका में रखने का भी निदेश दिया गया था। आदेश करने वाले प्राधिकारी ने स्वयं को "अनुशासनिक प्राधिकारी" लिखते हुए आदेश निर्गत किया था। इन परिस्थितियों में यही माना जाएगा कि यद्यपि आदेश में "चेतावनी" देना कहा गया था, परन्तु इस आदेश से "सेंसर" का दण्ड अधिरोपित किया गया है।

अर्थ दण्ड

सरकारी सेवक पर एक निश्चित धनराशि तक का अर्थ दण्ड अधिरोपित किया जा सकता है, यदि उस पर लागू होने वाले नियमों में तत्संबंधी उपबंध हो। अर्थ दण्ड की धनराशि वह सेवक स्वयं जमा कर सकता है। यदि वह स्वयं जमा न करे तो उसके वेतन से अर्थ दण्ड की वसूली की जा सकती है।

सामान्यतया, अधीनस्थ सेवाओं के सदस्यों पर अर्थ दण्ड लगाने के उपबंध किए गए हैं। उदाहरणस्वरूप, उ0प्र0 अधीनस्थ सेवाओं के लिए दण्ड एवं अपील नियमावली [पनिशमेण्ट ऐण्ड अपील रूल्स फार सबोर्डिनेट सर्विसेज, उ0प्र0, 1932] में यह उपबंध किया गया है कि सिर्फ निम्नतर सेवाओं के सदस्यों पर अर्थ दण्ड लगाया जा सकता है, प्रतिबन्ध यह है कि उसकी धनराशि, जिस माह में अर्थ दण्ड लगाया जाए उस माह के वेतन की एक चौथाई धनराशि से, अधिक न हो।

एक अन्य उदाहरण, उ0प्र0 अधीनस्थ न्यायालय स्टाफ [दण्ड एवं अपील] नियमावली, 1976 का है, जिसमें यह उपबंध है कि जिला न्यायाधीश या संबंधित न्यायालय के पीठासीन अधिकारी चतुर्थ श्रेणी कर्म-चारियों पर अर्थ दण्ड अधिरोपित कर सकते हैं, प्रतिबन्ध यह है कि

उसकी धनराशि संबंधित कर्मचारी के एक माह के वेतन की धनराशि से अधिक न हो।

वेतन वृद्धि रोकना

सरकारी सेवक का एक वेतनमान होता है, जिसमें प्रत्येक वर्ष वेतन वृद्धि की एक धनराशि नियत रहती है। साधारणतया, सरकारी सेवक इस वेतन-वृद्धि को प्रतिवर्ष पाने का अधिकारी होता है, परन्तु यदि किसी सेवक का आचरण अच्छा न रहा हो या कार्य संतोषजनक न रहा हो तो, शासन या सक्षम प्राधिकारी उसकी वेतन-वृद्धि रोक सकते हैं।[5]

वेतन के जिस प्रक्रम पर अगली वेतन वृद्धि लगनी हो, उसे दण्डस्वरूप रोकने को "वेतन वृद्धि रोकना" कहा जाता है। यह दण्ड एक निश्चित अवधि के लिए अधिरोपित किया जाना चाहिए।[5]

उच्चतम न्यायालय[6] ने कहा है कि,

"संचयी प्रभाव से दो वेतन-वृद्धियाँ [दो वर्षों की] रोकने का दण्ड अधिरोपित करने का अभिप्राय यह है कि उस सेवक को अर्जित होने वाली दो वेतन वृद्धियाँ हमेशा के लिए समाप्त हो जाएंगी। इस आदेश का, आवश्यक विवक्षा द्वारा, प्रभाव यह होगा कि प्रभावित सेवक अपने समय वेतनमान में दो प्रक्रम नीचे हो जाएगा तथा यही स्थिति उसकी अवशेष सेवावधि के दौरान निरन्तर बनी रहेगी। अर्थात् दो वर्षों की वेतनवृद्धि उसके समय वेतनमान में दण्डस्वरूप नहीं जोड़ी जाएगी। यदि सेवा नियमावली में, समय वेतनमान के निचले प्रक्रम पर अवनत करना महादण्ड नियत हो तो संचयी प्रभाव से दो वर्षों की वेतनवृद्धि रोकने का आदेश महादण्ड माना जाएगा।"

अतः अनिश्चित काल या अवशेष सेवावधि तक एक या अधिक वेतनवृद्धि रोकने का आदेश "समय वेतनमान में निचले प्रक्रम पर अवनत" करने के महादण्ड के समान होता है।

---

5. वित्तीय हस्तपुस्तिका खण्ड-II, भाग 2-4 का मूल नियम-24
6. कुलवन्त सिंह गिल बनाम पंजाब राज्य-1990 [3] स.न्या क. 135 [सु.को.]

दक्षतारोध पार करने से रोकना

सरकारी सेवकों के वेतनमान में "दक्षतारोध" का भी उपबंध होता है जिसे, सक्षम प्राधिकारी के आदेश से ही, पार करने की अनुमति होती है। यदि किसी वेतनमान में दक्षतारोध है तो सरकारी सेवक को दक्षतारोध के आगे वेतनवृद्धि उस प्राधिकारी की स्पष्ट स्वीकृति के बिना न दी जाएगी, जिसको वेतनवृद्धि रोक लेने का अधिकार है।[7]

अतः यदि वेतनमान में दक्षतारोध का उपबंध किया गया हो तो सरकारी सेवक को "दक्षतारोध" पार करने से रोका जा सकता है। यह दण्ड भी एक निश्चित अवधि के लिए अधिरोपित किया जाना चाहिए।

सरकारी सेवक की सेवा असंतोषप्रद होने अथवा सत्यनिष्ठा प्रमाणित न होने के कारण भी वेतनवृद्धि रोकी जा सकती है या दक्षतारोध पार करने से रोका जा सकता है। परन्तु ऐसे आदेश सेवा के स्वाभाविक परिणाम हैं, दण्ड नहीं हैं। यदि दुराचरण या दुर्व्यवहार के अभियोग पर अनुशासनिक कार्यवाई करके, वेतनवृद्धि रोकी जाए या दक्षतारोध पार करने से रोका जाए तभी ये आदेश दण्ड होंगे।

पदोन्नति रोकना

सामान्यतः सरकारी सेवा में सेवकों को पदोन्नति के अवसर उपलब्ध होते हैं। सेवा नियमावली में, किसी सरकारी सेवक को पदोन्नति का कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता है। वरीयता के साथ सुयोग्यता पर विचार करके पदोन्नति की जाती है।[8] संपूर्ण कार्य व आचरण के परिपेक्ष में यदि कोई सेवक सुयोग्य नहीं पाया जाता तो उसे पदोन्नत नहीं किया जाता है। ये तो किसी भी सेवा के स्वाभाविक परिणाम हैं। परन्तु किसी सेवक की पदोन्नति, उसके दुराचरण के लिए अनुशासनिक कार्यवाही करके भी, रोकी जा सकती है। अर्थात् यदि कोई सेवक दुराचरण करता है तो अनुशासनिक कार्यवाई करके उसकी पदोन्नति रोकी जा सकती

7· वित्तीय हस्त पुस्तिका खण्ड-II,भाग 2-4 का मूल नियम-25

8· उच्च न्यायालय,कलकत्ता बनाम अमल कुमार राय-आ·इ·रि·1962 सु·को·1704

है। यह पदोन्नति रोकना दण्ड माना जाएगा। यह दण्ड भी एक निश्चित अवधि के लिए अधिरोपित किया जाना समीचीन है।

वेतन से वसूली

जब सरकारी सेवक के किसी कार्य या लोप से शासन को कोई आर्थिक हानि पहुँची हो तो उस सेवक पर वेतन से वसूली का दण्ड अधिरोपित किया जा सकता है। यह दण्ड आर्थिक क्षति की धनराशि को देखते हुए अधिरोपित करना होता है। संपूर्ण आर्थिक क्षति अथवा उसके एक भाग के बराबर धनराशि वेतन से दण्डस्वरूप वसूली जा सकती है।

किसी सरकारी सेवक को, उसके दुराचरण के लिए, "सैंसर" करने के साथ-साथ, "वेतन से वसूली" का दण्ड भी दिया जा सकता है। अर्थात् एक दुराचरण के लिए एक साथ दो दण्ड अधिरोपित किए जा सकते हैं।[9]

जहाँ सेवा नियमों में, पदोन्नति का आधार वरीयता एवं योग्यता हो, तथा किसी सेवक को सैंसर एवं वेतन से वसूली का दण्ड दिया गया हो, तो पदोन्नति के लिए उसकी "योग्यता" सुनिश्चित करते समय, इन बातों [दण्डित होने की] पर विचार नहीं किया जाएगा।[9]

महादण्ड

महादण्डों की प्रकृति एवं लक्षण के बारे में चर्चा करने से पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि,

महादण्ड के संबंध में सरकारी सेवकों को संविधान के अनुच्छेद 311 में दो सुरक्षोपाय प्रदान किए गए हैं। प्रथम सुरक्षोपाय यह है कि सरकारी सेवक को नियुक्त करने वाले प्राधिकारी से अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा "पदच्युत" नहीं किया जाएगा या "पद से नहीं हटाया" जाएगा।[10]

9-पुन्नोस बनाम मैनेजर, पी० ऐण्ड टी० मोटर सर्विस, कोचीन तथा अन्य-1977 [2] ल० ला रि० 399 [केरल उच्च न्यायालय]
10-अनुच्छेद 311[1]

द्वितीय सुरक्षोपाय यह है कि विभागीय जाँच के उपरान्त ही किसी सरकारी सेवक को कोई महादण्ड, अर्थात्, "रैंक में अवनति", "सेवा से हटाना" या "पदच्युत करना", दिया जाएगा। इस विभागीय जाँच में उस सेवक को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों की सूचना दी जाएगी तथा उसे सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर प्रदान किया जाएगा।[11] इस नियम के निम्न लिखित तीन अपवाद हैं, जिनमें विभागीय जाँच किए बिना महादण्ड दिया जा सकता है,[12]

[1] जहाँ सरकारी सेवक ने ऐसा आचरण किया हो जिसके लिए आपराधिक आरोप पर उसे सिद्धदोष ठहराया गया है, या

[2] जहाँ महादण्ड देने के लिए सशक्त प्राधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि किसी कारण से, जो उस प्राधिकारी द्वारा लेखबद्ध किया जाएगा, यह युक्तियुक्त रूप से साध्य नहीं है कि ऐसी जाँच की जाए, या

[3] जहाँ, यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्यपाल का यह समाधान हो जाता है कि राज्य की सुरक्षा के हित में यह समीचीन नहीं है कि ऐसी जाँच की जाए।

यदि अनुच्छेद 311 के उपर्युक्त सुरक्षोपायों का उल्लंघन करके सरकारी सेवक पर कोई महादण्ड अधिरोपित किया जाता है तो वह दण्डादेश अवैध होगा। अतः सामान्य नियम यह है कि विभागीय जाँच कराने के उपरान्त ही किसी सरकारी सेवक को महादण्ड दिया जा सकता है।

रैंक में अवनति

सरकारी सेवक की "रैंक में अवनति" उसे निचले ग्रेड में लाकर या निचले वेतनमान में लाकर या निम्न पद पर प्रतिवर्तित करके, की जा सकती है।

यदि सरकारी सेवक को एक विशिष्ट रैंक में होने का अधिकार प्राप्त हो तथा उसे उस विशिष्ट रैंक से नीचे के रैंक में लाने का आदेश

11-अनुच्छेद 311 [2] 12-अनुच्छेद 311 [2] का द्वितीय परन्तुक

किया जाता है तो उसे "रैंक में अवनति" कहा जाता है। यदि उसे विशिष्ट रैंक में होने का कोई अधिकार प्राप्त न हो तथा उसे स्थानापन्न उच्च रैंक से उसके अधिष्ठायी निम्न रैंक में लाया जाता है तो सामान्यतया इसे "रैंक में अवनति" का दण्ड नहीं माना जाएगा।[13] अर्थात् यदि कोई व्यक्ति स्थानापन्न पद धारण करता है, परन्तु सेवा नियमों के अधीन उसे वह पद धारण किए रहने का कोई अधिकार प्राप्त न हो, तब अधिष्ठायी पद पर उसके प्रतिवर्तन से किसी अधिकार का समपहरण नहीं होता है, न ही उस आदेश के दुष्परिणाम होते हैं। ऐसा प्रतिवर्तन "रैंक में अवनति" का दण्ड नहीं है।[13] ऐसे मामलों में शासन को उसे निचले पद पर प्रतिवर्तित करने का अधिकार प्राप्त होता है। परन्तु, शासन को अभिव्यक्त या विवक्षित संविदा से अथवा नियमों के अधीन किसी सरकारी सेवक को निचले पद पर अवनति करने का अधिकार प्राप्त होने का यह अभिप्राय नहीं है कि सेवक के "रैंक में अवनति" का आदेश किसी भी परिस्थिति में दण्ड नहीं माना जा सकता। "रैंक में अवनति" दण्डस्वरूप की गई है या नहीं?, इसके परीक्षण के दो सूत्र हैं,

|1| क्या उस सेवक को पद या रैंक धारण करने का अधिकार प्राप्त था?

अथवा

|2| क्या "रैंक में अवनति" के आदेश से उस सेवक को दुष्परिणाम प्राप्त हुए हैं?

सरकारी सेवक को जब वेतन एवं पद की हानि हो अथवा उसके भविष्य में पदोन्नति के अवसर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, अथवा अमिट कलंक लगता हो, तब यह कहा जाएगा कि उसे सेवा संबंधी दुष्परिणाम प्राप्त हुए हैं।

यदि इनमें से किसी प्रश्न का उत्तर सकारात्मक हो तो यह माना जाएगा कि उस सेवक को दण्डित किया गया है।[13]

सरकारी सेवकों के, उच्च पद से निम्न पद पर, प्रतिवर्तन

13-पुरूषोत्तम लाल धिंगरा का केस-आर्ई०आर० 1958 सु०को० 37

के कुछ निर्णीत केसों के उदाहरण से विधिक स्थिति स्पष्ट होगी। उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत, बम्बई राज्य बनाम एफ०पी० अब्राहम्,[14] का मामला एक अच्छा उदाहरण है, जिसके तथ्य इस प्रकार हैं,

श्री अब्राहम् वर्ष 1948 में, सेन्ट्रल प्रोविन्सेज ऐण्ड बेरार पुलिस फोर्स में इंसपेक्टर के पद पर थे। दिनांक 9-6-1948 को उन्हें उप-पुलिस अधीक्षक के पद पर स्थानापन्न रूप से नियुक्त किया गया, परन्तु दिनांक 19-12-1949 के आदेश से उन्हें इंसपेक्टर के पद पर प्रतिवर्तित किया गया। उन्होंने कारण जानना चाहा लेकिन शासन ने कारण बताने से इंकार कर दिया, तब उन्होंने दीवानी वाद प्रस्तुत किया, जो डिक्री हुआ तथा नागपुर उच्च न्यायालय ने भी उसकी पुष्टि की तथा "रैंक में अवनति" का आदेश अवैध एवं निष्प्रभावी घोषित कर दिया। जिसके विरूद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की गई।

उच्चतम न्यायालय ने अवधारणा किया कि, किसी पद पर स्थानापन्न नियुक्ति से उस सेवक को वह पद धारण करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता है। ऐसा हो सकता है कि स्थायी सेवक के उपलब्ध न होने अथवा लम्बे अवकाश पर चले जाने के कारण उसे स्थानापन्न किया गया हो, अतः जब वह स्थायी सेवक वापस आता है तब स्वाभाविक रूप से स्थानापन्न रूप से नियुक्त सेवक को उसके मूल पद पर प्रतिवर्तित किया जाएगा। यह "प्रतिवर्तन", "रैंक में अवनति" नहीं है, क्योंकि स्थानापन्न पद पर नियुक्त करने की यह अंतर्निहित शर्त थी। कभी-कभी किसी व्यक्ति को स्थानापन्न पद इस आशय से दिया जाता है कि उसकी योग्यता की परख कर उसे स्थायी किया जाएगा। ऐसे मामले में स्थानापन्न नियुक्ति की यह शर्त अंतर्निहित होती है कि यदि वह अयोग्य पाया गया तब उसे वापस जाना होगा। अतः सक्षम अधिकारीगण यदि उस सेवक को उच्च पद के अयोग्य पाते हैं एवं उसे उसके मूल निचले पद पर प्रतिवर्तित करते हैं तो यह कार्यवाई स्थानापन्न पद पाने की शर्तों के अनुरूप मानी जाएगी। यह किसी भी प्रकार से दण्ड नहीं माना जाएगा और न ही "रैंक में अवनति" माना जाएगा।

14-आ०इं०रि० 1962 सु०को० 794

प्रस्तुत केस में, श्री अब्राहम् को उप-पुलिस अधीक्षक के पद पर बने रहने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं था, उन्हें सिर्फ स्थानापन्न रूप से नियुक्त किया गया था और बाद में, अयोग्य पाये जाने पर, उन्हें मूल पद पर प्रतिवर्तित कर दिया गया। स्थानापन्न पद पर नियुक्ति की शर्तों के अनुरूप शासन को ऐसा करने का अधिकार प्राप्त था। अतः यह प्रतिवर्तन, "रैंक में अवनति" नहीं था।

दूसरा उदाहरण, उच्च न्यायालय, कलकत्ता बनाम अमल कुमार राय एवं अन्य,[15] का मामला है। श्री अमल कुमार पश्चिम बंगाल न्यायिक सेवा में मुंसिफ पद पर नियुक्त थे। उच्च न्यायालय ने पहले, वरीयता क्रम में उनसे ठीक नीचे के अधिकारी को पदोन्नत किया तथा श्री अमल कुमार की पदोन्नति पर आठ माह बाद विचार करने का विनिश्चय किया। उसके बाद, एक-एक करके आठ कनिष्ठ मुंसिफों को भी पदोन्नत कर दिया गया। तदोपरान्त श्री अमल कुमार को अपर अधीनस्थ न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किया गया। श्री अमल कुमार ने प्रतिवेदन एवं अपील किया, परन्तु उच्च न्यायालय ने इस आधार पर उसे रोक रखा कि श्री अमल कुमार के विरुद्ध कोई अनुशासनिक कार्यवाही नहीं की गई है। बाद में श्री अमल कुमार राय ने दीवानी वाद प्रस्तुत किया जो डिक्री हुआ। विशेष अपील द्वारा यह प्रकरण उच्चतम न्यायालय के समक्ष लाया गया। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि सेवा नियमावली में किसी सरकारी सेवक को पदोन्नति का कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता है। वरीयता के साथ सुयोग्यता पर विचार करके पदोन्नति की जाती है। सी॰सी॰ए॰ रूल्स के नियम 49 में पदोन्नति रोकने का दण्ड देने का उपबंध है। परन्तु नियम 49 उन्हीं मामलों में लागू होगा जहाँ अनुशासनिक कार्यवाही द्वारा पदोन्नति रोकी गई हो। प्रस्तुत केस में, श्री अमल कुमार की पदोन्नति दण्डस्वरूप नहीं रोकी गई थी, अपितु श्री अमल कुमार राय को, उच्च न्यायालय ने, पदोन्नति के योग्य नहीं पाया।

15-आई॰ई॰आर॰ 1962 सु॰को॰ 1704

श्री अमल कुमार का तर्क था कि वरीयता क्रम में उनसे नीचे के आठ मुंसिफों को पदोन्नत करने से वह वरीयता सूची में आठ कनिष्ठ अधिकारियों से नीचे हो गए जिससे "रैंक में अवनति" हुई। परन्तु उच्चतम न्यायालय ने कहा कि इस तर्क में कोई बल नहीं है क्योंकि एक ही संवर्ग में कुछ स्थान नीचे होना अनुच्छेद 311[2] में वर्णित "रैंक में अवनति" नहीं है।

अनुच्छेद 311 में प्रयोग किए गए शब्द "रैंक" का तात्पर्य किसी व्यक्ति के वर्गीकरण से है, न कि जिस सेवा का वह सदस्य है, उसके पदानुक्रम के किसी एक संवर्ग में उसके विशिष्ट स्थान से। अर्थात्, जो व्यक्ति अधीनस्थ न्यायाधीश का पद धारण कर रहा था, उसे यदि मुंसिफ पद पर प्रतिवर्तित कर दिया जाता है तो यह प्रतिवर्तन, "रैंक में अवनति" माना जाएगा। अधीनस्थ न्यायाधीश के संवर्ग में जो अधिकारी हैं, वे "समान रैंक" धारण करते हैं, यद्यपि उनकी अपनी वरीयता सूची होती है। एक ही संवर्ग में, वरीयता सूची में कुछ स्थान नीचे हो जाने मात्र से "रैंक में अवनति" नहीं होगी एवं ऐसे मामले में अनुच्छेद 311[2] के उपबंध आकर्षित नहीं होंगे।[16]

यद्यपि वरीयता क्रम में कुछ स्थान नीचे करना "रैंक में अवनति" का दण्ड नहीं है, परन्तु यदि ऐसा किसी नियम या सिद्धान्त के बिना, मनमाने ढंग से किया गया हो तो संविधान के अनुच्छेद 16 का उल्लंघन होगा क्योंकि इससे उस सेवक के भविष्य में पदोन्नति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, तथा वरीयता क्रम में कुछ स्थान नीचे करने का मनमाना आदेश अनुच्छेद 16 के उल्लंघन के कारण अवैध होगा।[17]

उच्चतम न्यायालय ने **पंजाब राज्य बनाम जगदीप सिंह वगैरह,**[18] के केस में कहा है कि यदि सरकारी सेवक की स्थानापन्न या अस्थायी नियुक्ति से अवनति के फलस्वरूप वह सेवक अपने अधिष्ठायी रैंक में अपनी ज्येष्ठता खो देता है तब उसे "रैंक में अवनति" माना जाएगा, यदि ऐसा दण्डस्वरूप किया गया हो, न कि प्रशासनिक कारणों से।

16-अमल कुमार राय का पूर्वोक्त मामला तथा शरदकान्त मिश्र बनाम उड़ीसा उच्च न्यायालय-आ०इ०रि० 1976 सु०को० 1899

17-एस०के० घोष बनाम भारत संघ-1968 स०ला०रि० 741 [सु०को०]

18-आ०इ०रि० 1964 सु०को० 521

इस वाद के तथ्य इस प्रकार हैं :

श्री जगदीप सिंह वगैरह पेप्सू राज्य में स्थानापन्न तहसीलदार थे। दिनांक 23·10·56 को वित्त आयुक्त ने आदेश निर्गत करके उन्हें स्थायी कर दिया, जबकि कोई पद उपलब्ध नहीं था। दिनांक 1·11·56 को पेप्सू राज्य का विलय पंजाब राज्य में हो गया, तथा जगदीप वगैरह पंजाब राज्य के सरकारी सेवक हो गये थे। पंजाब सरकार ने स्थायीकरण आदेश पर पुनर्विचार किया तथा दिनांक 31·10·57 को आदेश निर्गत करके उक्त वर्णित स्थायीकरण को निष्प्रभावी घोषित कर दिया। इस आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गई कि यह "रैंक में अवनति" है तथा संविधान के अनुच्छेद 311¦2¦ के अनुपालन के उपरान्त ही ऐसा किया जा सकता था।

उच्चतम न्यायालय ने कहा कि वित्त आयुक्त ने जब आदेश पारित किया, तब तहसीलदार के पद रिक्त नहीं थे, अतः स्थायीकरण का आदेश अवैध एवं निष्प्रभावी था, जिसके कारण विधानतः जगदीप सिंह वगैरह स्थायी तहसीलदार नहीं थे। उन्हें ऐसी कोई प्रस्थिति प्राप्त नहीं हुई थी। अतः स्थायीकरण को निष्प्रभावी करने की कार्यवाही "रैंक में अवनति" नहीं थी, अपितु इसके द्वारा जगदीप वगैरह की प्रस्थिति, जो स्थायीकरण से पूर्व थी, को मान्यता प्रदान की गई थी। अतः अनुच्छेद 311¦2¦ लागू नहीं होता।

उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा कि यदि सरकारी सेवक को कोई पद या विशिष्ट प्रस्थिति धारण करने का अधिकार प्राप्त न रहा हो, फिर भी शासन के कोई प्राधिकारी अपनी शक्तियों से परे कार्य करते हुए उस सेवक को वह प्रस्थिति प्रदान कर देवें, जबकि ऐसा करने के लिए वह विधानतः प्राधिकृत नहीं थे, तब यह माना जाएगा कि वह सेवक उस पद या विशिष्ट प्रस्थिति पर विधानतः नियुक्त नहीं हुआ था।

उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत भारत संघ बनाम आर०एस०

धावा,[19] का केस भी एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है। श्री आर०एस० धावा आयकर विभाग में वरिष्ठ लिपिक थे, उन्हें 1·12·1949 को इस पद पर स्थायी कर दिया गया था। दिनांक 25·10·1951 को उन्हें पदोन्नत करके स्थानापन्न रूप से आयकर निरीक्षक के पद पर नियुक्त किया गया था। पुनः दिनांक 8·4·1953 को पदोन्नत करके स्थानापन्न रूप से आयकर अधिकारी, द्वितीय श्रेणी के पद पर उन्हें नियुक्त किया गया था। परन्तु दिनांक 25·5·64 को उन्हें आयकर अधिकारी, द्वितीय श्रेणी के स्थानापन्न पद से आयकर इंसपेक्टर के स्थानापन्न पद पर प्रतिवर्तित कर दिया गया, क्योंकि वह आयकर अधिकारी, द्वितीय श्रेणी के पद के योग्य नहीं पाए गए थे।

उच्चतम न्यायालय ने कहा, यह सुप्रतिष्ठित है कि स्थानापन्न रूप से नियुक्त सरकारी सेवक को उस पद को धारण किए रहने का कोई अधिकार नहीं होता तथा उस सेवक को इस अंतर्निहित शर्त पर स्थानापन्न पद दिया जाता है कि यदि वह पद के अयोग्य पाया जाता है तो उसे प्रतिवर्तित कर दिया जाएगा। यदि अयोग्यता के आधार पर स्थानापन्न पद से सरकारी सेवक का प्रतिवर्तन किया जाता है तब इसे दण्डस्वरूप, "रैंक में अवनति" नहीं माना जाएगा तथा संविधान का अनुच्छेद 311 आकर्षित नहीं होगा।

उच्चतम न्यायालय ने श्री धावा के इस प्रतिवर्तन को वैध माना तथा कहा कि प्रतिवर्तन का यह आदेश श्री धावा के आचरण पर कोई कलंक नहीं लगाता है, न ही यह दण्डस्वरूप पारित किया गया है। अतः यह प्रतिवर्तन, अनुच्छेद 311[2] के अधीन, "रैंक में अवनति" नहीं है।

पूर्वोक्त केसों में सरकारी सेवकों के प्रतिवर्तन ऐसे थे जो "रैंक में अवनति" नहीं माने गए। परन्तु **अम्पर सिंह बनाम पंजाब राज्य**,[20] का केस एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करता है जिसमें अपीलार्थी श्री अम्पर सिंह का प्रतिवर्तन "रैंक में अवनति" का दण्ड माना गया। अपीलार्थी श्री अम्पर सिंह, जो पंजाब शिक्षा सेवा द्वितीय श्रेणी में कार्यरत था,

19·1969 सु०को० रि० 442
20·1971[2] स० ला रि० 71 सु०को०

को स्थानापन्न रूप से प्रथम श्रेणी की सेवा में नियुक्त किया गया तथा उन्हें राजकीय कालेज, मुक्तसर का प्रधानाचार्य नियुक्त किया गया। बाद में उनके आचरण के विरूद्ध शिकायतें प्राप्त हुईं। दो उप निदेशकों को उन शिकायतों की जाँच करने का आदेश दिया गया, जिन्होंने जाँचोपरान्त शिकायतें सही पाई एवं तदनुरूप अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट के आधार पर श्री अप्पर सिंह को द्वितीय श्रेणी की सेवा में प्रतिवर्तित कर दिया गया जबकि उनसे कनिष्ठ चार अधिकारियों को प्रथम श्रेणी की ही सेवा में बने रहने दिया गया। उन्होंने इस आदेश को इस आधार पर चुनौती दी कि यह "रैंक में अवनति" है। राज्य सरकार का तर्क था कि अपीलार्थी स्थानापन्न पद पर नियुक्त किया गया था, तथा शासन को शक्ति प्राप्त है कि उन्हें अधिष्ठायी पद पर प्रतिवर्तित कर देवे। यह प्रतिवर्तन "रैंक मेंअवनति" का दण्ड नहीं है।

उच्चतम न्यायालय ने कहा कि कोई प्रतिवर्तन आदेश, "रैंक में अवनति" है या नहीं?, यह जानने के लिए सिर्फ प्रतिवर्तन आदेश की शैली या भाषा को ही आधार नहीं माना जा सकता, अपितु आदेश की पूर्ववर्ती या आनुषंगिक परिस्थितियों पर भी विचार किया जाएगा। आदेश का "हेतु" महत्वहीन होता है। यदि आदेश से उस सेवक को दुष्परिणाम प्राप्त होते हों तब ऐसा आदेश दण्डस्वरूप किया हुआ माना जाएगा, भले ही वह परिवीक्षाधीन या अस्थायी सेवक हो।

यद्यपि अपीलार्थी प्रथम श्रेणी के पद पर मात्र स्थानापन्न था, फिर भी यदि वह दिखा सके कि उसका प्रतिवर्तन दण्डस्वरूप किया गया तथा यह "रैंक में अवनति" के समान है, तब संविधान के अनुच्छेद 311[2] के सुरक्षोपाय पाने का वह अधिकारी होगा। प्रस्तुत केस में अपीलार्थी से कनिष्ठ कुछ अधिकारियों को प्रथम श्रेणी की सेवा में बने रहने दिया गया जबकि अपीलार्थी को द्वितीय श्रेणी की सेवा में प्रतिवर्तित कर दिया गया, तथा यह प्रतिवर्तन उप निदेशकों की रिपोर्ट के आधार पर किया गया, जिससे यही निष्कर्ष निकलता है कि दण्डस्वरूप प्रथम श्रेणी की सेवा से द्वितीय श्रेणी की सेवा में प्रतिवर्तित किया गया। अतः

यह आदेश "रैंक में अवनति" का दण्ड है। चूँकि अनुच्छेद 311[2] में वर्णित विभागीय जाँच किए बिना "रैंक में अवनति" का आदेश किया गया था, अतः यह अवैध है। तदनुरूप उच्चतम न्यायालय ने अपीलार्थी के प्रतिवर्तन अर्थात् "रैंक में अवनति" को निरस्त कर दिया।

सारांश

यदि कोई सरकारी सेवक दुराचरण के कारण दण्डस्वरूप प्रतिवर्तित किया जाता है तो इसे "रैंक में अवनति" माना जाएगा तथा अनुच्छेद 311[2] लागू होगा।[21]

सरकारी सेवक का "प्रतिवर्तन आदेश" दण्डस्वरूप किया गया है अथवा नहीं?, यह जानने के लिए उस आदेश की सभी पूर्ववर्ती एवं तत्संबंधी परिस्थितियों पर विचार करके यह देखना होगा कि क्या सरकारी सेवक का दुराचरण या उपेक्षा, प्रतिवर्तन आदेश का "हेतु" मात्र था, अथवा उसका "आधार" था?, यदि दुराचरण या उपेक्षा प्रतिवर्तन आदेश का आधार रहा हो तब यह आदेश अनुच्छेद 311 के अधीन "रैंक में अवनति" का दण्ड माना जाएगा।[22]

सरकारी सेवक का कलंक सहित प्रतिवर्तन "रैंक में अवनति" के समान होता है। यदि किसी सरकारी सेवक की "रैंक में अवनति" उसे कलंकित करते हुए की गई हो तो संविधान के अनुच्छेद 311[2] में दी गई प्रक्रिया का अनुपालन करना अनिवार्य है।[23]

"सेवा से हटाना" एवं "पदच्युत करना"

"सेवा से हटाना" तथा "पदच्युत करने" का अभिप्राय संवैधानिक दृष्टिकोण से एक ही है, सिवाय भविष्य में सेवायोजन के। "पदच्युति" का आदेश भविष्य में सेवायोजन से उस सेवक को अयोग्य कर देता है, जबकि "सेवा से हटाने" का आदेश भविष्य में सेवायोजन से उस सेवक को अयोग्य नहीं करता।[24] इन दोनों दण्डों का तात्पर्य सेवा समाप्त करना है। परन्तु सेवा समाप्ति का प्रत्येक आदेश "पदच्युति" या "सेवा से

21-शरदकान्त मिश्र बनाम उड़ीसा उच्च न्यायालय-आ०इं०रि० 1976 सु०को० 1899
22-बिहार राज्य बनाम शिवभिक्षुक मिश्र-1970 कलका रि० 863[सु०को०]
23-डी०वी० दास बनाम भारत संघ-आ०इं०रि० 1970 सु०को० 77
24-उ०प्र० राज्य बनाम साबिर हुसैन-आ०इं०रि० 1975 सु०को० 2045 एवं शरदकान्त मिश्र बनाम उड़ीसा उच्च न्यायालय-आ०इं०रि० 1976 सु०को० 1899

हटाना" नहीं है। संविदा के अनुसार सेवा समाप्त करना अथवा नियमानुसार वैकल्पिक सेवा निवृत्ति करना "पदच्युति" अथवा "सेवा से हटाना" के समान नहीं है।[25]

जब कोई व्यक्ति सरकारी सेवा में स्थायी पद पर अधिष्ठायी रूप से नियुक्त किया जाता है, तब सामान्यतः उस पद को धारण करने का अधिकार वह प्राप्त कर लेता है। नियमों के अधीन, वह तब तक पद धारण करने का अधिकारी होता है जब तक कि सेवानिवृत्ति की आयु पूरी न कर लेवे अथवा नियत वर्षों की सेवा के उपरान्त वैकल्पिक सेवानिवृत्ति न कर दी जाए, अथवा पद समाप्त न हो जाए। उससे पूर्व, ऐसे सेवक की सेवा, दुराचरण, उपेक्षा, अक्षमता या अन्य अयोग्यता के कारण, दण्डित करके ही समाप्त की जा सकती है, अन्यथा नहीं। इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति किसी अस्थायी पद पर एक निश्चित अवधि के लिए नियुक्त किया जाता है, तब उस नियत अवधि से पूर्व उसकी सेवा दण्डस्वरूप ही समाप्त की जा सकती है, अन्यथा नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि सरकारी सेवक को पद धारण करने का अधिकार प्राप्त हो तब उसकी सेवा दुराचरण, उपेक्षा, अक्षमता आदि आधारों से अन्यथा आधार पर समाप्त नहीं की जा सकती, जब तक कि नियमों में उसके विपरीत उपबन्ध न हों। अतः यदि सरकारी सेवक को पद धारण करने का अधिकार प्राप्त हो तो नियत अवधि या आयु से पूर्व उसकी सेवा समाप्ति, अनिवार्य रूप से दण्ड होगी तथा अनुच्छेद 311 के अधीन "पदच्युति" या "सेवा से हटाना" का दण्ड माना जाएगा।[25]

जब कोई व्यक्ति सरकारी सेवा में स्थायी पद पर परिवीक्षाधीन नियुक्त किया गया हो और उसकी सेवा, परिवीक्षा अवधि के दौरान या समाप्ति पर समाप्त की जाती है, तब सामान्यतः यह दण्ड नहीं माना जाएगा, क्योंकि उसे पद धारण करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार जब कोई सेवक किसी स्थायी या अस्थायी पद पर स्थानापन्न अथवा अस्थायी रूप से नियुक्त किया गया हो तो उसे पद धारण किए रहने का अधिकार नहीं होता। यदि वह उस पद के योग्य न पाया

25-पुरूषोत्तम लाल ढिंगरा का मामला-आ०इं०रि० 1958 सु०को० 37

जाए अथवा अधिष्ठायी पद धारक वापस आ जाए तब शासन उसकी सेवा समाप्त कर सकता है। ऐसी सेवासमाप्ति को "पदच्युति" अथवा "पद से हटाना" नहीं माना जाएगा। परन्तु अस्थायी या परिवीक्षाधीन सेवक की सेवा दुराचरण के आधार पर भी समाप्त की जा सकती है। ऐसी सेवासमाप्ति "पदच्युति" या "सेवा से हटाना" का दण्ड माना जाएगा। अतः यदि अभिव्यक्त या विवक्षित संविदा द्वारा अथवा नियमों के अधीन शासन को सेवा समाप्त करने का अधिकार प्राप्त हो तब संविदा अथवा नियमों के अनुरूप की गई सेवा समाप्ति प्रथम दृष्टया दण्ड नहीं माना जाएगा। परन्तु यदि सेवा समाप्ति का आदेश सेवक के दुराचरण, कर्तव्य के प्रति उपेक्षा या अक्षमता के आधार पर किया जाना प्रस्तावित हो, तो यह आदेश "पदच्युति" अथवा "सेवा से हटाना" का दण्ड माना जाएगा।[26]

संक्षेप में सिद्धान्त यह है कि जब सेवक को पद धारण करने का अधिकार प्राप्त हो तो उसकी सेवा समाप्ति स्वतः प्रथम दृष्टया, दण्ड मानी जाएगी, क्योंकि इसके कारण पद धारण करने के अधिकार का समपहरण होता है। परन्तु यदि सरकारी सेवक को पद धारण करने का अधिकार प्राप्त नहीं है तब उसकी सेवा समाप्ति स्वतः दण्ड नहीं मानी जाएगी। किसी सरकारी सेवक की सेवा समाप्ति का आदेश दण्ड है या नहीं?, यह जानने के लिए सूत्र है, क्या उस सेवक को वह पद धारण करने का अधिकार प्राप्त था? यदि उसे पद धारण करने का अधिकार प्राप्त रहा हो तब वह सेवा समाप्ति "पदच्युति" अथवा "सेवा से हटाने" का दण्ड माना जाएगा।[26]

किसी भी सरकारी सेवक की सेवा-समाप्ति का आदेश दण्ड है या नहीं?, इसे जानने के दो सूत्र, उच्चतम न्यायालय[27] ने बताए हैं,

[1] क्या उस सेवक को वह पद धारण करने का अधिकार प्राप्त था?

अथवा

[2] क्या उस सेवक को उस आदेश से दुष्परिणाम [इविल कॉंसिक्वेन्सेज] प्राप्त हुए?

26-पुरुषोत्तम लाल धिंगरा का मामला-आ०इं०रि० 1958 सु०को० 37

27-पुरुषोत्तम लाल धिंगरा का पूर्वोक्त केस

यदि इनमें से किसी एक का भी उत्तर सकारात्मक हो तो यही माना जाएगा कि उस सेवक को दण्डित किया गया है तथा उसकी सेवा-समाप्ति का आदेश "पदच्युति" अथवा "सेवा से हटाना" माना जाएगा।

सरकारी सेवकों की सेवा-समाप्ति के कुछ निर्णीत केसों के उदाहरण से विधिक स्थिति स्पष्ट होगी।

उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत, उड़ीसा राज्य बनाम राम नारायण दास,[28] के तथ्य इस प्रकार हैं,

श्री राम नारायण दास उड़ीसा पुलिस फोर्स में सब इंसपेक्टर के पद पर वर्ष 1950 में परिवीक्षा पर नियुक्त हुए थे। उनके विरुद्ध रिपोर्ट प्राप्त हुई थी, जिसके आधार पर वर्ष 1954 में उन्हें कारण बताओ नोटिस दी गई कि क्यों न उन्हें ड्यूटी की घोर उपेक्षा तथा असंतोषप्रद कार्य के लिए सेवोन्मुक्त कर दिया जाए? श्री दास ने स्पष्टीकरण दिया, जो समुचित नहीं पाया गया तथा उन्हें सेवोन्मुक्त कर दिया गया। श्री दास का तर्क था कि संविधान के अनुच्छेद 311[2] की प्रक्रिया अपनाए बिना यह आदेश पारित किया गया है, जो अवैध है।

उच्चतम न्यायालय ने कहा, सिविल सर्विसेज [क्लासिफिकेशन, कंट्रोल ऐण्ड अपील] नियमावली के नियम 55-बी के अनुसार परिवीक्षाधीन सेवक की सेवाएँ, उसे कारण बताओ नोटिस देकर समाप्त की जा सकती हैं। अतः यदि ऐसे सरकारी सेवक की परिवीक्षा अवधि जारी रखने अथवा उसे सेवोन्मुक्त करने के संबंध में उसे कारण बताने के लिए नोटिस दिया जाता है एवं तदुपरान्त उसे सेवोन्मुक्त करने का आदेश किया जाता है तो यह आदेश, "पदच्युति" के समान नहीं होगा और न ही दण्ड माना जाएगा। शासन किसी परिवीक्षाधीन सेवक के विरुद्ध, दुराचरण के आरोपों के संबंध में, विभागीय जाँच कर सकता है। जब ऐसी जाँच में सेवा-समाप्ति का आदेश पारित किया जाता है, तब इसे "पदच्युति" या "सेवा से हटाना" माना जाएगा। परन्तु यह अभिनिश्चित करने

28-आ०इ०रि० 1961 सु०को० 177

के लिए, कि उस सेवक को स्थायी किया जाना चाहिए या नहीं?, की गई जाँच, "विभागीय जाँच" से पूर्णतः भिन्न है एवं ऐसी जाँच के उपरान्त परीवीक्षाधीन सेवक को सेवा से उन्मुक्त करने का आदेश दण्ड नहीं है, अतः जाँच करने का तथ्य निर्णायक नहीं होता है, अपितु पुरूषोत्तम लाल के केस में अभिनिश्चित किए गए पूर्वोक्त दोनों सूत्र इस बात के निर्णायक हैं कि सेवा-समाप्ति का आदेश दण्डस्वरूप किया गया है या नहीं?

प्रस्तुत केस में श्री दास को जो कारण बताओ नोटिस दी गई वह एक ऐसी जाँच थी जिसके द्वारा सिर्फ यह अभिनिश्चित करना था कि उनकी परीवीक्षावधि जारी रखी जाए या उन्हें स्थायी कर दिया जाए या उन्हें उन्मुक्त कर दिया जाए? इस जाँच के फलस्वरूप "सेवोन्मुक्ति" का जो आदेश पारित किया गया था वह "पदच्युति" या "सेवा से हटाने" का दण्ड नहीं माना जा सकता। अतः संविधान का अनुच्छेद 311[2] आकर्षित नहीं होता।

दूसरा उदाहरण, जगदीश मितर बनाम भारत संघ,[29] का मामला है, जिसके तथ्य इस प्रकार हैं,

अपीलार्थी जगदीश मितर की नियुक्ति जनरल पोस्ट आफिस, लाहौर में द्वितीय श्रेणी लिपिक के पद पर छः मास के लिए की गई। समय-समय पर उनकी सेवावधि को तब तक बढ़ाया गया जब तक उनकी नियुक्ति पोस्टमास्टर जनरल, अंबाला के कार्यालय में अस्थायी रूप से नहीं हो गई। बाद में उनकी सेवा-समाप्ति का आदेश किया गया, जो इस प्रकार था, "श्री जगदीश मितर, द्वितीय श्रेणी लिपिक को सरकारी सेवा के लिए अनुपयुक्त [अनडेजाइरेबिल] पाया गया है, अतः उन्हें एक मास का नोटिस देकर सेवोन्मुक्त किया जाता है।"

अपीलार्थी जगदीश मितर ने सेवासमाप्ति के उक्त आदेश को इस आधार पर चुनौती दी कि, इसका आशय "पदच्युति" करना है, "सेवोन्मुक्ति" नहीं। तथा "पदच्युति" की दशा में विभागीय जाँच अनिवार्य है।

29-आइ०ए०आर० 1964 सु०को० 449

उच्चतम न्यायालय ने कहा कि उक्त आदेश में प्रयुक्त पदावली, "श्री जगदीश मितर सरकारी सेवा के लिए अनुपयुक्त हैं", निश्चित रूप से सेवक को कलंकित करती है तथा निन्दनीय बनाती है, और ऐसी दशा में उक्त आदेश "पदच्युति" का आदेश है, न कि "सेवोन्मुक्ति" का। उच्चतम न्यायालय ने, "सेवक सेवा के लिए अनुपयुक्त है" तथा "सेवक की सेवाएं जारी रखना अनावश्यक है", में अन्तर बताते हुए कहा कि पूर्ववर्ती कथन में, सेवक का निन्दनीय कार्य सेवा-समाप्ति का कारण होता है, जबकि पश्चातुवर्ती में ऐसा नहीं होता।

उच्चतम न्यायालय ने अपीलार्थी श्री जगदीश मितर के तर्क को स्वीकार करते हुए, उनकी सेवा-समाप्ति के आदेश को "पदच्युति" का दण्ड माना।

चम्पक लाल बनाम भारत संघ,[30] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि शासन अपने सेवकों, भले ही वे अस्थायी हों, की सेवाएं किसी कारण के सिवाय समाप्त नहीं करता है और न ही रैंक में अवनति करता है, भले ही वह उच्च रैंक अस्थायी रूप से धारण करता हो। अस्थायी सेवक की सेवाएं समाप्त करने का एक कारण यह हो सकता है कि जिस पद को वह धारण कर रहा हो वही समाप्त हो जाए। ऐसे मामलों में इसी कारण से उसकी सेवा समाप्त की जा सकती है। इसी प्रकार यदि कोई सरकारी सेवक अस्थायी रूप से उच्च पद पर स्थानापन्न रूप से नियुक्त किया गया हो, तो उसे उसके अधिष्ठायी पद पर प्रतिवर्तित किया जा सकता है, यदि उस उच्च पद को धारण करने वाला सरकारी सेवक वापस आ जाता है, अथवा यदि उच्च पद अस्थायी अवधि के लिए सृजित हुआ हो और वह अवधि समाप्त हो जाती है। इससे भिन्न कारणों से भी, अर्थात् अस्थायी सेवक के आचरण या पद की सुयोग्यता से असंतुष्ट होकर उस सेवक की सेवाएं समाप्त करना शासन द्वारा आवश्यक समझा जा सकता है। अस्थायी सेवक के आचरण

30-आ०इं०रि० 1964 सु०को० 1854

या कार्य के प्रति असंतोष उसके विरूद्ध किए गए परिवाद से भी उत्पन्न हो सकता है। ऐसे मामलों में शासन को दो रास्ते उपलब्ध होते हैं-

¦1¦ उस सेवक को दण्डित करने की कार्रवाई किए बगैर उसे "सेवोन्मुक्त" किया जा सकता है, अथवा

¦2¦ शासन उस सेवक के दुराचरण के लिए उसे दण्डित करने का विनिश्चय कर सकता है।

दूसरी दशा में भले ही वह सेवक अस्थायी हो, उसे संविधान के अनुच्छेद 311¦2¦ का सुरक्षोपाय प्राप्त होगा।

ऐसे मामले में जहाँ शासन अस्थायी सेवक को दण्ड देने की कार्रवाई नहीं करना चाहता, अपितु सेवोन्मुक्त करके सेवा समाप्त करना चाहता है तो उस विनिश्चय पर पहुँचने से पूर्व शासन उस सेवक के दुराचरण या बुरे कार्य के संबंध में प्रारम्भिक जाँच करता है। इस जाँच का प्रयोजन सिर्फ इस विनिश्चय पर पहुँचना होता है कि, सरकारी सेवक, सेवा में बनाए रखे जाने योग्य है या नहीं? परन्तु यह जाँच, विभागीय जाँच से पूर्व की जाने वाली प्रारम्भिक जाँच से पूर्णतः भिन्न है। विभागीय जाँच से पूर्व की जाने वाली प्रारम्भिक जाँच का प्रयोजन यह होता है कि सेवक के विरूद्ध आरोप लगाने हेतु प्रथम दृष्टया केस बनता है या नहीं।[3]

अतः, यदि सेवा-समाप्ति दण्डस्वरूप की गई हो तो "पदच्युति" अथवा "सेवा से हटाना" माना जाता है और ऐसी सेवा-समाप्ति के पूर्व संविधान के अनुच्छेद 311¦2¦ के अनुरूप विभागीय जाँच की जानी अनिवार्य है।

सारांश

¦1¦ अस्थायी या परिवीक्षाधीन सरकारी सेवक की सेवाएं, उसके सेवा नियमों के अधीन, समाप्त की जा सकती हैं। ऐसी सेवा-समाप्ति

3।-अम्मर सिंह बनाम पंजाब राज्य-1971¦2¦स0ला रि0 7। सु0को0

"पदच्युति या सेवा से हटाना" नहीं है, तथा संविधान के अनुच्छेद 311 को आकर्षित नहीं करेगी।[32]

[2] प्रत्येक मामले में सेवा-समाप्ति आदेश की पूर्ववर्ती या तत्संबंधी परिस्थितियों पर विचार किया जाएगा, परन्तु उस आदेश का "हेतु" महत्वहीन होगा।[32]

[3] यदि उस आदेश के फलस्वरूप उस सेवक को दुष्परिणाम प्राप्त होवें अथवा उसके चरित्र या सत्यनिष्ठा पर कलंक लगे, तब वह आदेश दण्डस्वरूप किया हुआ माना जाएगा, भरे ही वह सेवक परिवीक्षाधीन या अस्थायी मात्र हो।[32]

[4] यदि अस्थायी या परिवीक्षाधीन सेवक की सेवा-समाप्ति आदेश के पूर्व, उच्च अधिकारी ने सिर्फ यह जानने के लिए जाँच की हो कि वह सेवक सेवा में बनाए रखे जाने योग्य है या नहीं?, तब यह आदेश "सेवा से हटाने" का दण्ड नहीं माना जाएगा तथा संविधान का अनुच्छेद 311 आकर्षित नहीं होगा।[32]

[5] यदि विभागीय जाँच की गई हो, अर्थात् जाँच अधिकारी नियुक्त किया गया हो, आरोप-पत्र दिया गया हो, स्पष्टीकरण माँगा गया हो तथा उस पर विचार करने के उपरान्त सेवा-समाप्ति का आदेश किया गया हो, तब यह आदेश "पदच्युति" या "सेवा से हटाने" का दण्ड माना जाएगा तथा अनुच्छेद 311 लागू होगा।[32]

[6] स्थायी सरकारी सेवक की सेवा समाप्ति, सेवानिवृत्ति या वैकल्पिक सेवा निवृत्ति के सिवाय, "पदच्युति" या "सेवा से हटाने" के दण्ड समान होगी तथा अनुच्छेद 311 लागू होगा।[33]

वैकल्पिक सेवानिवृत्ति

"सरकारी सेवा में बने रहने के अधिकार" का तात्पर्य यह है कि सेवक को नियमानुसार सेवा में बने रहने का अधिकार प्राप्त होता

32-पंजाब राज्य बनाम सुखराज बहादुर-1968 स0आ0 रि0 701 [सु0को0]
33-पुरूषोत्तम लाल धिंगरा का पूर्वोक्त मामला

है। नियमों में सेवानिवृत्ति का भी प्रावधान होता है तथा मार्गनिर्देश दिए होते हैं कि कब वैकल्पक सेवानिवृत्ति की जा सकती है? सामान्यतया सेवा नियमों में, पचास वर्ष की आयु पूर्ण कर लेने वाले सेवक को, लोक हित में, वैकल्पक सेवानिवृत्त करने का प्रावधान होता है। शासन नियमानुसार ही वैकल्पक सेवानिवृत्ति का आदेश पारित कर सकता है। सरकारी सेवक ने पेंशन आदि का जो सेवा लाभ अर्जित किया है, उसकी कोई हानि उसे नहीं होती है। ये आदेश लोक हित में किए जाते हैं।[34]

यदि वैकल्पक सेवानिवृत्ति किसी दुराचरण के लिए दण्डस्वरूप की गई हो तो वह सेवासमाप्ति "पदच्युति" या "सेवा से हटाने" का दण्ड माना जाता है। वैकल्पक सेवानिवृत्ति दण्डस्वरूप की गई है या नहीं, इसका परीक्षण सूत्र यह है कि क्या वैकल्पक सेवानिवृत्ति के आदेश में संबंधित सेवक के विरुद्ध किसी आरोप या कलंक या अभियोग या दुर्व्यवहार का तत्व विद्यमान है?, यदि वैकल्पक सेवानिवृत्ति का आदेश सरकारी सेवक को कलंकित करता हो तब उसे दण्ड माना जाएगा।[35]

वैकल्पक सेवानिवृत्ति का आदेश दण्ड का सूचक होगा यदि इसके फलस्वरूप सेवक को अर्जित सेवा-लाभ की हानि होती है।[35]

तुलसी राम पटेल[36] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि यह सुप्रतिष्ठित है कि दण्डस्वरूप की गई वैकल्पक सेवानिवृत्ति "सेवा से हटाने" के समान है।

34-तारा सिंह बनाम राजस्थान राज्य-1975 [1] सा0ला रि0 777

35-उत्तर प्रदेश राज्य बनाम श्याम लाल शर्मा-1972 सा0ला रि0 53 [सु0को0]

36-ए0आई0आर0 1985 सु0को0 1416

अध्याय- छः

जाँच प्रक्रिया

सरकारी सेवक को दुराचरण के लिए दण्डित करने से पूर्व जाँच करना अनिवार्य है। लघुदण्ड एवं महादण्ड के लिए अलग-अलग जाँच प्रक्रियाएं नियत हैं। अतः जब किसी सरकारी सेवक के विरूद्ध दुराचरण का अभियोग लगाया जाए तो अनुशासनिक प्राधिकारी को, नियमों के अनुरूप, उस अभियोग की जाँच करनी होती है। जाँच आरम्भ करने से पूर्व उचित होगा यदि अनुशासनिक प्राधिकारी कथित अभियोग पर विचार करके अपने मन में यह राय बनाएं कि यदि वह अभियोग सिद्ध हो जाए तो लघुदण्ड अधिरोपित करना समीचीन होगा अथवा महादण्ड। क्योंकि लघुदण्ड अधिरोपित करने की प्रक्रिया महादण्ड देने की प्रक्रिया से भिन्न है। यदि अनुशासनिक प्राधिकारी इस मत के हों कि कथित अभियोग सिद्ध होने पर, अधिक-से-अधिक, लघुदण्ड ही दिया जा सकेगा, तो उन्हें लघुदण्ड के लिए नियत जाँच प्रक्रिया अपनानी होगी। परन्तु यदि वह इस मत के हों कि महादण्ड देना आवश्यक है, तो महादण्ड के लिए नियत जाँच प्रक्रिया उन्हें अपनानी होगी।

लघुदण्ड देने के लिए जाँच प्रक्रिया

सी॰सी॰ए॰ रूल्स, 1930 के नियम 55-बी में तथा पनिशमेण्ट ऐण्ड अपील रूल्स फार सबोर्डिनेट सर्विसेज, यू०पी०, 1932 के नियम 5-बी में लघुदण्ड अधिरोपित करने से पूर्व अपनाई जाने वाली प्रक्रिया नियत है, जिसके अनुसार कथित अभियोग का विवरण संबंधित सेवक को दिया जाएगा तथा उसे स्पष्टीकरण देने का अवसर दिया जाएगा। तदुपरान्त कारण अभिलिखित करते हुए दण्डादेश पारित किया जाएगा।

से स्पष्टीकरण मांगना आवश्यक नहीं है, परन्तु नैसर्गिक न्याय के पूर्व चर्चित सिद्धान्तों के अनुरूप कार्य करते हुए उचित होगा कि कोई भी लघुदण्ड अधिरोपित करने से पूर्व संबंधित सेवक को कथित अभियोग का विवरण देकर उसे स्पष्टीकरण देने का अवसर प्रदान किया जाए। यही प्रक्रिया उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम कर्मचारी [अधिकारियों से भिन्न] सेवा नियमावली, 1981 के विनियम-65 में नियत है।

केन्द्रीय सरकार के सेवकों को लघुदण्ड देने के लिए जाँच प्रक्रिया, सेन्ट्रल सिविल सर्विसेज [क्लासिफिकेशन] कंट्रोल ऐण्ड अपील] रूल्स, 1965 के नियम-16 में नियत है, जिसमें कहा गया है कि-

[1] सरकारी सेवक को लघुदण्ड देने से पूर्व उसके विरूद्ध प्रस्तावित कार्यवाई की लिखित सूचना दी जाएगी, तथा दुराचरण या दुर्व्यवहार के अभियोग, जिसके आधार पर कार्यवाई की जानी प्रस्तावित हो, की लिखित सूचना दी जाएगी।

[2] उस सेवक को स्पष्टीकरण या अभ्यावेदन देने का उचित अवसर प्रदान किया जाएगा।

[3] यदि अनुशासनिक प्राधिकारी इस मत के हों कि "औपचारिक जाँच" करानी आवश्यक है तो महादण्ड देने के लिए नियत जाँच प्रक्रिया अपनाई जाएगी एवं तदनुरूप जाँच करने के उपरान्त ही लघुदण्ड अधिरोपित किया जाएगा।

यही प्रक्रिया आल इण्डिया सर्विसेज [डिसिप्लिन ऐण्ड अपील] रूल्स, 1969 के नियम-10 तथा रेलवे सर्वेन्ट्स [डिसिप्लिन ऐण्ड अपील] रूल्स, 1968 के नियम-11 में नियत है।

इन सभी नियमों में लघुदण्ड के लिए नियत जाँच प्रक्रिया का सारांश यह है कि प्रत्येक मामले में लघुदण्ड अधिरोपित करने से पूर्व कथित अभियोग का विवरण संबंधित सेवक को देकर, उसे स्पष्टीकरण देने का अवसर दिया जाएगा। तदुपरान्त संपूर्ण सामग्री पर विचार किया जाएगा। यदि यह निष्कर्ष निकले कि वह सेवक निर्दोष है तो

तदनुरूप आदेश करके कार्यवाही समाप्त कर दी जाएगी। परन्तु यदि यह निष्कर्ष निकले कि वह सेवक दोषी है तो कारण अभिलिखित करते हुए दण्डादेश पारित किया जाएगा तथा उस आदेश की सूचना उसे दी जाएगी।

यदि अनुशासनिक प्राधिकारी इस मत के हों कि महादण्ड देने के लिए नियत जाँच प्रक्रिया अपनानी आवश्यक है तो वह उस प्रक्रिया के अनुरूप जाँच कर सकते हैं तथा जाँचोपरान्त सेवक को, दोषी पाए जाने पर, लघुदण्ड दे सकते हैं। परन्तु ऐसी जाँच प्रक्रिया अपनाने के लिए वह बाध्य नहीं हैं।

सरकारी सेवक को, एक ही दुराचरण के लिए, एक-ही-साथ दो लघुदण्ड दिए जा सकते हैं। अर्थात्, एक ही दुराचरण के लिए सेवक को सैंसर किया जा सकता है तथा वेतन से वसूली का दण्ड भी दिया जा सकता है।[1]

यह सुप्रचलित है कि सरकारी सेवक पर लघुदण्ड अधिरोपित करने वाले आदेश से सिविल दुष्परिणाम उत्पन्न होते हैं। अतः दण्ड अधिरोपित करने का कारण लिखते हुए दण्डादेश करना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि लघुदण्डादेश, एक सकारण आदेश [स्पीकिंग आर्डर] होना चाहिए।[2]

अतः सरकारी सेवकों को लघुदण्ड देना प्रस्तावित हो तो निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाई जाएगी-

[1] उस सेवक को दुराचरण या दुर्व्यवहार के अभियोग या परिवाद का विवरण दिया जाएगा।

[2] उस सेवक को स्पष्टीकरण देने का उचित अवसर दिया जाएगा।

[3] नियुक्ति या अनुशासनिक प्राधिकारी या अन्य सशक्त प्राधिकारी संपूर्ण उपलब्ध सामग्री पर विचार करके आदेश पारित करेंगे।

[4] आदेश में कारण अभिलिखित किया जाएगा।

[5] आदेश की एक प्रति उस सेवक को दी जाएगी।

1-पुन्नोज बनाम मैनेजर,पी ऐण्ड टी० मोटर सर्विस कोचीन-1972[2]स०ला०रि० 399[केरल उच्च न्यायालय]

2-टी०एन० कन्सल बनाम हरियाणा राज्य-1986[3] स०ला० ज० 101 [पंजाब-हरियाणा]

लोक सेवा आयोग से परामर्श

उत्तर प्रदेश पब्लिक सर्विस कमीशन [लिमिटेशन आफ फंक्शन्स] रेगुलेशन्स, 1954 के विनियम-8 में लोक सेवा आयोग से, अनुशासनिक मामलों में, परामर्श करने का उपबंध है। यहाँ सिर्फ लघुदण्ड देने से पूर्व परामर्श करने संबंधी प्रावधान की चर्चा की जा रही है।

यदि राज्यपाल के मूल आदेश से, किसी सरकारी सेवक पर निम्नलिखित में से कोई लघुदण्ड अधिरोपित करना हो तो आदेश पारित करने से पूर्व लोक सेवा आयोग से परामर्श करना आवश्यक होगा-

[1] समय वेतनमान में दक्षतारोध से भिन्न प्रक्रम पर वेतन वृद्धि रोकना, या

[2] शासन को, नियमों या आदेशों के उल्लंघन अथवा लापरवाही के कारण, हुई आर्थिक हानि को अंशतः या पूर्णतः वेतन से वसूली करना।[3]

अतः वेतन वृद्धि रोकने एवं वेतन से वसूली करने के लघुदण्ड से भिन्न कोई लघुदण्ड देना प्रस्तावित हो तो लोक सेवा आयोग से परामर्श करना आवश्यक नहीं होगा। इस संबंध में विनियम-8 में दृष्टान्त भी दिया गया है। विनियम-8 के प्रथम दृष्टान्त में कहा गया है कि यदि उत्तर प्रदेश सिविल सेवा के अधिकारी को सैंसर करना अथवा एक वर्ष के लिए दक्षतारोध पार करने से रोकना प्रस्तावित हो तो राज्यपाल को ऐसा आदेश करने से पूर्व लोक सेवा आयोग से परामर्श करना आवश्यक नहीं होगा। इसी प्रकार यदि ऐसे किसी अधिकारी को विभागीय जाँच के दौरान निलम्बित करना हो तो निलम्बन आदेश करने से पूर्व आयोग से परामर्श करना आवश्यक नहीं होगा।

जब किसी अधीनस्थ सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित दण्डादेश के विरूद्ध अपील में, यदि नियमों के अधीन अपील अनुमन्य हो, राज्यपाल को अंतिम आदेश करना हो तो आयोग से परामर्श करना आवश्यक होगा।[4]

3-विनियम 8[ग]।
4-विनियम 8[बी]।

यदि अपील से अन्यथा किसी याचिका या अभ्यावेदन पर विचार करके राज्यपाल को कोई ऐसा आदेश पारित करना हो जिससे अधीनस्थ प्राधिकारी का आदेश रद्द या परिवर्तित हो रहा हो तो आयोग से परामर्श करना आवश्यक होगा। परन्तु राज्यपाल के प्रस्तावित आदेश से अधीनस्थ सक्षम प्राधिकारी को मात्र यह निदेश देना हो कि वह नये सिरे से या बाद के किसी स्तर से पुनः अनुशासनिक कार्यवाही शुरू करें तो आयोग से परामर्श करना आवश्यक नहीं होगा।[5]

यदि उत्तर प्रदेश डिसिप्लिनरी प्रोसीडिंग्स [एडमिनिस्ट्रेटिव ट्रिब्यूनल] रूल्स, 1947 के अधीन राज्यपाल ने कोई दण्डादेश पारित किया हो अथवा सेवक की वेतन वृद्धि, सत्यनिष्ठा प्रमाण-पत्र रोकने के फलस्वरूप, रोकी गई हो तो आयोग से परामर्श करना आवश्यक नहीं होगा।[6]

यदि किसी मामले में पहले कभी आयोग अपनी राय दे चुका हो तथा कोई नया महत्वपूर्ण प्रश्न न उठता हो तो राज्यपाल को अंतिम आदेश करने से पूर्व आयोग से पुनः परामर्श करना आवश्यक नहीं होगा।[7]

यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन [एक्जेमशन्स फ्राम कन्सल्टेशन] रेगुलेशन्स, 1958 के विनियम-5 में उपबंध है कि यदि राष्ट्रपति अपने मूल आदेश द्वारा सेंसर करने, वेतनवृद्धि रोकने या पदोन्नति रोकने या वेतन से वसूली करने का लघुदण्ड देना चाहें तो आदेश पारित करने से पूर्व संघ लोक सेवा आयोग से परामर्श करना आवश्यक होगा।

जब अधीनस्थ प्राधिकारी ने उक्त चर्चित लघुदण्डों में से कोई लघुदण्ड अधिरोपित किया हो जिसके विरूद्ध राष्ट्रपति के यहाँ अपील की गई हो तो उस अपील में राष्ट्रपति द्वारा आदेश करने से पूर्व संघ लोक सेवा आयोग से परामर्श करना आवश्यक होगा। जब राष्ट्रपति या अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा उक्त चर्चित लघुदण्ड अधिरोपित किया गया हो, जिसके विरूद्ध किसी याचिका या अभ्यावेदन पर विचार करके

5-विनियम 8 [बी]

6-विनियम 8 [ए] का प्रथम परन्तुक

7-विनियम 8 [ए] का द्वितीय परन्तुक

राष्ट्रपति उस आदेश को रद्द या परिवर्तित करने का आदेश पारित करना चाहें तो आयोग से परामर्श करना आवश्यक होगा। परन्तु डिफेन्स सर्विस [सिविलियन] के किसी सदस्य को दण्ड देने से पूर्व आयोग से परामर्श करना आवश्यक नहीं है।

महादण्ड देने के लिए जाँच प्रक्रिया

सरकारी सेवक को महादण्ड देने से पूर्व "जाँच" कराने की विधि का उद्‌गम-स्रोत संविधान का अनुच्छेद 311 है, जिसके उपबंध इस प्रकार हैं-

[1] किसी व्यक्ति को जो संघ की सिविल सेवा का या अखिल भारतीय सेवा का या राज्य की सिविल सेवा का सदस्य है अथवा संघ या राज्य के अधीन कोई सिविल पद धारण करता है, उसकी नियुक्ति करने वाले प्राधिकारी के अधीनस्थ किसी प्राधिकारी द्वारा पदच्युत नहीं किया जाएगा या पद से नहीं हटाया जाएगा।

[2] यथापूर्वोक्त किसी व्यक्ति को, ऐसी जाँच के पश्चात् ही, जिसमें उसे अपने विरुद्ध आरोपों की सूचना दे दी गई है और उन आरोपों के संबंध में सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर दे दिया गया है, पदच्युत किया जाएगा या पद से हटाया जाएगा या पंक्ति में अवनत किया जाएगा, अन्यथा नहीं :

परन्तु जहाँ ऐसी जाँच के पश्चात् उस पर ऐसी कोई शास्ति अधिरोपित करने की प्रस्थापना है वहाँ ऐसी शास्ति ऐसी जाँच के दौरान दिए गए साक्ष्य के आधार पर अधिरोपित की जा सकेगी और ऐसे व्यक्ति को प्रस्थापित शास्ति के विषय में अभ्यावेदन करने का अवसर देना आवश्यक नहीं होगा :

परन्तु यह और कि यह खंड वहाँ लागू नहीं होगा-

[क] जहाँ किसी व्यक्ति को ऐसे आचरण के आधार पर पदच्युत किया जाता है या पद से हटाया जाता है या पंक्ति

में अवनत किया जाता है जिसके लिए अपराधिक आरोप पर उसे सिद्धदोष ठहराया गया है, या

[ख] जहाँ किसी व्यक्ति को पदच्युत करने या पद से हटाने या पंक्ति में अवनत करने के लिए सशक्त प्राधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि किसी कारण से, जो उस प्राधिकारी द्वारा लेखबद्ध किया जाएगा, यह युक्तियुक्त रूप से साध्य नहीं है कि ऐसी जाँच की जाए, या

[ग] जहाँ, यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्यपाल का यह समाधान हो जाता है कि राज्य की सुरक्षा के हित में यह समीचीन नहीं है कि ऐसी जाँच की जाए।

[3] यदि यथापूर्वोक्त किसी व्यक्ति के संबंध में यह प्रश्न उठता है कि खंड [2] में निर्दिष्ट जाँच करना युक्तियुक्त रूप से साध्य है या नहीं तो उस व्यक्ति को पदच्युत करने या पद से हटाने या पंक्ति में अवनत करने के लिए सशक्त प्राधिकारी का उस पर विनिश्चय अंतिम होगा।

अनुच्छेद 311 के खण्ड [2] में जिस "जाँच" का उल्लेख है, उसे सामान्य बोलचाल में "विभागीय जाँच" या "औपचारिक जाँच" या "अंतिम जाँच" कहा जाता है।

भारत का संविधान हमारे कानून एवं नियमों का मूल स्रोत है तथा सर्वोपरि कानून है। इसके उपबंधों का उल्लंघन करने वाला कानून उस सीमा तक शून्य एवं अमान्य है जिस सीमा तक संविधान के उपबंधों का अतिक्रमण करता हो। अनुच्छेद 311 के पूर्वोक्त उपबंधों के अनुरूप ही विभागीय जाँच की प्रक्रिया, विभिन्न सेवाओं की नियमावलियों में, नियत है। जहाँ ये कानूनी नियमावलियाँ लागू हैं, वहाँ भी संविधान के उपबंध अभिभावी हैं तथा जो प्रक्रिया संविधान के अनुच्छेद 311 के उपबंधों से असंगत है, वह शून्य एवं अमान्य है।[8] अतः अनुच्छेद 311[2] में अनुध्यात "जाँच" की प्रकृति का ज्ञान आवश्यक है।

8-एन-आर-एस- चौधरी बनाम भारत संघ-आई०एल०आर० 1956 कलकत्ता 662

"विभागीय जाँच" की प्रकृति

संविधान के अनुच्छेद 311 के खण्ड [2] के पूर्वोक्त उपबंध के अनुसार, इसमें वर्णित तीनों अपवादिक मामलों के सिवाय, सरकारी सेवकों को कोई भी महादण्ड देने से पूर्व ऐसी जाँच कराई जानी अनिवार्य है जिसमें,

[1] उस सेवक को, उसके विरूद्ध लगाए गए "आरोपों की सूचना" दी जाएगी, तथा

[2] उन आरोपों के संबंध में "सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर" दिया जाएगा।

"आरोपों की सूचना" का तात्पर्य सरकारी सेवकों के विरूद्ध, दुराचरण या दुर्व्यवहार के लांछन, परिवाद या अभियोग के आधार पर, स्पष्ट, निश्चित एवं विशिष्ट आरोप विरचित कर के आरोप-पत्र की एक प्रति उस सेवक को देने से है।

"सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर" को संविधान में परिभाषित नहीं किया गया है। इस अभिव्यक्ति का विधिक अभिप्राय, नैसर्गिक न्याय के नियमों के अनुरूप "युक्तियुक्त अवसर देने" से है। नैसर्गिक न्याय का सुप्रचलित सिद्धान्त है कि किसी व्यक्ति को सुनवाई का उचित अवसर दिए बगैर दोषी नहीं ठहराया जाएगा। यही सिद्धान्त अंगीकृत करते हुए, "सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने" का उपबंध अनुच्छेद 311 के खण्ड [2] में किया गया है।

"सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर" की व्याख्या उच्चतम न्यायालय ने, खेम चन्द बनाम भारत संघ[1] के मामले में, करते हुए कहा है कि अनुच्छेद 311[2] में अभिव्यक्त "सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर" का तात्पर्य अभियोग या दोष से इंकार करने तथा निर्दोषिता स्थापित करने का अवसर देने से है, जो आरोपित सेवक तभी कर सकता है जब उसे, उसके विरूद्ध लगाए गए, अभियोग की सूचना दे दी जाए

1-आ०इ०रि० 1958 सु०को० 300

तथा उसके विरुद्ध प्रस्तुत साक्षियों से प्रतिपरीक्षा करने तथा अपना साक्ष्य प्रस्तुत करके, उसे अपना बचाव करने का अवसर दिया जाए। प्रस्तावित दण्ड के विषय में अभ्यावेदन करने का अवसर देना भी इसमें सम्मिलित है। वर्ष 1958 में खेम चन्द के मामले में की गई इस व्याख्या को उच्चतम न्यायालय ने भारत संघ बनाम तुलसी राम पटेल,[10] तथा सत्यवीर सिंह बनाम भारत संघ,[11] के मामलों में अनुमोदित किया है, तथा इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नरायन सिंह,[12] के मामले में उक्त व्याख्या को प्रमुख रूप से उद्धृत करके कहा है, यह सुप्रचलित है कि अनुच्छेद 311[2] के अनुरूप आरोपित सेवक को बचाव का युक्तियुक्त अवसर देने के लिए उसे उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों की सूचना दी जाएगी तथा वे अभिकथन भी उसे दिए जाएंगे जिन पर आरोप आधारित हैं।

किसी भी न्यायिक या न्यायिक-कल्प कार्यवाही में साक्षियों से प्रतिपरीक्षा करने का अधिकार एक बहुमूल्य अधिकार है। यदि ऐसा प्रतीत हो कि सुसंगत दस्तावेजों की प्रतिलिपियाँ न देकर इस अधिकार का प्रभावी प्रयोग करने से रोका गया है तो यही कहा जाएगा कि सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर नहीं दिया गया।[13]

अतः "सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने" का अर्थ यह हुआ कि नैसर्गिक न्याय के नियमों के अनुरूप जाँच की जाएगी। नैसर्गिक न्याय के नियमों की अपेक्षा है कि,[14]

[1] प्रत्येक पक्ष को अपने सभी सुसंगत साक्ष्यों को प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाना चाहिए,

[2] प्रत्येक पक्ष का साक्ष्य विपक्षी की उपस्थिति में लिया जाना चाहिए,

[3] प्रत्येक पक्ष को, अपने विपक्षी के साक्षियों से, प्रतिपरीक्षा करने का अवसर दिया जाना चाहिए, तथा

[4] किसी पक्ष के विरुद्ध किसी भी सामग्री का इस्तेमाल, उसे स्पष्टीकरण का अवसर दिए बगैर, नहीं किया जाना चाहिए।

10-आ०इ०रि० 1985 सु०को० 1426
11-आ०इ०रि० 1986 सु०को० 555
12-1973[2] ब०ला०रि० 297
13-मध्य प्रदेश राज्य बनाम चिन्तामन-आ०इ०रि० 1961 सु०को० 1623
14-भारत संघ बनाम टी०आर० वर्मा-आ०इ०रि० 1957 सु०को० 882

"सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर" में ये सभी अपेक्षाएं अंतर्विष्ट हैं।

सारांश यह कि विभागीय जाँच में नैसर्गिक न्याय के नियमों का पालन किया जाएगा। यदि ऋजुता [फेयरनेस] एवं उचित ढंग से जाँच की गई हो तो गुणागुण पर आधारित, जाँच अधिकारी के, विनिश्चय को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकेगी कि न्यायालयों में जो प्रक्रिया अपनाई जाती है उसके अनुरूप जाँच में प्रक्रिया नहीं अपनाई गई।[15]

अनुच्छेद 311 के पूर्वोक्त उपबंधों तथा उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई पूर्वोक्त व्याख्याओं के अनुरूप विभागीय जाँच की वृहद् प्रक्रिया, केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकार के सेवकों पर लागू होने वाली, सेवा नियमावलियों में नियत है। सेवा नियमावली के जिन नियमों में विभागीय जाँच की प्रक्रिया नियत है तथा जिन सेवकों पर लागू होती है, उसका विवरण इस प्रकार है,

क्र०सं०	नियमावली का नाम	विभागीय जाँच की प्रक्रिया नियत करने वाले नियम	सरकारी सेवक, जिन पर यह नियम लागू होता है
1.	सिविल सर्विसेज [क्लासिफिकेशन, कंट्रोल ऐण्ड अपील] रूल्स, 1930, जैसा कि उ०प्र० में लागू है।	नियम-55	[1] उ०प्र० की सिविल सेवाओं एवं विशेषज्ञ सेवाओं के अधिकारी [अर्थात समूह "क" एवं "ख" के अधिकारी] [2] उ०प्र० राज्य विद्युत परिषद के अधिकारी एवं कर्मचारी [यू०पी०स्टेट इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड [आफिसर्स ऐण्ड सर्वेन्ट्स] [कण्डीशन्स आफ सर्विस] रेगुलेशन्स, 1975 के विनियम-2 के प्रभावका] ।
2.	पनिशमेण्ट ऐण्ड अपील रूल्स फार सबोर्डिनेट सर्विसेज, उ०प्र०, 1932	नियम-5	उ०प्र० के अधीनस्थ सेवाओं के सदस्य [अर्थात समूह "ग" एवं "घ" के सदस्य]

15-मध्य प्रदेश राज्य बनाम चिन्तामन-आ०ई०आर०1961 सु०को०1623

3.	यू०पी०सबोर्डिनेट कोर्ट्स स्टाफ (पनिशमेण्ट ऐण्ड अपील) रूल्स 1976	नियम-5	उ०प्र०दीवानी न्यायालयों के लिपिक वर्गीय एवं चतुर्थ श्रेणी सेवक।
4.	उ०प्र०म्यूनिसिपल बोर्ड्स सर्वेन्ट्स इन्क्वायरी,पनिशमेण्ट ऐण्ड टर्मिनेशन आफ सर्विस, रूल्स	नियम-5	उ०प्र०की नगरपालिका के सेवक
5.	उ०प्र० नगर महा-पालिका सेवा नियमावली,1962	नियम-31,32 एवं 33	उत्तर प्रदेश की नगर महापालिका के सभी सेवक तथा नगरपालिका एवं नगर महापालिका की प्रशासकीय सेवा,चिकित्सीय सेवा,जन-स्वास्थ्य सेवा,पशु-चिकित्सा सेवा,अभियांत्रिकी-सेवा,जल-कल-सेवा,लेखा-सेवा,लेखा परीक्षा सेवा,शिक्षा सेवा,लिपिक वर्गीय सेवा के अधिकारी (यू०पी०पालिका (सेन्ट्रलाइज्ड) सर्विसेज,रूल्स,1966 के नियम-37 के प्रभावक्षेत्र)।
6.	उ०प्र०राज्य सड़क परिवहन निगम कर्मचारी (अधिकारियों से भिन्न) सेवा नियमावली,1981	नियम-64	उ०प्र० राज्य सड़क परिवहन निगम के समूह "ग" और "घ" के कर्मचारी।
7.	सेन्ट्रल सिविल सर्विसेज (क्लासिफिकेशन,कंट्रोल ऐण्ड अपील) रूल्स,1965	नियम-14,15 एवं 17	संघीय सेवा के सदस्य,जिनमें वे सेवक भी सम्मिलित हैं जो विदेश सेवा में हों या जिनकी सेवायें अस्थायी रूप से राज्य सरकार के नियंत्रणाधीन रही हों,राज्य सरकार की सेवा के ऐसे सदस्य जिनकी सेवायें अस्थायी रूप से केन्द्र सरकार के नियंत्रणाधीन की गई हों, तथा स्थानीय या अन्य प्राधिकारी की सेवा के ऐसे सरकारी सेवक जिनकी सेवायें अस्थायी रूप से केन्द्र

			सरकार के सदस्य [इण्डियन फारेन सर्विस [कैडर स्टेड डिसिप्लिन] रूल्स,1961 के नियम 14 के प्रावधान]। निम्नलिखित सेवकों पर यह नियमावली लागू नहीं होती - [1] रैलवे-सेवक,[2]अखिल भारतीय सेवा के सदस्य, [3] वे सेवक जिन पर यह नियमावली लागू न होने का आदेश राष्ट्रपति ने दिया हो
8·	रेलवे सर्वेन्ट्स [डिसि-प्लिन ऐण्ड अपील] रूल्स,1968	नियम-9,10 एवं 12	रेलवे सेवक
9·	आल इण्डिया सर्विसेज डिसिप्लिन ऐण्ड अपील] रूल्स,1969	नियम-8,9 एवं 12	भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा भारतीय पुलिस सेवा के सदस्य।

सी·सी·ए· रूल्स, 1930 के नियम 55 में, सरकारी सेवक को महादण्ड देने से पूर्व की जाने वाली विभागीय जाँच की प्राचीनतम प्रक्रिया नियत है, जो इस प्रकार है,

1· [i] सरकारी सेवक को उन आधारों की लिखित सूचना दी जाएगी जिस पर उसके विरुद्ध कार्रवाई की जानी प्रस्तावित है। उन आधारों को निश्चित आरोप या आरोपों के रूप में अभिलिखित किया जाएगा। आरोप स्पष्ट एवं संक्षिप्त बनाए जाएँगे जिससे कि आरोपित सेवक को, अपने विरुद्ध तथ्यों एवं परिस्थितियों की, समुचित जानकारी प्राप्त हो जाए। आरोपित सेवक को ये आरोप संसूचित किए जाएँगे।

[ii] उस सेवक को अपना बचाव करने का पर्याप्त अवसर दिया जाएगा। उसे युक्तियुक्त अवधि के अंदर अपने बचाव

का पर्याप्त अवसर दिया जाएगा। उसे युक्तियुक्त अवधि के अंदर अपने बचाव का लिखित-कथन प्रस्तुत करने तथा यह बताने के लिए कि क्या वह व्यक्तिगत सुनवाई चाहता है?, कहा जाएगा। यदि वह ऐसा चाहता हो अथवा संबंधित प्राधिकारी ने ऐसा निदेशित किया हो तो उन आरोपों के संबंध में, जो स्वीकार नहीं किए गए हैं, मौखिक जाँच की जाएगी, जिसमें जाँच अधिकारी ऐसे मौखिक साक्ष्यों को अभिलिखित करेंगे जो वह समुचित समझें। आरोपित सेवक साक्षियों से प्रतिपरीक्षा करने, स्वयं साक्ष्य देने एवं अपने साक्षियों को तलब करवाकर साक्ष्य दिलाने का अधिकारी होगा। जाँच अधिकारी समुचित कारण अभिलिखित करके किसी साक्षी को तलब करने से इंकार कर सकते हैं।

[iii] जाँच अधिकारी, जाँच कार्यवाही की रिपोर्ट तैयार करेंगे जिसमें साक्ष्य का अधिमूल्यन, निष्कर्ष एवं उसके आधार अंतर्विष्ट होंगे। जाँच अधिकारी, यदि चाहें तो, अलग से आरोपित सेवक पर दण्ड अधिरोपित करने के संबंध में अपनी संस्तुति कर सकते हैं।

2. दण्डन प्राधिकारी स्वयं जाँच कर सकते हैं या जाँच अधिकारी नियुक्त करके जाँच करा सकते हैं, तथा यदि वह आवश्यक समझें तो किसी सरकारी सेवक या विधि-व्यवसायी को, आरोप के समर्थन में पक्ष-कथन प्रस्तुत करने हेतु प्रस्तुति अधिकारी [प्रेजेन्टिंग आफीसर] नियुक्त कर सकते हैं।

3. आरोपित सेवक यदि चाहे तो, अपना बचाव प्रस्तुत करने हेतु, किसी अन्य सरकारी सेवक की सहायता ले सकता है, परन्तु वह किसी विधि-व्यवसायी की सहायता नहीं ले सकता जब तक कि प्रस्तुति अधिकारी कोई विधि-व्यवसायी न हो अथवा दण्डन/अनुशासनिक प्राधिकारी ने ऐसी अनुमति न दे दी हो।

4. यदि वह सेवक फरार हो गया हो अथवा अन्य कारणों से उससे

संसूचना करना युक्तियुक्त रूप से साध्य न हो तो ये उपबंध लागू नहीं होंगे। यदि इस नियम की अपेक्षाओं के यथावत पालन करने में कठिनाई हो रही हो तथा जाँच अधिकारी की राय में आरोपित सेवक के प्रति अन्याय किए बगैर इस नियम की अपेक्षाओं का अधित्यजन किया जा सकता हो तो जाँच अधिकारी समुचित कारण अभिलिखित करके इन सभी या किसी उपबंध का अधित्यजन कर सकते हैं।

5. यदि अस्थायी या परिवीक्षाधीन सेवक की सेवा, परिवीक्षावधि के दौरान या समाप्ति पर, समाप्त की जानी प्रस्तावित हो तो ये नियम लागू नहीं होंगे। ऐसे मामलों में अस्थायी सरकारी सेवक की सेवा-शर्तों के अनुरूप सेवा-समाप्ति की साधारण सूचना देनी पर्याप्त होगी।

सी.सी.ए. रूल्स, 1930 के नियम 55 के पूर्वोक्त उपबंधों के समान उपबंध पृष्ठ सं0 79 पर दिए गए चार्ट के क्रम सं0 2-6 की नियमावलियों में भी हैं। अतः सी.सी.ए. रूल्स, 1930 के नियम 55 में नियत विभागीय जाँच की प्रक्रिया उत्तर प्रदेश के सरकारी सेवकों तथा उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत परिषद्, उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम, उत्तर प्रदेश नगर पालिका तथा नगर महापालिका एवं अन्य सहसंबद्ध सेवाओं के सेवकों पर भी लागू होती है।

सी.सी.ए. रूल्स, 1930 के पूर्वोक्त उपबंधों में कुछ अभिवृद्धि करते हुए सेन्ट्रल सिविल सर्विसेज [क्लासिफिकेशन, कंट्रोल ऐण्ड अपील] रूल्स, 1965 में केन्द्रीय सरकार के सेवकों के विरुद्ध विभागीय जाँच की प्रक्रिया नियत की गई है। पहली अभिवृद्धि यह है कि आरोप-पत्र के साथ अभियोग का कथन भी आरोपित सेवक को दिया जाएगा तथा दूसरी अभिवृद्धि यह है कि अभियोजन साक्ष्य लेने के उपरान्त आरोपित सेवक के विरुद्ध साक्ष्य में जो परिस्थितियाँ सामने आई हैं, उनके संबंध में जाँच अधिकारी उससे इस आशय से प्रश्न पूछ सकते हैं कि वह सेवक उन परिस्थितियों के संबंध में स्पष्टीकरण दे सके। इन्हीं अभिवृद्धियों सहित विभागीय जाँच की पूर्वोक्त प्रक्रिया पृष्ठ सं0 81 पर दिए गए

चार्ट के क्रम सं0 8 एवं 9 की नियमावलियों में भी नियत है।

इन सभी नियमों में महादण्ड के लिए नियत जाँच प्रक्रिया का सारांश यह है कि, विभागीय जाँच, संबंधित सेवक के विरूद्ध, आरोप-पत्र प्रस्तुत करके आरम्भ की जाती है। आरोपित सेवक को, अपने बचाव में लिखित-कथन प्रस्तुत करने एवं व्यक्तिगत सुनवाई का, अवसर दिया जाता है, तथा उभय पक्षों को साक्ष्य प्रस्तुत करने एवं साक्षीगण से प्रतिपरीक्षा ‡जिरह‡ करने का अवसर प्रदान किया जाता है। तदुपरान्त, आरोप सिद्ध होने की दशा में, दण्डादेश किया जाता है, जिसके विरूद्ध अपील की जा सकती है।

अतः विभागीय जाँच में चार मुख्य प्रक्रम होते हैं,[16]

‡1‡ आरोप

‡2‡ आरोप का अन्वेषण,

‡3‡ निष्कर्ष एवं दण्डादेश, तथा

‡4‡ अपील।

पूर्वोक्त सभी नियमावलियों में नियत विभागीय जाँच की प्रक्रमवार प्रक्रिया का समग्र एवं क्रमबद्ध विवरण इस प्रकार है,

आरोप

‡1‡ सरकारी सेवक के दुराचरण या दुर्व्यवहार के अभियोग, लांछन या परिवाद पर अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा विचार करना।

‡2‡ प्रारम्भिक जाँच कराना, यदि लांछन या परिवाद अस्पष्ट हो।

‡3‡ आरोप-पत्र तैयार करना।

‡4‡ आरोप-पत्र की प्रति आरोपित सेवक को देना।

आरोप का अन्वेषण

‡5‡ आरोपित सेवक को लिखित-कथन प्रस्तुत करने, एवं व्यक्तिगत सुनवाई, का अवसर देना।

‡6‡ आरोप स्वीकृत होने की दशा में दण्डादेश पारित करना।

16-ए0आर0ए0 चौधरी बनाम भारत संघ-आई0आर0 1956 कलकत्ता 662

[7] आरोपों से इंकारी की दशा में जाँच अधिकारी नियुक्त करना, अनुशासनिक प्राधिकारी, यदि चाहें तो, आरोप-पत्र विरचित करने से पूर्व भी जाँच अधिकारी नियुक्त कर सकते हैं।

[8] प्रस्तुति अधिकारी [प्रेजेन्टिंग आफीसर] नियुक्त करना तथा आरोपित सेवक को, यदि वह चाहे तो, किसी अन्य सरकारी सेवक या विधि-व्यवसायी की सहायता लेने की अनुमति देना।

[9] साक्ष्य अभिलिखित करना, पहले अभियोजन पक्ष, अर्थात्, विभाग की तरफ से प्रस्तुत साक्ष्य लेना, तदुपरान्त बचाव पक्ष, अर्थात् आरोपित सेवक की तरफ से साक्ष्य लेना।

[10] आरोपित सेवक से, उसके विरुद्ध साक्ष्य में आई परिस्थितियों के संबंध में प्रश्न पूछकर, स्पष्टीकरण लेना।

[11] बहस सुनना।

[[12] जाँच-रिपोर्ट तैयार करना।

निष्कर्ष, दण्डादेश

[13] अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा जाँच रिपोर्ट का निस्तारण करना।

[14] दण्डादेश पारित करना।

अपील

[15] अपील, यदि प्रस्तुत की गई हो, का निस्तारण करना।

आरोप

सरकारी सेवक पर जब दुराचरण, दुर्व्यवहार, कर्तव्य के प्रति उपेक्षा या अक्षमता का अभियोग या लांछन लगाया जाता है, तो सक्षम प्राधिकारी को विचार करना होता है कि इस अभियोग या लांछन की सत्यता की जाँच करने के आधार हैं या नहीं। यदि वह इस मत के हों कि जाँच करने के आधार हैं तो वह विभागीय जाँच करने या कराने का आदेश कर सकते हैं। इस संदर्भ में मूल प्रश्न उठता है कि सक्षम प्राधिकारी कौन है? अर्थात् कौन प्राधिकारी विभागीय जाँच करने या कराने का आदेश कर सकता है?

कौन जाँच करा सकता है?

किसी सरकारी सेवक को निलम्बित या पदच्युत करने या सेवा से हटाने या अन्यथा उसकी पदावधि समाप्त करने की शक्ति, सामान्यतया, उसके नियुक्ति प्राधिकारी को प्राप्त होती है।[17] संविधान के अनुच्छेद 311 के खण्ड (1) के उपबंधों के अनुसार, किसी सरकारी सेवक को उसको नियुक्त करने वाले प्राधिकारी के अधीनस्थ किसी प्राधिकारी द्वारा पदच्युत नहीं किया जाएगा या पद से नहीं हटाया जाएगा। अर्थात्, नियुक्ति प्राधिकारी ही सरकारी सेवक को पदच्युत कर सकते हैं या उसे सेवा से हटा सकते हैं, नियुक्ति प्राधिकारी के अधीनस्थ कोई प्राधिकारी उसे पदच्युत नहीं कर सकते, न ही सेवा से हटा सकते हैं। लेकिन उसका तात्पर्य यह नहीं है कि जिस प्राधिकारी ने नियुक्ति की हो वही पदच्युति कर सकेगा। नियुक्ति प्राधिकारी का अभिप्राय सिर्फ उस प्राधिकारी से नहीं है जिसने नियुक्ति आदेश जारी किया हो, बल्कि उस प्राधिकारी से भी है जो नियुक्ति प्राधिकारी के समकक्ष हों या उनसे उच्च रैंक के हों। शासन, नियुक्ति प्राधिकारी से भिन्न किसी प्राधिकारी को पदच्युति करने की शक्ति प्रदान कर सकता है। ऐसा करने में संविधान में कोई रोक नहीं लगाई गई है, प्रतिबन्ध सिर्फ इतना है कि पदच्युति करने वाले प्राधिकारी, नियुक्ति प्राधिकारी से नीचे के रैंक के न हों।[18]

अनुच्छेद 311 यह अपेक्षा नहीं करता है कि सेवक को पदच्युत करने या सेवा से हटाने का आदेश उसी प्राधिकारी द्वारा करना अनिवार्य है जिसने उसे नियुक्त किया हो। यदि पदच्युति आदेश करने वाले प्राधिकारी उस सेवक के नियुक्ति प्राधिकारी से उच्च रैंक या ग्रेड के हों तो भी अनुच्छेद 311(1) का समुचित अनुपालन हो जाएगा।[19] अनुच्छेद 311(1) की मंशा यह है कि पदच्युति करने वाला प्राधिकारी, उस सेवक के नियुक्ति प्राधिकारी के नीचे के रैंक या ग्रेड का न हो। आवश्यक विवक्षा से, नियुक्ति प्राधिकारी से उच्च रैंक या ग्रेड का प्राधिकारी पदच्युति आदेश कर सकता है।

17-साधारण खण्ड अधिनियम, 1897 की धारा-16
18-उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम नरेश लाल-आ॰ई॰रि॰ 1970 सु॰को॰ 1263
19-सम्पूरन सिंह बनाम पंजाब राज्य-आ॰ई॰रि॰ 1982 सु॰को॰ 1407

यदि किसी विशिष्ट रैंक के प्राधिकारी ने एक वर्ग के सरकारी सेवकों की नियुक्ति की हो तथा बाद में उस रैंक से नीचे के प्राधिकारी को उस वर्ग के सरकारी सेवकों का "नियुक्ति प्राधिकारी" बना दिया जाता है तो निचले रैंक के प्राधिकारी, पूर्ववर्ती रैंक के नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा नियुक्त किए गए सरकारी सेवकों को, महादण्ड देने के लिए सक्षम नहीं है, अपितु पूर्ववर्ती रैंक के नियुक्ति प्राधिकारी के समकक्ष या उच्च प्राधिकारी ही उन सरकारी सेवकों को महादण्ड दे सकते हैं।

यह सुप्रतिष्ठित विधि है कि सरकारी सेवक को ऐसे प्राधिकारी द्वारा पदच्युत नहीं किया जा सकता या सेवा से नहीं हटाया जा सकता जो उस सेवक की नियुक्ति करने वाले प्राधिकारी के अधीनस्थ हो।[20] नियुक्ति प्राधिकारी से निचले रैंक के प्राधिकारी द्वारा किया गया पदच्युति आदेश निष्प्रभावी एवं शून्य होगा।[21]

अब प्रश्न है कि क्या अनुच्छेद 311(1) में वर्णित प्राधिकारी ही विभागीय जाँच कर या करा सकता है?

उच्चतम न्यायालय ने मध्य प्रदेश राज्य बनाम सारदुल सिंह के मामले[22] में इस प्रश्न का उत्तर दिया है कि अनुच्छेद 311(1) की यह अपेक्षा नहीं है कि पदच्युत करने या पद से हटाने वाले प्राधिकारी ही विभागीय जाँच कर या करा सकते हैं। अर्थात् नियुक्ति प्राधिकारी से नीचे के रैंक का प्राधिकारी विभागीय जाँच कर या करा सकता है, यदि वह नियमों द्वारा प्राधिकृत हो।

सारांश यह कि सरकारी सेवक के विरुद्ध विभागीय जाँच करने या कराने की शक्ति, सामान्यतया, नियुक्ति प्राधिकारी में निहित होती है तथा इस शक्ति का प्रत्यायोजन उनके नीचे के रैंक के प्राधिकारी को किया जा सकता है। अतः नियुक्ति प्राधिकारी से नीचे के रैंक के प्राधिकारी, यदि नियमों द्वारा प्राधिकृत हों, विभागीय जाँच करने या कराने का आदेश कर सकते हैं।

20-त्रिपुरा संघीय राज्य क्षेत्र बनाम गोपाल चन्द्र दत्त चौधरी-आ॰इ॰रि॰1963 सु॰को॰ 601

21-सम्पूरन सिंह बनाम पंजाब राज्य-आ॰इ॰रि॰1982 सु॰को॰1407

22-1970 म॰ ला रि॰ 101

अभियोग, लांछन या परिवाद पर विचार

सरकारी सेवक को, आचरण नियमावली एवं तत्संबंधी आदेशों के अनुरूप, सत्यनिष्ठ, कर्तव्यपरायण एवं सदाचारी होना अपेक्षित है। जब सरकारी सेवक के विरुद्ध कोई व्यक्ति दुराचरण या दुर्व्यवहार का लांछन या अभियोग लगाता है अथवा परिवाद करता है तो, अनुशासनिक प्राधिकारी को उस पर विचार करना होता है कि क्या विभागीय जाँच कराने के आधार हैं? ऐसा ही विचार उन्हें उस समय भी करना होता है जब सरकारी सेवक के दुराचरण, दुर्व्यवहार, कर्तव्य के प्रति उपेक्षा या अक्षमता, की जानकारी किसी अन्य अधिकारी या कर्मचारी की रिपोर्ट से प्राप्त होती है, अथवा जब सरकारी सेवक उनके समक्ष ही दुराचरण या दुर्व्यवहार करता है। जब अनुशासनिक प्राधिकारी इस मत के हों कि सरकारी सेवक के विरुद्ध लगाए गए दुराचरण या दुर्व्यवहार का लांछन या अभियोग या परिवाद की सत्यता की "जाँच करने के आधार" हैं, तो वह विभागीय जाँच कर सकते हैं अथवा किसी अन्य अधिकारी को जाँच अधिकारी नियुक्त करके, जाँच करने का निदेश दे सकते हैं। "जाँच करने के आधार" की संतुष्टि के लिए वह "प्रारम्भिक जाँच" कर या करा सकते हैं। परन्तु, यदि दुराचरण या दुर्व्यवहार का अभियोग स्पष्ट हो तथा प्रस्तावित साक्ष्य का विवरण उपलब्ध हो तो, प्रारम्भिक जाँच कराए बगैर भी, अनुशासनिक प्राधिकारी आरोप-पत्र तैयार करके विभागीय जाँच कर या करा सकते हैं। प्रारम्भिक जाँच कराना, आरोप-पत्र तैयार करने की, पूर्ववर्ती शर्त नहीं है। उदाहरणस्वरूप, एक अधिकारी अपने अधीनस्थ सेवक के अनुशासनिक प्राधिकारी को इस आशय का लिखित परिवाद करते हैं कि, "अधीनस्थ सेवक श्री..........ने दिनांक.......समय.......बजे उनके कक्ष में आकर उनके साथ दुर्व्यवहार किया, गालियाँ दीं तथा उन्हें थप्पड़-घूँसे से मार-पीट कर चोटें पहुँचाईं। इस घटना के समय उनका चपरासी श्री..........कक्ष में आ गया था तथा उसने घटना देखी थी।" इस परिवाद के अवलोकन

से ही अधीनस्थ सेवक के विरुद्ध "आरोप" लगाने का प्रथम दृष्टया मामला बनता प्रतीत होता है। अतः इस मामले में अनुशासनिक प्राधिकारी, प्रारम्भिक जाँच कराए बगैर, उस सेवक के विरुद्ध आरोप-पत्र विरचित करके विभागीय जाँच करा सकते हैं। परन्तु ऐसे मामले अपवाद ही होते हैं जिनमें विभागीय जाँच से पूर्व तथ्यान्वेषण आवश्यक प्रतीत न हो। सामान्यतया, आरोप लगाने, अर्थात् विभागीय जाँच आरम्भ करने, से पूर्व "तथ्यान्वेषण" आवश्यक होता है। अनुशासनिक प्राधिकारी सरकारी सेवक के विरुद्ध लगाए गए दुराचरण या दुर्व्यवहार के लांछन या अभियोग की सत्यता की "जाँच करने के आधार" की संतुष्टि के लिए प्रारम्भिक जाँच करते या कराते हैं। सारांश यह कि अनुशासनिक प्राधिकारी को, जिन मामलों में सरकारी सेवक के विरुद्ध दुराचरण का आरोप-पत्र तैयार करने में "तथ्यान्वेषण" की आवश्यकता प्रतीत हो, प्रारम्भिक जाँच कराना वांछनीय एवं समीचीन है।

प्रारम्भिक जाँच

सरकारी सेवक के विरुद्ध दुराचरण या दुर्व्यवहार का अभियोग या लांछन लगाया गया हो या परिवाद किया गया हो तो, यह विनिश्चय करने के लिए कि उस अभियोग, लांछन या परिवाद, के आधार पर सरकारी सेवक के विरुद्ध आरोप विरचित किया जाए या नहीं?, अनुशासनिक प्राधिकारी "प्रारम्भिक जाँच" करते या कराते हैं। "प्रारम्भिक जाँच", तथ्यान्वेषण की कार्यवाही है, जो सामान्यतया इसलिए कराई जाती है कि क्या विभागीय जाँच या औपचारिक जाँच करने के लिए प्रथम दृष्टया मामला बनता है? इस जाँच का उद्देश्य, सरकारी सेवक के कथित दुराचरण के संबंध में तथ्यों को एकत्र करके, यह जानकारी करना है कि,-

[1] वह सेवक कथित दुराचरण से संबंधित है या नहीं?

[2] उसके विरुद्ध दुराचरण का प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं?

[3] उस सेवक के विरुद्ध आरोप विरचित करके विभागीय जाँच कराने की आवश्यकता है या नहीं।[23]

23-चम्पक लाल बनाम भारत ऑल-आ-ई-रि-1964 सु-को-1854

ए0आर0एस0 चौधरी बनाम भारत संघ[24] के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने कहा है कि आरोप विरचित करने हेतु प्रारम्भिक जाँच कराया जाना अनुज्ञेय ही नहीं, अपितु वांछनीय भी है, क्योंकि सरकारी सेवक के विरूद्ध दुराचरण का आरोप, लापरवाही या उतावलेपन एवं बगैर कारण के, नहीं लगाया जाना चाहिए।

प्रारम्भिक जाँच करने या कराने के संबंध में कोई कानूनी उपबंध नहीं है, परन्तु उच्चतम न्यायालय ने, चम्पक लाल बनाम भारत संघ[25] के मामले में, "प्रारम्भिक जाँच" की प्रकृति, प्रयोजन एवं प्रक्रिया के संबंध में विधिक स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा है कि, सामान्यतया प्रारम्भिक जाँच यह विनिश्चय करने के लिए की जाती है कि "औपचारिक विभागीय जाँच" करने के लिए प्रथम दृष्ट्या मामला बनता है या नहीं। यह जाँच संविधान के अनुच्छेद 311(2) से नियंत्रित नहीं होती है। सरकारी सेवक के कार्य एवं आचरण के संबंध में तथ्यों को एकत्र करने के प्रयोजन हेतु "प्रारम्भिक जाँच" की जाती है, जिससे अनुशासनिक प्राधिकारी यह निर्णय ले सकें कि उस सेवक के विरूद्ध, महादण्ड अधिरोपित करने के लिए नियत, "विभागीय जाँच" कराई जाए अथवा नहीं। प्रारम्भिक जाँच में संबंधित सेवक से स्पष्टीकरण मांगा जा सकता है, परन्तु उसे सुनवाई का कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता। इस जाँच में मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य भी लिए जा सकते हैं, परन्तु साक्षियों से प्रतिपरीक्षा करने का अधिकार उस सेवक को प्राप्त नहीं होता। प्रारम्भिक जाँच एकतरफा की जा सकती है।[26] यह औपचारिक जाँच नहीं होती है, न ही इस जाँच में किसी नियम का अनुपालन करना होता है। एकतरफा जाँच करके एकतरफा रिपोर्ट प्रस्तुत की जा सकती है।[27] यद्यपि प्रारम्भिक जाँच एकतरफा की जाती है, तो भी उस सेवक से, जिसके विरूद्ध दुराचरण या दुर्व्यवहार का लांछन लगाया गया है, पूछताछ की जा सकती है।[28] परन्तु उस सेवक को प्रारम्भिक जाँच में बुलाना अनिवार्य नहीं है।[29]

24-आ॰ई॰रि॰ 1956 कलकत्ता 662 25-आ॰ई॰रि॰1964 सु॰को॰ 1854
26-चम्पक लाल बनाम भारत संघ-आ॰ई॰रि॰1964 सु॰को॰1854
27-अमूल्यरतन मुखर्जी बनाम डिप्टी चीफ मैकेनिकल इंजीनियर,इस्टर्न रेलवे-आ॰ई॰रि॰ 1961 कलकत्ता 40
28-ए॰आर॰एस॰ चौधरी बनाम भारत संघ-आ॰ई॰रि॰1956 कलकत्ता 662
29-मो॰शरीफ खान बनाम ओंकार सिंह-आ॰ई॰रि॰1957 इला॰ 217

प्रारम्भिक जाँच में, किसी न्यायिक या न्यायिक-कल्प जाँच की तरह, वृहद् जाँच प्रक्रियाएं नहीं अपनाई जाती। यह जाँच अनुशासनिक प्राधिकारी की संतुष्टि के लिए की जाती है जिससे कि वह विनिश्चय कर सकें कि आगे कोई कार्यवाई करना आवश्यक है अथवा प्रकरण समाप्त करना उचित है।[30]

अनुशासनिक प्राधिकारी, आरोप विरचित करने से पूर्व, प्रारम्भिक जाँच या तथ्यान्वेषण कराने के अधिकारी हैं।[31]

अनुशासनिक प्राधिकारी, स्वयं भी, प्रारम्भिक जाँच कर सकते हैं, अथवा किसी अन्य अधीनस्थ अधिकारी से यह जाँच करा सकते हैं। प्रारम्भिक जाँच में जाँच अधिकारी को, सामान्यतया, निम्नलिखित कार्यवाईयाँ करनी होती हैं:-

‡1‡ सरकारी सेवक के विरूद्ध प्रस्तुत परिवाद या उसके विरूद्ध लगाए गए दुराचरण के अभियोग या लांछन पर विचार करना।

‡2‡ उस सेवक से, परिवाद या लांछन का विवरण देकर, स्पष्टीकरण मांगना।

‡3‡ परिवादी या लांछन लगाने वाले व्यक्ति तथा अन्य साक्षियों का एकतरफा बयान लेना तथा उनके बयान का सार अभिलिखित करना। इस जाँच में साक्षियों को शपथ दिलाना आवश्यक नहीं है, न ही उनसे प्रतिपरीक्षा करने की अनुमति देनी आवश्यक है। जाँच अधिकारी स्वयं साक्षियों से पूछताछ कर सकते हैं।

‡4‡ दस्तावेजों को तलब करके उनका अवलोकन करना।

‡5‡ जाँच रिपोर्ट तैयार करके संपूर्ण अभिलेखों सहित अनुशासनिक प्राधिकारी को प्रेषित करना। जाँच रिपोर्ट में, सरकारी सेवक के विरूद्ध लगाए गए दुराचरण के अभियोग या लांछन या परिवाद का संक्षिप्त कथन, संबंधित सेवक का संक्षिप्त कथन, मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्यों

30-मोहम्मद उमर बनाम आई॰जी॰ उत्तर प्रदेश पुलिस-आ॰ई॰रि॰1957 इलाहाबाद 767

31-अमूल्यरतन मुखर्जी बनाम डिप्टी चीफ मेकेनिकल इंजीनियर, इस्टर्न रेलवे-आ॰ई॰रि॰ 1961 कलकत्ता 40

के तात्विक अंशों का उल्लेख एवं उनके आधार पर यह निष्कर्ष, कि प्रथम दृष्ट्या केस बनता है या नहीं, अभिलिखित की जानी चाहिए।

|6| अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा नियत अवधि, जो एक माह से अधिक नहीं होगी, के अंदर प्रारम्भिक जाँच पूरी कर ली जानी चाहिए।[32]

अनुशासनिक प्राधिकारी जाँच रिपोर्ट से बाधित नहीं होते हैं। जाँच पत्रावली पर उपलब्ध संपूर्ण सामग्री पर विचार करके वह जाँच रिपोर्ट से सहमत या असहमत हो सकते हैं तथा पुनः जाँच करने का भी आदेश कर सकते हैं। प्रारम्भिक जाँच के उपरान्त अनुशासनिक प्राधिकारी निम्नलिखित कार्यवाई कर सकते हैं:-

|क| अनुशासनिक प्राधिकारी यदि संतुष्ट हों कि सरकारी सेवक के विरूद्ध दुराचरण का प्रथम दृष्ट्या मामला नहीं बनता है तो वह प्रकरण समाप्त करने का आदेश कर सकते हैं।

|ख| यदि अनुशासनिक प्राधिकारी इस मत के हों कि कुछ अन्य तथ्य या साक्ष्य एकत्र किए जाने चाहिए थे, जो नहीं किए गए, तो वह पुनः प्रारम्भिक जाँच करने का आदेश कर सकते हैं।

|ग| यदि अनुशासनिक प्राधिकारी संतुष्ट हों कि सरकारी सेवक के विरूद्ध ऐसे दुराचरण का प्रथम दृष्ट्या मामला बनता है, जिसके सिद्ध होने पर लघुदण्ड ही दिया जाना समीचीन होगा, तो लघुदण्ड के लिए नियत जाँच प्रक्रिया के अनुरूप कार्यवाही कर सकते हैं, अर्थात् जाँच रिपोर्ट की प्रतिलिपि उस सेवक को देकर उसे स्पष्टीकरण देने का अवसर देते हुए अनुशासनिक प्राधिकारी संपूर्ण उपलब्ध सामग्री पर विचार करके आदेश पारित कर सकते हैं।

|घ| यदि अनुशासनिक प्राधिकारी संतुष्ट हों कि सरकारी सेवक के विरूद्ध ऐसे दुराचरण का प्रथम दृष्ट्या मामला बनता है जिसके सिद्ध होने पर महादण्ड दिया जाना समीचीन होगा, तो वह आरोप-पत्र विरचित करके विभागीय जाँच करने का आदेश कर सकते हैं।

32-उ0प्र0 का शासनादेश संख्या-7/6/1971-कार्मिक-दिनांक 28 नवम्बर,1979

आरोप-पत्र

आरोप-पत्र विरचित करने के साथ ही "विभागीय जाँच" की कार्यवाही आरम्भ हो जाती है। आरोप-पत्र तैयार करना विभागीय जाँच का प्रारम्भिक चरण है। यह सर्वाधिक महत्व का कार्य है, क्योंकि आरोप-पत्र ही जाँच की आधार शिला है। आरोप-पत्र में कथित दुराचरण या दुर्व्यवहार के अभियोग का सार होना अनिवार्य है, जिसका विवरण यथासंभव संक्षिप्त एवं सुस्पष्ट शब्दों में लिखा जाएगा। तात्पर्य यह कि जिस अभिकथन के आधार पर लांछन या अभियोग लगाया गया है, उसकी जानकारी सेवक को हो जाए जिससे उसे ज्ञात रहे कि उसे किस प्रकार अपना बचाव करना है। यदि आरोप स्पष्ट न हो तो आरोपित सेवक न तो अपना बचाव उचित ढंग से प्रस्तुत कर सकेगा, न ही साक्षियों से प्रभावी ढंग से प्रतिपरीक्षा कर सकेगा। अतः आरोप विशिष्ट, सुस्पष्ट, निश्चित एवं संक्षिप्त होना अनिवार्य है, जो आरोपित सेवक को उसके विरुद्ध अभिकथित दुराचरण के आधारों का, यथासंभव स्पष्ट शब्दों में, सुनिश्चित ज्ञान करा सकें।[33]

अतः आरोप-पत्र तैयार करने में विशेष सावधानी बरतनी चाहिए कि ये सुस्पष्ट, निश्चित एवं असंदिग्ध बनाए जायें। इसकी कसौटी यह है कि आरोप-पत्र दुराचरण के वास्तविक स्वरूप की जानकारी आरोपित सेवक को देता है अथवा नहीं। आरोप-पत्र से सरकारी सेवक को अभियोग की समुचित जानकारी मिलनी चाहिए जिससे कि उसे आरोप का खण्डन करने का अवसर मिल सके तथा अपना बचाव करने में कोई क्षति न हो। आरोप-पत्र से पूर्वाग्रह की झलक नहीं मिलनी चाहिए, अर्थात् आरोप-पत्र में ऐसा कोई कथन नहीं करना चाहिए जिससे अनुशासनिक प्राधिकारी का पूर्वाग्रहित होना प्रतीत हो।[34]

सी॰सी॰ए॰ रूल्स, 1930 के परिशिष्ट-7 में आरोप-पत्र का प्रारूप दिया हुआ है, जिसे इस पुस्तक के परिशिष्ट-दो में दिया जा

33-उ०प्र० राज्य बनाम नरायन सिंह-1973|2|स॰ला फि॰297|इला॰|
34-सवाई सिंह बनाम राजस्थान राज्य-आ॰ई॰रि॰ 1986 सु॰को॰995 रामचन्द्र राम बनाम भारत संघ 1990|3|स॰ला ज॰81 कलकत्ता उ॰न्या॰

रहा है। इसी प्रारूप में आरोप-पत्र तैयार करना चाहिए। प्रत्येक दुराचरण के लिए अलग-अलग आरोप विरचित किया जाएगा तथा प्रत्येक आरोप के नीचे प्रस्तावित साक्ष्य, जो उस आरोप को सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत करना हो, का संक्षिप्त विवरण दिया जाएगा। यदि आरोप किसी विशिष्ट नियमावली, विनियमावली या अधिनियम के उल्लंघन के संबंध में हो तो, संबंधित नियम, विनियम या धारा सहित, उसका उल्लेख आरोप-पत्र में किया जाना आवश्यक है।[35]

आरोप-पत्र के अंत में निम्नलिखित बातें लिखी जाएँगी,

[1] आरोपित सेवक नियत तिथि तक अपना लिखित-कथन तथा बचाव साक्षियों की सूची प्रस्तुत करे।

[2] आरोपित सेवक नियत तिथि को/तक दस्तावेजों का निरीक्षण कर सकता है।

[3] आरोपित सेवक बताए कि-

[क] क्या वह व्यक्तिगत सुनवाई चाहता है?

[ख] क्या वह आरोप-पत्र में नामित साक्षियों से प्रतिपरीक्षा करना चाहता है?

[ग] क्या उसे बचाव-साक्ष्य प्रस्तुत करना है?

[4] यदि आरोपित सेवक के "पिछले खराब रिकार्ड" को भी दण्ड निश्चित करते समय देखा जाना हो तो आरोप-पत्र में उस "खराब रिकार्ड" का उल्लेख कर देना चाहिए।[36] उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि यदि सरकारी सेवक के विरुद्ध विभागीय जाँच की जा रही हो तथा उस सेवक का पहले का "खराब रिकार्ड" हो,जिस पर वर्तमान जाँच में दण्ड अधिरोपित करने में विचार करना प्रस्तावित हो तो आरोपित सेवक को दण्डित करने से पूर्व पिछले "खराब रिकार्ड" पर विचार किए जाने की सूचना उसे दी जाएगी।[37]

35-एस-सहायति बनाम तमिल नाडु राज्य-1985 [1] [एल-ला ज-648 [मद्रास उ0न्या0]
36-उ0प्र0 का शासनादेश सं-17/6/68-कार्मिक-1,दिनांक 18 जनवरी,1982
37-मैसूर राज्य बनाम के0मंचेगोड़ा-आ-ई-रि-1964 सु-को-506

[5] आरोपित सेवक अपना पक्ष-कथन प्रस्तुत करने के लिए किसी सरकारी सेवक को "बचाव-सहायक" बनाने का अधिकारी है। यह तथ्य लिखना तभी आवश्यक है जब जाँच में विभाग का प्रतिनिधित्व करने के लिए प्रस्तुति अधिकारी नियुक्त किए गए हों या आरोपित सेवक चतुर्थ श्रेणी का अल्पशिक्षित व्यक्ति हो।[38]

आरोप-पत्र में लिखित-कथन प्रस्तुत करने की तिथि नियत करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि इसके लिए आरोपित सेवक को समुचित अवसर दिया जा रहा है। उत्तर प्रदेश के शासनादेश सं0 7/8-1977-कार्मिक, दिनांक 30.7.1977 के अनुसार लिखित-कथन प्रस्तुत करने हेतु आरोपित सेवक को कम-से-कम पन्द्रह दिन का अवसर अवश्य दिया जाना चाहिए।

आरोप-पत्र विरचित करने की शक्ति अनुशासनिक प्राधिकारी को प्राप्त होती है। परन्तु वह इस शक्ति का प्रत्यायोजन भी कर सकते हैं। अतः अनुशासनिक प्राधिकारी स्वयं आरोप-पत्र विरचित कर सकते हैं अथवा किसी अन्य प्राधिकारी को जाँच अधिकारी नियुक्त करके उन्हें आरोप-पत्र विरचित करने का निदेश दे सकते हैं, परन्तु जाँच अधिकारी द्वारा विरचित आरोप-पत्र अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित होना अनिवार्य है।[39] आरोप-पत्र विरचित करके उसकी एक प्रति आरोपित सेवक को दी जाएगी। आरोप में संशोधन, परिवर्तन या अभिवृद्धि एक प्रक्रियात्मक विषय है, यदि इसकी सूचना आरोपित सेवक को दे दी गई हो तथा उसे अपने बचाव का उचित अवसर भी दे दिया गया हो तो जाँच दूषित नहीं होगी।[40] अतः विभागीय जाँच के दौरान आरोपों में संशोधन किया जा सकता है, आरोपों को घटाया या बढ़ाया जा सकता है। अनुशासनिक प्राधिकारी ही आरोपों में संशोधन कर सकते हैं। जब भी आरोप में संशोधन करना हो तो इसकी सूचना आरोपित सेवक को दी जाएगी तथा

38-भगत राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य-1983[2]प्र-ला क-323[सु-को-]
39-सुरेन्द्र चन्द्र दास बनाम त्रिपुरा यूनियन राज्य क्षेत्र-आ-ई-रि-1962 त्रिपुरा 15
40-ब्रज किशोर दास बनाम उड़ीसा राज्य-आ-ई-रि-1965 उड़ीसा 183[खण्ड न्यायपीठ]

संशोधित आरोप-पत्र की प्रतिलिपि देकर उसे अतिरिक्त लिखित-कथन प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाएगा एवं यदि वह चाहे तो अभियोजन साक्षियों को प्रतिपरीक्षा के लिए पुनः तलब किया जाएगा।

यद्यपि सी॰सी॰ए॰ रूल्स, 1930 में आरोप-पत्र के साथ अलग से अभियोग का विवरण देने का प्रावधान नहीं है, परन्तु सेन्ट्रल सिविल सर्विसेज [क्लासिफिकेशन, कंट्रोल ऐण्ड अपील] रूल्स, 1965 के नियम 14[3] में आरोप-पत्र के साथ, आरोपों के समर्थन में, अलग से "अभियोग का विवरण" देने का प्रावधान है। ऐसा ही प्रावधान रेलवे सर्वेण्ट्स [डिसिप्लिन ऐण्ड अपील] रूल्स, 1968 के नियम 9[6] तथा आल इण्डिया सर्विसेज [डिसिप्लिन ऐण्ड अपील] रूल्स, 1969 के नियम 8[4] में भी है। अतः केन्द्रीय सरकार के सेवकों, रेलवे सेवकों तथा अखिल भारतीय सेवा के सदस्यों के विरुद्ध विभागीय जाँच में आरोप-पत्र के साथ दुराचरण या दुर्व्यवहार के अभियोग, लांछन या परिवाद का विवरण भी दिया जाएगा। उच्चतम न्यायालय ने[41] कहा है कि यदि आरोप अस्पष्ट एवं अनिश्चित हों तथा दुराचरण के अभियोग का विवरण भी आरोपित सेवक को न दिया गया हो तो यही माना जाएगा कि उसे अपने बचाव का उचित एवं युक्तियुक्त अवसर नहीं दिया गया। कहने का तात्पर्य यह है कि आरोप-पत्र के साथ अभियोग का विवरण, अभियोजन-साक्षियों तथा दस्तावेजी साक्ष्यों की सूची, एवं प्रारम्भिक जाँच के साक्षियों के बयानों, यदि कोई हों, की प्रतिलिपियाँ भी आरोपित सेवक को दी जाएंगी।

दस्तावेजी साक्ष्यों एवं पूर्वतन बयानों की प्रतियाँ देना

उच्चतम न्यायालय ने[42] कहा है कि, संविधान के अनुच्छेद 311 में सरकारी सेवक को, महादण्ड देने से पूर्व, बचाव का उचित अवसर देने का उपबंध आज्ञापक है। इसका तात्पर्य यह है कि विभागीय जाँच नियमानुसार, न्यायोचित एवं निष्पक्ष ढंग से की जाएगी, तथा

41-एस॰के॰ चक्रवर्ती बनाम पश्चिम बंगाल राज्य-आ॰ई॰रि॰1971 सु॰को॰752
42-चन्द्रमा तिवारी बनाम भारत संघ-आ॰ई॰रि॰1988 सु॰को॰117

नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के अनुरूप जाँच की प्रक्रिया अपनाई जाएगी। नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त की माँग है कि,

|1| आरोपित सेवक के विरुद्ध किसी दस्तावेज का इस्तेमाल करना हो तो उसकी प्रतिलिपि उसे दी जानी चाहिए।

|2| उस सेवक को साक्षियों से प्रतिपरीक्षा करने का अवसर दिया जाना चाहिए।

|3| उसे अपने बचाव में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाना चाहिए।

यह सुप्रचलित सिद्धान्त है कि विभागीय जाँच में, आरोपित सेवक के विरुद्ध किसी दस्तावेज का इस्तेमाल उसकी प्रतिलिपि उसे दिए बगैर किया जाता है तथा उसके दोषी होने का निष्कर्ष निकाला जाता है तो नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन होगा, जिसके कारण दण्डादेश अवैध एवं निष्प्रभावी होगा।

अतः आरोपित सेवक को आरोप-पत्र के साथ निम्नलिखित अभिलेख भी दिए जाएँगे:-

|1| अभियोजन पक्ष, अर्थात् विभाग के साक्षियों की सूची,

|2| दस्तावेजी साक्ष्यों की सूची

|3| दस्तावेजी साक्ष्यों की प्रतिलिपियाँ,

|4| प्रारम्भिक जाँच के साक्षियों के बयान, यदि कोई हों, की प्रतिलिपियाँ।

विभागीय जाँच के दौरान अभियोजन-पक्ष जिन साक्षियों का साक्ष्य कराना चाहता हो, उन सभी साक्षियों के नाम, पता की सूची तैयार करके आरोपित सेवक को दी जाएगी। इसी प्रकार जिन दस्तावेजी साक्ष्यों का इस्तेमाल आरोपित सेवक के विरुद्ध किया जाना हो उन सभी दस्तावेजों की सूची तैयार करके उसे दी जाएगी तथा उन दस्तावेजों की प्रतिलिपियाँ भी दी जाएँगी। यदि दस्तावेज विशालकाय हों तथा प्रतिलिपि तैयार

करना युक्तियुक्त रूप से साध्य न हो तो उसका निरीक्षण करने का अवसर आरोपित सेवक को दिया जाएगा। प्रारम्भिक जाँच में जिन साक्षियों का बयान लिया गया हो, तथा जिन्हें विभागीय जाँच में भी पेश करना हो, उनके बयानों की प्रतिलिपियाँ भी आरोपित सेवक को दी जाएँगी।

प्रारम्भिक जाँच के उन्हीं साक्षियों के बयानों की प्रतिलिपियाँ आरोपित सेवक पाने का अधिकारी है, जो विभागीय जाँच में परीक्षित किए जाने वाले हों। प्रारम्भिक जाँच के जो साक्षी विभागीय जाँच में परीक्षित किए जाने प्रस्तावित न हों उनके बयानों की प्रतिलिपियाँ आरोपित सेवक पाने का अधिकारी नहीं है।[43]

आरोपित सेवक को दस्तावेजी साक्ष्यों एवं प्रारम्भिक जाँच के साक्षियों के बयानों की प्रतिलिपियाँ, यदि कोई हो, न देने से उसे अपना बचाव करने में क्षति हो सकती है तथा यही माना जाएगा कि उसे सुनवाई का उचित अवसर नहीं दिया गया, जिससे अनुच्छेद 311[2] का उल्लंघन हुआ, तथा जाँच दूषित है। अतः दस्तावेजी साक्ष्यों एवं प्रारम्भिक जाँच के साक्षियों के बयानों, यदि कोई हों, की प्रतिलिपियाँ आरोपित सेवक को अवश्य दे दी जानी चाहिए।[44]

इस संदर्भ में, पंजाब राज्य बनाम भगतराम[45] का मामला एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है। श्री भगतराम एक सबडिविजनल आफीसर थे, जिनके विरूद्ध लगाए गए अभियोग की प्रारम्भिक जाँच विजिलेन्स विभाग ने की थी, जिसके दौरान कई साक्षियों के बयान लिए गए थे। उसके उपरान्त "विभागीय जाँच" आरम्भ की गई, जिसमें श्री भगतराम को प्रारम्भिक जाँच के साक्षियों के बयानों की प्रतिलिपियाँ नहीं दी गई, केवल उनका सारांश [सिनोप्सिस] दिया गया था। जाँचोपरान्त पदच्युति आदेश किया गया, जिसे उन्होंने न्यायालय में चुनौती दी। विचारण न्यायालय ने पदच्युति आदेश निरस्त कर दिया। इस निर्णय की परिपुष्टि उच्च न्यायालय ने भी कर दी। जिसके विरूद्ध पंजाब राज्य ने उच्चतम न्यायालय में अपील प्रस्तुत की। उच्चतम न्यायालय ने इस निर्णय

43-पी०एन० मजोगे बनाम मध्य प्रदेश राज्य-आ॰ई॰रि॰1967 म॰प्र॰215

44-त्रिलोक नाथ बनाम भारत संघ-1967[1][स॰ला रि॰759[सु॰को॰]

45-पंजाब राज्य बनाम भगतराम-आ॰ई॰रि॰ 1974 सु॰को॰2335

को परिपुष्ट करते हुए कहा कि प्रारम्भिक जाँच के साक्षियों के बयानों की प्रतिलिपियाँ आरोपित सेवक को देने का उद्देश्य यह है कि जब वे साक्षी विभागीय जाँच में साक्ष्य देने हेतु पेश किए जाएँ तो आरोपित सेवक उन साक्षियों के "पूर्वतन बयानों" का हवाला दे सके। जब तक बयानों की प्रतियाँ नहीं दी जाती वह "प्रभावी एवं उपयुक्त प्रतिपरीक्षा" नहीं कर सकेगा, जिसका अर्थ यह होगा कि उसे सुनवाई का उचित अवसर नहीं दिया गया। प्रारम्भिक जाँच के साक्षियों के बयानों की प्रतियाँ विभागीय जाँच के दौरान आरोपित सेवक को न देने के प्रभाव के बारे में, यही मत उच्चतम न्यायालय ने **उ0प्र0 राज्य बनाम मोहम्मद शरीफ**[46] के मामले में भी व्यक्त किया है।

श्री काशीनाथ दीक्षित बनाम भारत संघ[47] के मामले में आरोपित सेवक को दस्तावेजी साक्ष्यों एवं प्रारम्भिक जाँच के साक्षियों के बयानों की प्रतिलिपियाँ नहीं दी गई थी। विभागीय जाँच के दौरान उसने इन प्रतिलिपियों की लिखित मांग की, जो अस्वीकार कर दी गई। यद्यपि अनुशासनिक प्राधिकारी ने आरोपित सेवक को दस्तावेजों एवं बयानों का निरीक्षण करने की अनुमति तो दी परन्तु उनकी प्रतिलिपियाँ देने से इंकार कर दिया। उच्चतम न्यायालय ने अवधारणा किया कि जब सरकारी सेवक के विरूद्ध अनुशासनिक कार्यवाही की जा रही हो तो वह, प्रभावी ढंग से, आरोपों का खण्डन करने हेतु उचित अवसर पाने का अधिकारी है। कोई भी व्यक्ति प्रभावी ढंग से आरोपों का खण्डन तब तक नहीं कर सकता जब तक कि सुसंगत दस्तावेजों एवं बयानों, जो उसके विरूद्ध इस्तेमाल किए जाने हों, की प्रतिलिपियाँ उसे न दे दी जाएँ। इन प्रतिलिपियों के बगैर आरोपित सेवक साक्षियों से न तो प्रभावी ढंग से प्रतिपरीक्षा कर सकता है और न ही अपना बचाव प्रस्तुत कर सकता है। अतः श्री काशीनाथ दीक्षित को बचाव करने का उचित अवसर नहीं दिया गया, जिसके कारण संविधान के अनुच्छेद 311[2] का उल्लंघन हुआ, अतः उन्हें पदच्युत करने का आदेश अवैध एवं निष्प्रभावी है।

अतः यह सुस्पष्ट है कि अपराधिक मामलों के अन्वेषण या

46-आ॰ई॰रि॰ 1982 सु॰को॰937

47-आ॰ई॰रि॰1986 सु॰को॰2116= 1986[2]स॰ला॰ज॰ 279

प्रारम्भिक जाँच के दौरान साक्षियों के बयान अभिलिखित किए गए हों, परन्तु विभागीय जाँच के दौरान आरोपित सेवक को उसकी प्रतिलिपियाँ न दी गई हों तो यही माना जाएगा कि आरोपित सेवक को प्रभावी ढंग से प्रतिपरीक्षा करने का उचित अवसर नहीं दिया गया।[8]

उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा है कि प्रत्येक एवं सभी दस्तावेजों की प्रतिलिपियाँ दी जानी अनिवार्य नहीं है, अपितु सिर्फ सुसंगत एवं तात्विक दस्तावेजों की प्रतियाँ दी जानी अनिवार्य हैं। कोई दस्तावेज, भले ही आरोप-पत्र में अंकित हो, आरोपों के लिए सुसंगत न हो अथवा सेवक के विरुद्ध आरोप सिद्ध करने के लिए उसका इस्तेमाल न किया जाना हो तो उसकी प्रतिलिपि देना अनिवार्य नहीं है। ऐसे दस्तावेजों की प्रतिलिपि न देने मात्र से नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त का उल्लंघन नहीं होता है। नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त का उल्लंघन तब होगा जब दस्तावेज की प्रतिलिपि आरोपित सेवक को माँगने पर भी न दी गई हो, परन्तु उसे दोषी होने का निष्कर्ष निकालने में उस दस्तावेज का इस्तेमाल किया गया हो।[48]

अतः उच्चतम न्यायालय की निर्णयज विधियों से यह सुप्रतिष्ठित है कि,

\[1\] यदि विभागीय जाँच के दौरान सुसंगत एवं तात्विक दस्तावेजों की प्रतिलिपियाँ आरोपित सेवक को न दी गई हों,

\[2\] यदि विभागीय जाँच से पूर्व प्रारम्भिक जाँच या अन्वेषण कराया गया हो, जिसमें साक्षियों का बयान अभिलिखित किया गया हो, परन्तु विभागीय जाँच में उनकी प्रतिलिपियाँ न दी गई हों, तथा

\[3\] आरोपित सेवक के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को सिद्ध करने में उन दस्तावेजों, एवं बयानों का इस्तेमाल किया जाता है,

तो नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त् के उल्लंघन के कारण विभागीय जाँच दूषित हो जाएगी।

48-चन्द्रमा तिवारी बनाम भारत संघ-आ॰ई॰रि॰1988 सु॰को॰117

सारांश यह है कि सरकारी सेवक के विरूद्ध लगाए गए आरोपों को सिद्ध करने में दस्तावेजों एवं साक्षियों के बयानों, यदि कोई हों, का इस्तेमाल करना प्रस्तावित हो तो वह सेवक उनकी प्रतिलिपियाँ पाने का अधिकारी है। आरोपों के संदर्भ में जो दस्तावेज तात्विक एवं सुसंगत हों, उन्हीं की प्रतिलिपियाँ पाने का वह अधिकारी है। कोई दस्तावेज सुसंगत एवं तात्विक है या नहीं? यह प्रत्येक केस के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर निर्भर होगा। प्रारम्भिक जाँच के उन्हीं साक्षियों के बयानों की प्रतिलिपियाँ दी जाएगी, जो विभागीय जाँच में परीक्षित किए जाने वाले हों।

आरोपित सेवक को, आरोप-पत्र की प्रतिलिपि के साथ पूर्वोक्त अभिलेख देकर, अगली तिथि नियत करके लिखित-कथन प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाएगा।

आरोप-पत्र की तामील

आरोपित सेवक को आरोप-पत्र एवं अन्य दस्तावेजों की प्रतियाँ उसी ढंग से प्राप्त कराई जाएँगी जैसे कार्यालय का कोई पत्र आदि प्राप्त कराया जाता है। आरोप-पत्र प्राप्त कराने की प्राप्ति रसीद जाँच पत्रावली पर रख ली जानी चाहिए। यदि वह सेवक कार्यालय नहीं आता या अवकाश से वापस नहीं आता या फरार हो जाता है, अथवा उसकी गतिविधि की कोई जानकारी नहीं मिल पाती हो तो आरोप-पत्र आदि की प्रतियाँ पंजीकृत डाक [प्राप्ति रसीद सहित] से उस सेवक के "दफ्तरी पते" पर भेजी जाएगी। यदि प्राप्ति रसीद वापस आ जाए अथवा पंजीकृत डाक मूल रूप से इस रिपोर्ट के साथ वापस आ जाए कि पावती ने लेने से इंकार किया, तो यही उपधारणा की जाएगी कि आरोपित सेवक को आरोप-पत्र आदि की समुचित सूचना दे दी गई है। यदि पंजीकृत डाक अथवा प्राप्ति रसीद तीस दिनों की अवधि व्यतीत होने पर भी वापस नहीं आती तो यह उपधारणा की जा सकेगी कि पंजीकृत डाक,

पावती को प्राप्त हो चुकी है।[49] यदि पंजीकृत डाक मूल रूप से, इस रिपोर्ट के साथ कि पावती नहीं मिला, या उसके मकान में ताला बन्द मिला या पता सही नहीं है या अन्य रिपोर्ट जिससे ज्ञात हो कि पावती को इसकी सूचना नहीं मिल पायी है, वापस आ जाए तो समाचार-पत्र में "आरोप-पत्र" का प्रकाशन कराकर, नियत तिथि को जाँच की अगली कार्यवाही की जा सकती है।[50]

यदि आरोपित सेवक, सूचना के बावजूद जाँच अधिकारी के समक्ष उपस्थित न हो, या लिखित-कथन न दे तो जाँच "एकतरफा" की जा सकेगी।

एकतरफा जाँच

जब जाँच अधिकारी संतुष्ट हो जायें कि आरोप-पत्र की सूचना आरोपित सेवक को प्राप्त हो गई है, परन्तु वह सेवक न तो लिखित-कथन प्रस्तुत करता है, न ही नियत तिथि को उपस्थित आता है, तो जाँच अधिकारी उसके विरूद्ध "एकतरफा जाँच" कर सकते हैं।

एकतरफा जाँच में भी आरोप को सिद्ध करने के लिए साक्ष्य लिया जाएगा, अंतर यही है कि जाँच की नियमित कार्यवाही में आरोपित सेवक की उपस्थिति में साक्ष्य लिया जाता है जबकि एकतरफा कार्यवाही में उसकी अनुपस्थिति में साक्ष्य लिया जाता है। एकतरफा कार्यवाही में सेवक के दोषी होने का निष्कर्ष निकालने के लिए इतनी सामग्री होनी अनिवार्य है जिससे आरोप सिद्ध होता हो।[51]

आरोपित सेवक, आरोप-पत्र पाने के उपरान्त कोई लिखित-कथन न दे तथा नियत तिथि को उपस्थित न आवे तो सिर्फ इसी कारण से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि उसे आरोपों की सत्यता स्वीकार्य है। यह सुप्रचलित है कि विभागीय जाँच की कार्यवाही न्यायिक-कल्प प्रकृति की होती है तथा जाँच अधिकारी का कोई भी निष्कर्ष "ग्राह्य साक्ष्य" पर आधारित होना अनिवार्य है, अर्थात् इतनी साक्ष्य-सामग्री

49-डी॰प्र॰ध॰ के आदेश V नियम 19-क के सिद्धान्त पर
50-डी॰प्र॰ध॰ का आदेश V नियम 20 के सिद्धान्त पर
51-अनिल कुमार सिंह बनाम उ॰प्र॰ राज्य-रिट याचिका सं॰ 5349 सन् 1990 (इलाहाबाद उच्च न्यायालय) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ पीठ के माननीय न्यायमूर्ति श्री जे॰के॰ माथुर के निर्णय दिनांक 12-3-1991 से।

पत्रावली पर उपलब्ध होनी चाहिए जो आरोपित सेवक के दोष को निश्चिततापूर्वक इंगित करे। "सन्देह" को "सबूत" का स्थान लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती। यद्यपि विभागीय जाँच साक्ष्य अधिनियम के कठोर एवं तकनीकी नियमों से नियंत्रित नहीं होती, परन्तु यदि जाँच अधिकारी ने "अग्राह्य साक्ष्य" के आधार पर निष्कर्ष दिया हो तो यह "विधिक-त्रुटि" मानी जाएगी। यदि जाँच अधिकारी का निष्कर्ष विधिक साक्ष्य पर आधारित न हो अथवा कोई भी प्रज्ञावान व्यक्ति पत्रावली पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर उस निष्कर्ष पर न पहुँचता हो तो यही कहा जाएगा कि जाँच अधिकारी का निष्कर्ष अनुचित है। कहने का तात्पर्य यह है कि जाँच अधिकारी का निष्कर्ष "साक्ष्य" पर ही आधारित होना चाहिए।[52]

इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ पीठ के माननीय न्यायमूर्ति श्री जे0के0 माथुर द्वारा निर्णीत **अनिल कुमार सिंह का मामला**[53] एकतरफा जाँच का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है। कार्यालय, भूमि अर्जन अधिकारी, बहराइच में श्री अनिल कुमार सिंह ड्राइवर के पद पर कार्यरत था। उसके विरुद्ध ग्यारह आरोपों का एक आरोप-पत्र दिनांक 10•4•90 को विरचित करके उसे दिया गया था। अनुशासनिक प्राधिकारी ने आरोप-पत्र जारी किया था। वह स्वयं साक्षी भी थे तथा जाँच भी कर रहे थे। अनिल कुमार का कथन था कि, अनुशासनिक प्राधिकारी को वह लिखित-कथन देने गया परन्तु उन्होंने नहीं लिया। तब उसने डाक द्वारा जिला मजिस्ट्रेट एवं अन्य अधिकारियों को उसकी प्रतियाँ भेजी। अनुशासनिक प्राधिकारी ने दिनांक 28•4•90 को श्री अनिल कुमार सिंह को पदच्युत करने का आदेश पारित किया, जिसमें उन्होंने यह संप्रेक्षण किया था कि आरोप-पत्र का उत्तर देने के लिए श्री अनिल कुमार सिंह को समय दिया गया था, जो समाप्त हो गया, परन्तु उन्होंने आरोप-पत्र का उत्तर नहीं दिया, जिससे स्पष्ट है कि उन्हें आरोप स्वीकार हैं। अतः श्री अनिल कुमार सिंह की सेवाएं समाप्त की जाती हैं। उच्च

52-नन्द किशोर प्रसाद बनाम बिहार राज्य-1978 स•ला•ज•59। [सु•को•], ए•की• कृष्णामूर्ति बनाम तमिलनाडु राज्य-1985 [1] [स•ला ज•117] [मद्रास उच्च न्यायालय], तथा सेन्ट्रल बैंक आफ इण्डिया बनाम प्रकाश चन्द्र जैन-ए•आई•आर• 1969 सु•को•983

53-अनिल कुमार सिंह बनाम उ0प्र0 राज्य-रिट याचिका सं•5349 सन् 1990 [इलाहाबाद उच्च न्यायालय]• है इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ पीठ के माननीय न्यायमूर्ति श्री जे0के0 माथुर के निर्णय दिनांक 12•3•91 से।

न्यायालय ने कहा कि भले ही आरोपित सेवक ने लिखित-कथन न दिया हो, उस पर दण्ड तभी अधिरोपित किया जा सकता है जब अनुशासनिक प्राधिकारी उसके विरूद्ध लगाए गए आरोपों की सत्यता के बारे में संतुष्ट हों, जिसके लिए पत्रावली पर साक्ष्य या अन्य सुसंगत सामग्री होनी चाहिए। एकतरफा जाँच में भी आरोपों को सिद्ध करने के लिए "साक्ष्य" का होना अवश्यक है जिसके अधार पर कोई निष्कर्ष निकाला जा सकता है। लिखित-कथन न देने मात्र से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि अरोप सही हैं। अनुशासनिक प्राधिकारी ने कोई साक्ष्य नहीं लिया, अतः पदच्युति अदेश दूषित है, जो निरस्त किया जाता है।

अतः एकतरफा जाँच कार्यवाही में भी साक्ष्य लिया जाएगा तथा साक्ष्य पर विचार करके आरोपों की सत्यता के बारे में कोई निष्कर्ष दिया जाएगा।

लिखित-कथन

आरोपित सेवक को, आरोपों के बारे में, लिखित-कथन देने का अधिकार है। लिखित-कथन में प्रत्येक आरोप के बारे में अलग-अलग स्पष्ट उत्तर, प्रस्तरवार, देना चाहिए। वे सभी तथ्य, जो उसकी निर्दोषिता प्रमाणित करें, अभिलिखित किए जाने चाहिए। आरोपों के प्रतिउत्तर में सुसंगत तथ्यों एवं साक्ष्यों का विवरण देना चाहिए, असंगत एवं अनावश्यक बातें नहीं लिखनी चाहिए।

यदि नियत तिथि को समुचित कारण बताते हुए आरोपित सेवक लिखित-कथन देने हेतु अवसर माँगे तो, सामान्यतया, उसे अवसर दे देना चाहिए। यदि समुचित अवसर देने के उपरान्त भी वह लिखित-कथन प्रस्तुत नहीं करता है तो जाँच की अगली कार्यवाही की जा सकती है।

आरोपित सेवक का लिखित-कथन प्राप्त होने पर अनुशासनिक प्राधिकारी उसका अवलोकन करेंगे। यदि आरोपित सेवक ने लिखित-कथन में सभी आरोपों को सही होना स्वीकार कर लिया हो तो अनुशासनिक

प्राधिकारी तदनुरूप प्रत्येक आरोप पर अपना निष्कर्ष अभिलिखित कर सकते हैं अथवा आवश्यक समझें तो साक्ष्य लेने के उपरान्त निष्कर्ष अभिलिखित कर सकते हैं एवं तदनुरूप अंतिम आदेश पारित कर सकते हैं।

जाँच के दौरान आरोपित सेवक, दोष स्वीकार करते हुए, बिना शर्त क्षमायाचना करे तो उस प्रक्रम से आगे जाँच करना आवश्यक नहीं है, परन्तु यदि वह अपना दोष अस्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया हो तो आगे जाँच आवश्यक होगी।[54] यदि आरोपित सेवक क्षमायाचना करता है तो उचित होगा कि आरोपों की स्वीकृति के संबंध में उसका बयान अभिलिखित करके उसका हस्ताक्षर करा लिया जाए। यदि वह अपना दोष स्वीकार कर लेता है और क्षमायाचना करता है तो उसी स्तर पर जाँच रिपोर्ट तैयार की जा सकती है।

यदि आरोपित सेवक ने, लिखित-कथन में, आरोपों से इंकार किया हो तो लिखित-कथन प्राप्त होने के उपरान्त "प्रथम सुनवाई" की तिथि नियत की जाएगी जिसमें आरोपित सेवक से पूछा जाएगा कि,

[1] क्या वह किसी दस्तावेज का निरीक्षण करना चाहता है?

यदि आरोपित सेवक दस्तावेजों का निरीक्षण करना चाहे तो इस प्रयोजन हेतु एक तिथि एवं समय नियत किया जाएगा तथा दस्तावेजों का निरीक्षण करने एवं उनका सार, पैन्सिल से, लिखने की अनुमति दी जाएगी। निरीक्षण के दौरान पैन्सिल का इस्तेमाल करने से अभिलेखों में हेरफेर करने की संभावना से बचा जा सकता है।

[2] क्या वह किसी दस्तावेज का असलीपन स्वीकार करना चाहता है?

आरोपित सेवक जिन दस्तावेजों को स्वीकार करना चाहे उस पर उससे असलीपन स्वीकार करने का तथ्य लिखवाकर उसका हस्ताक्षर करा लिया जाएगा। आरोपित सेवक जिन

54-राम लाल बनाम भारत संघ-आ॰ई॰रि॰1963 राजस्थान 57 तथा जगदीश प्रसाद सक्सेना बनाम मध्य भारत राज्य-आ॰ई॰रि॰1961 सु॰को॰1070

दस्तावेजों का असलीपन स्वीकार कर लेवे उनको सिद्ध करने के लिए साक्षी बुलाने की आवश्यकता नहीं होगी तथा वे दस्तावेज साक्ष्य में ग्राह्य होंगे।

[3] क्या वह मौखिक सुनवाई चाहता है?

यदि वह मौखिक सुनवाई चाहता हो तो अभियोजन साक्षियों को तलब करके मौखिक साक्ष्य अभिलिखित किया जाएगा, अर्थात्, प्रथम सुनवाई के उपरान्त अभियोजन साक्ष्य लेने की कार्यवाही की जाएगी।

आरोपित सेवक के लिखित-कथन पर विचार करके अनुशासनिक प्राधिकारी यदि इस मत के हों कि उस सेवक पर महादण्ड नहीं, अपितु लघुदण्ड अधिरोपित करना ही उचित होगा तो वह, तदनुरूप कार्यवाही करके, लघुदण्ड अधिरोपित कर सकते हैं, इसके लिए विभागीय जाँच की वृहद् प्रक्रिया अपनानी आवश्यक नहीं है।[55]

आरोपित सेवक का लिखित-कथन प्राप्त होने पर अनुशासनिक प्राधिकारी उसका अवलोकन करके ऐसे आरोपों के बारे में, जो स्वीकृत न हों, स्वयं जाँच कर सकते हैं अथवा किसी अन्य प्राधिकारी को "जाँच अधिकारी" नियुक्त करके उसे जाँच करने का निदेश दे सकते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि लिखित-कथन प्राप्त होने के उपरान्त ही जाँच अधिकारी नियुक्त किया जाए, बल्कि आरोप विरचित करने से पूर्व भी जाँच अधिकारी नियुक्त किए जा सकते हैं, अर्थात् जब अनुशासनिक प्राधिकारी इस मत के हों कि सरकारी सेवक के विरुद्ध लगाए गए दुराचरण या कुर्व्यवहार के लांछन की सत्यता के बारे में जाँच करने के आधार हैं, तो विभागीय जाँच करने हेतु किसी प्राधिकारी को "जाँच अधिकारी" नियुक्त कर सकते हैं। ऐसी दशा में जाँच अधिकारी आरोप-पत्र विरचित करेंगे जिसका अनुमोदन, अनुशासनिक प्राधिकारी से, होना अनिवार्य है।

55-आर॰डी॰ गुप्ता बनाम दिल्ली प्रशासन-1973|2|स॰ला॰ रि॰|दिल्ली उच्च न्यायालय|

जाँच अधिकारी की नियुक्ति

सरकारी सेवक के नियुक्ति प्राधिकारी ही, सामान्यतया, अनुशासनिक या दण्डन प्राधिकारी होते हैं, जिन्हें विभागीय जाँच करने की शक्ति प्राप्त होती है। इस शक्ति का प्रयोग करने वाले प्राधिकारी किसी अन्य अधिकारी को विभागीय जाँच करके रिपोर्ट देने का निदेश दे सकते हैं परन्तु इस शक्ति का प्रयोग करने का अंतिम दायित्व अनुशासनिक प्राधिकारी पर ही होता है।[56] अतः अनुशासनिक प्राधिकारी स्वयं विभागीय जाँच कर सकते हैं अथवा किसी अन्य प्राधिकारी को "जाँच अधिकारी" नियुक्त कर सकते हैं, कहने का तात्पर्य यह कि, विभागीय जाँच करने की शक्ति अनुशासनिक प्राधिकारी को प्राप्त होती है, जिसका प्रत्यायोजन वह कर सकते हैं। परन्तु उनके द्वारा नियुक्त जाँच अधिकारी, जाँच कार्य किसी अन्य को प्रत्यायोजित नहीं कर सकता। सामान्यतया, किसी अन्य प्राधिकारी को जाँच अधिकारी नियुक्त करके ही विभागीय जाँच करायी जाती है, क्योंकि अंतिम निर्णय स्वयं अनुशासनिक प्राधिकारी को करना होता है।

जाँच अधिकारी नियुक्त करने के दो प्रक्रम हो सकते हैं। प्रथम प्रक्रम उस समय हो सकता है जब अनुशासनिक प्राधिकारी, सरकारी सेवक के विरूद्ध लगाए गए अभियोग, लांछन या परिवाद पर विचार करके, अथवा प्रारम्भिक जाँच रिपोर्ट पर विचार करके विनिश्चय करें कि सरकारी सेवक के विरूद्ध आरोप विरचित करना उचित है, तब वह किसी अधीनस्थ अधिकारी को जाँच अधिकारी नियुक्त करके उन्हें आरोप-पत्र तैयार करने का निदेश दे सकते हैं। अर्थात् आरोप-पत्र विरचित करने से पूर्व जाँच अधिकारी की नियुक्ति की जा सकती है तथा उन्हें आरोप-पत्र विरचित करके जाँच करने का निदेश दिया जा सकता है। दूसरा प्रक्रम तब हो सकता है जब अनुशासनिक प्राधिकारी ने स्वयं आरोप-पत्र विरचित करके आरोपित सेवक को दिया हो तथा उसने अपने लिखित-कथन

56-प्रद्युत कुमार बोस बनाम माननीय मुख्य न्यायाधीश, कलकत्ता उच्च न्यायालय आ॰ई॰रि॰1956 सु॰को॰285

में आरोपों से इंकार कर दिया हो। अर्थात् आरोपित सेवक का लिखित-कथन प्राप्त होने के उपरान्त जाँच अधिकारी की नियुक्ति करके उन्हें जाँच करने का निदेश दिया जा सकता है।

यह प्रचलित सिद्धान्त है कि, "न्याय सिर्फ होना ही नहीं चाहिए, बल्कि हुआ होना प्रतीत भी होना चाहिए।" अतएव जाँच अधिकारी नियुक्त करते समय यह बात ध्यान में रखनी आवश्यक है कि वह अधिकारी निष्पक्ष हो, पूर्वग्रहित न हो। जाँच कार्य एक "न्यायिक-कल्प" कृत्य है तथा जाँच अधिकारी की स्थिति एक "जज" के समान है। नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त की माँग है कि जज को मामले में व्यक्तिगत रूप से हितबद्ध नहीं होना चाहिए, बल्कि निष्पक्ष होना चाहिए। यद्यपि अभियोजक स्वयं जज नहीं हो सकता है, परन्तु विभागीय जाँच में यह सिद्धान्त सख्ती से लागू नहीं होता है। विभागीय जाँच में अनुशासनिक प्राधिकारी की स्थिति एक अभियोजक के समान भी होती है और वह स्वयं जाँच कर सकते हैं, परन्तु उन्हें अपनी प्रतिष्ठा ऐसे अभियोजक के समान नहीं बनानी चाहिए जो किसी भी तरह अभियुक्त को दोषसिद्ध कराना अपना कर्तव्य समझता है।[57] उच्चतम न्यायालय[58] ने कहा है कि विभागीय जाँच में पक्षपात की "वास्तविक संभावना" से बचना चाहिए। वास्तविक संभावना का परीक्षण सूत्र है कि, क्या किसी प्रज्ञावान मनुष्य को, जो तथ्यों से भिज्ञ हो, पक्षपात की युक्तियुक्त आशंका हो सकती है? जब इसका उत्तर सकारात्मक हो तो पक्षपात की वास्तविक संभावना होनी मानी जाएगी। कल्पना या अनुमान पर आधारित पक्षपात की संभावना समुचित नहीं होती है। यदि परिस्थितियाँ ऐसी हों कि प्रज्ञावान मनुष्य ऐसी आशंका करने पर विवश हो जाए कि जाँच अधिकारी आरोपित सेवक से पूर्वग्रहित हैं या हो गए हैं तो जाँच किसी अन्य अधिकारी को सुपुर्द कर दी जानी चाहिए।

ऐसे अधिकारी, जिन्होंने प्रारम्भिक जाँच की हो, विभागीय जाँच करने के अयोग्य नहीं हैं, यदि वह न्यायिक ढंग से कार्य करते रहें। अतः प्रारम्भिक जाँच करने वाले अधिकारी को औपचारिक विभागीय जाँच

57-प्रफुल कुमार बोस बनाम माननीय मुख्य न्यायाधीश, कलकत्ता उच्च न्यायालय-आ॰ई॰रि॰1956 सु॰को॰285

58-एस॰पार्थसारथी बनाम आं॰प्र॰राज्य-आ॰ई॰रि॰1973 सु॰को॰270।

का जाँच अधिकारी नियुक्त किया जा सकता है। उन्हें इस कारण से पक्षपाती नहीं माना जाएगा कि उन्होंने ही प्रारम्भिक जाँच की थी।[59] जाँच अधिकारी को सिर्फ इस आधार पर पूर्वाग्रहित या पक्षपाती नहीं माना जा सकता कि वह अनुशासनिक प्राधिकारी के अधीनस्थ है या उसके उच्चाधिकारी ने आरोप-पत्र तैयार किया है।[60]

ऐसे प्राधिकारी को, जो विभागीय जाँच में साक्षी हो, जाँच अधिकारी नियुक्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि कोई व्यक्ति एक ही मामले में साक्षी एवं जज नहीं हो सकता।[61] इस संदर्भ में **उ0प्र0 राज्य बनाम मोहम्मद नूह**[62] का मामला एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है। इस मामले में विभागीय जाँच के दौरान एक महत्वपूर्ण अभियोजन साक्षी पक्षद्रोही हो गया तथा अन्य कोई साक्षी उस तथ्य का साक्ष्य देने के लिए उपलब्ध नहीं था। जाँच अधिकारियों में से एक को उस तथ्य का व्यक्तिगत ज्ञान था। उस अधिकारी ने शेष जाँच अधिकारियों के समक्ष उपस्थित होकर साक्ष्य दिया और पुनः जाँच अधिकारियों में सम्मिलित हो गया। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि एक ही व्यक्ति ये दोनों भूमिकाएं अदा नहीं कर सकता, जो व्यक्ति साक्षी है वह जाँच का कार्य नहीं कर सकता है। इस निर्णयज विधि का अनुसरण इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ पीठ ने **अनिल कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** के मामले में किया है।[63] इस मामले में अनुशासनिक प्राधिकारी ने, जो तीन आरोपों के संबंध में साक्षी भी थे, स्वयं ही जाँच करके पदच्युति आदेश पारित किया था, जिसे उच्च न्यायालय ने निरस्त कर दिया। **बी0बी0 पाण्डेय बनाम प्रधानाचार्य, के0जी0एम0सी0,**[64] के मामले में भी इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने कहा है कि यदि जाँच करने वाले अधिकारी उस मामले में स्वयं साक्षी तथा परिवादी भी हों तो उनके द्वारा की गई जाँच दूषित होगी।

यद्यपि जाँच अधिकारी नियुक्त करते समय यह सिद्धान्त ध्यान में रखना चाहिए कि कोई भी व्यक्ति अपने मामले का स्वयं निर्णायक

59-डी॰ए॰ कोरेगांवकर बनाम बम्बई राज्य-आ॰ई॰रि॰ 1958 बम्बई 1967, गोविन्द शंकर बनाम म॰प्र॰राज्य-आ॰ई॰रि॰ 1963 म॰प्र॰ एवं श्रीकान्त बनाम भारत संघ-आ॰ई॰रि॰ 1963 पटना 38 .

60-राम नरेश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य-आ॰ई॰रि॰1967 इला॰384 एवं मदनलाल बनाम भारत संघ-1975|2|सर्वि॰ला॰ रि॰ 286|दिल्ली उच्चा॰|

61-आशुतोष बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य-आ॰ई॰रि॰1956 कलकत्ता 278

62-आ॰ई॰रि॰1958 सु॰को॰86

63-रिट याचिका सं0 5349 सन् 1990,निर्णीत दिनांक 13-2-91

64-1989|58|एफ॰एल॰आर॰338

नहीं हो सकता, परन्तु इस सिद्धान्त का एक अपवाद भी है, जिसे "आवश्यकता का सिद्धान्त" कहते हैं। उच्चतम न्यायालय[65] ने इस सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए कहा है कि यदि "न्याय निर्णायक" के अलावा अन्य कोई सक्षम प्राधिकारी "न्याय-निर्णय" करने वाला न हो तो वह अपने मामले का स्वयं निर्णायक हो सकता है।

अतः जाँच अधिकारी की नियुक्ति करते समय अनुशासनिक प्राधिकारी को निम्नलिखित बातों पर विचार करना होता है,

[1] वह अधिकारी आरोपित सेवक से पूर्वाग्रहित न हो या पक्षपाती न हो, या उस मामले में हितबद्ध न हो,

[2] वह अधिकारी उस मामले का परिवादी अथवा साक्षी न हो।

[3] प्रारम्भिक जाँच करने वाले अधिकारी को "जाँच अधिकारी" नियुक्त करने में कोई दोष नहीं है।

[4] यदि जाँच कराने के लिए अन्य कोई प्राधिकारी न हो तो वह स्वयं भी जाँच करके दण्डादेश कर सकते हैं, भले ही वह परिवादी या साक्षी की स्थिति में हो।

जाँच अधिकारी का परिवर्तन

विभागीय जाँच की कार्यवाही एक ही जाँच अधिकारी द्वारा की जानी अनिवार्य नहीं है, अपितु एक से अधिक जाँच अधिकारी भी अंशतः जाँच कार्यवाही कर सकते हैं या जाँच जारी रख सकते हैं।[66] यदि विभागीय जाँच के दौरान किसी कारणवश जाँच अधिकारी का परिवर्तन किया जाता है तो उनके स्थान पर नियुक्त जाँच अधिकारी को नये सिरे से जाँच कार्यवाही शुरू नहीं करनी होगी, अपितु जिस स्तर तक कार्यवाही हो चुकी है उसके आगे की कार्यवाही की जाएगी।[67] पूर्ववर्ती जाँच अधिकारी द्वारा अभिलिखित साक्ष्य पर उनके उत्तरवर्ती जाँच अधिकारी अगली कार्यवाही कर सकते हैं। उत्तरवर्ती जाँच अधिकारी आवश्यक समझें तो किसी साक्षी को पुनः परीक्षा हेतु तलब कर सकते हैं।[68]

जनरल मैनेजर पूर्वी रेलवे बनाम ज्वाला प्रसाद सिंह[69] के मामले में जाँच समिति के तीन सदस्यों ने विभागीय जाँच आरम्भ की।

65-के0मकापाला बनाम उड़ीसा राज्य-1985[1]सु-को-रि-322
66-भारत बैंक बनाम एम-पी-पटनायक-1981[1]ल-ला रि-377[सु-को-]
67डी-आई-जी- बनाम अमलनाथन-आ-ई-रि-1966 मद्रास 203[पूर्ण न्यायपीठ]
68-भारत बैंक बनाम एम-पी-पटनायक-1981[1]लै-ला रि-377[सु-को-]
69-1970[1]सु-को-के-103 .

बाद में उनमें से एक का स्थानान्तरण हो गया तो उनके उत्तरवर्ती अधिकारी उनके स्थान पर जाँच समिति में प्रतिस्थापित हो गए तथा समिति ने जाँच पूरी करके रिपोर्ट प्रस्तुत की। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जाँच अधिकारी के परिवर्तन एवं प्रतिस्थापन से नैसर्गिक न्याय के किसी सिद्धान्त का उल्लंघन नहीं होता है तथा इस कारण मात्र से जाँच दूषित नहीं होगी।

अतः, यदि विभागीय जाँच के दौरान एक जाँच अधिकारी ने कुछ साक्ष्य अभिलिखित किया हो तथा शेष सुनवाई दूसरे जाँच अधिकारी ने करके जाँच रिपोर्ट दी हो तो, मात्र इसी आधार पर जाँच दूषित नहीं होगी।

प्रस्तुति अधिकारी तथा बचाव-सहायक

अनुशासनिक प्राधिकारी, जाँच के दौरान विभाग का पक्ष कथन प्रस्तुत करने के लिए, किसी सरकारी सेवक या विधि व्यवसायी को प्रस्तुति अधिकारी [प्रेजेन्टिंग आफीसर] नियुक्त कर सकते हैं। यदि वह स्वयं जाँच कर रहे हों तो आरोप-पत्र विरचित करने के साथ ही प्रस्तुति अधिकारी नियुक्त कर देना चाहिए, परन्तु यदि उन्होंने किसी अन्य प्राधिकारी को जाँच अधिकारी नियुक्त किया हो तो ऐसी नियुक्ति करते समय ही प्रस्तुति अधिकारी भी नियुक्त कर देना चाहिए।

आरोपित सेवक अपना पक्ष-कथन प्रस्तुत करने के लिए किसी अन्य सरकारी सेवक की सहायता ले सकता है, जिसे "बचाव-सहायक" कहा जाता है, परन्तु वह किसी विधि-व्यवसायी को बचाव सहायक नहीं बना सकता। इस नियम के दो अपवाद हैं,

[1] यदि किसी विधि व्यवसायी को प्रस्तुति अधिकारी नियुक्त किया गया है तो आरोपित सेवक भी किसी विधि-व्यवसायी को बचाव-सहायक बना सकता है, या

[2] यदि उस मामले की परिस्थितियों पर विचार करके अनुशासनिक प्राधिकारी ऐसी अनुमति दे देवें तो वह किसी विधि-व्यवसायी को बचाव सहायक बना सकता है।

उच्चतम न्यायालय ने, मगत राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य[70] के मामले में कहा है कि, अनुशासनिक प्राधिकारी का, प्रस्तुति अधिकारी नियुक्त करते समय, दायित्व है कि उस नियुक्ति की सूचना जाँच कार्य शुरू करने से पूर्व आरोपित सेवक को देवें तथा उसे उसके उस अधिकार की भी सूचना देवें कि वह किसी अन्य सरकारी सेवक की सहायता ले सकता है। यदि आरोपित सेवक निम्नतर सेवा का सदस्य हो तो जाँच अधिकारी का दायित्व है कि, उसे सूचित करें कि वह नियमों के अधीन अपने विभाग के किसी अन्य सरकारी सेवक की सहायता प्राप्त करने का अधिकारी है। यदि इस सूचना के उपरान्त भी आरोपित सेवक किसी अन्य सेवक की सहायता नहीं लेता तो अगली कार्यवाही की जाएगी। परन्तु यदि उक्त अधिकार की सूचना उसे नहीं दी जाती है तथा अनुशासनिक प्राधिकारी का प्रतिनिधित्व प्रस्तुति अधिकारी द्वारा किया जाता है तो जाँच दूषित हो जाएगी, जब तक कि यह नहीं दिखाया जाता कि आरोपित सेवक को इस कारण से कोई क्षति नहीं हुई है।

बोर्ड आफ ट्रस्टीज, बम्बई पोर्ट बनाम दिलीप कुमार राघवेन्द्र नाथ नाडकर्णी[71] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि विधि-क्षेत्र में प्रशिक्षित व्यक्ति को विभागीय जाँच में प्रस्तुति अधिकारी नियुक्त किया गया हो तो आरोपित सेवक को विधि-व्यवसायी की सहायता लेने की अनुमति दे देनी चाहिए। उसका अनुरोध अस्वीकार करने से यह माना जाएगा कि उसे अपने बचाव का युक्तियुक्त अवसर नहीं दिया गया, जो नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन है।

सामान्यतया, नैसर्गिक न्याय के नियमों की यह अपेक्षा नहीं है कि विभागीय जाँच में आरोपित सेवक को किसी अधिवक्ता की सहायता लेने का अधिकार है। लेकिन विशिष्ट परिस्थितियों में नैसर्गिक न्याय के नियमों से यह अपेक्षा हो सकती है कि आरोपित सेवक को, यदि वह चाहे, विधि व्यवसायी की सहायता मिलनी चाहिए। उदाहरणस्वरूप,

---

70-1983|2|स-ला ज-323|सु-को-|
71-1983|1|स-ला रि-464|सु-को-|

यदि जाँच की विषयवस्तु तकनीकी हो, अथवा साक्ष्य बृहद्‌मात्रा में हो या अभियोजन-पक्ष हस्तलेख विशेषज्ञ को साक्ष्य में पेश करने वाला हो या आरोप पेचीदा हो, या कोई कानूनी प्रश्न अंतर्ग्रस्त हो, जो किसी सामान्य शिक्षित व्यक्ति को समझ पाना आसान न हो, तो आरोपित सेवक का विधि-व्यवसायी की सहायता लेने का अनुरोध स्वीकार कर लेना चाहिए।[72]

सी०एल० सुब्रमणियम् बनाम कस्टम कलेक्टर, कोचीन[73] के मामले में जाँच अधिकारी ने आरोपित सेवक के इस अनुरोध को अस्वीकार कर दिया कि उसे विधि व्यवसायी से बचाव कराने की अनुमति दे दी जाए। जबकि एक प्रशिक्षित लोक अभियोजक को प्रस्तुति अधिकारी नियुक्त किया गया था। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि ऐसी परिस्थिति में आरोपित सेवक को विधि व्यवसायी रखने की अनुमति न देने से नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन हुआ तथा जाँच दूषित है।

कृष्ण चन्द्र बनाम भारत संघ[74] के मामले में आयकर अधिकारी के विरुद्ध इस आरोप पर विभागीय जाँच की जा रही थी कि उन्होंने कुछ करदाताओं के "कर-निर्धारण" में अनियमितता की थी। विभागीय जाँच के दौरान उन्होंने विधि-व्यवसायी की सहायता लेने की अनुमति मांगी, जो नहीं दी गई। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि आरोपित सेवक के विरुद्ध जो आरोप लगाए गए थे वे "कर-निर्धारण" अभिलेखों पर आधारित थे, जिसका उचित स्पष्टीकरण आरोपित सेवक ही दे सकता था। किसी ऐसे लेखा-जोखा के संबंध में साक्ष्य नहीं लिया जाना था जिसके लिए विधि-व्यवसायी की सहायता की आवश्यकता रही हो। इस मामले में कोई विधिक जटिलता भी नहीं थी। इन परिस्थितियों में, आरोपित सेवक को विधि-व्यवसायी की सहायता लेने की अनुमति न देने से यह नहीं कहा जा सकता कि उसे बचाव का युक्तियुक्त अवसर नहीं दिया गया।

72-रामूबाबू गायकवाड़ बनाम महाराष्ट्र राज्य-1974 | 1 | एल-लाज रि-568 | बम्बई उच्च न्यायालय | | खण्ड न्यायपीठ |
73-1972 | 3 | एस-सी-आर-485
74-आ-ई-रि-1974 सु-को-1589

सारांश यह है कि आरोपित सेवक को जाँच के आरम्भ में ही सूचित कर देना चाहिए कि उसे नियमों के अधीन अपना बचाव पक्ष प्रस्तुत करने हेतु किसी अन्य सरकारी सेवक की सहायता लेने का अधिकार प्राप्त है। उचित होगा यदि यह तथ्य आरोप-पत्र के अंत में लिख दिया जाए। विभागीय जाँच में, सामान्यतया, किसी विधि-व्यवसायी की सहायता नहीं ली जा सकती, परन्तु यदि अभियोजन पक्ष विधि-व्यवसायी या विधि-क्षेत्र में प्रशिक्षित व्यक्ति की सहायता लेता है तो आरोपित सेवक को भी विधि-व्यवसायी की सहायता लेने की अनुमति दी जाएगी। पुनः, आरोप की जटिलता आदि अन्य परिस्थितियों पर विचार करके, यदि आरोपित सेवक को विधि-व्यवसायी रखने की अनुमति देना उचित प्रतीत हो तो, उसे विधि-व्यवसायी की सहायता लेने की अनुमति दे दी जानी चाहिए।

साक्ष्य

विभागीय जाँच न्यायिक-कल्प कार्यवाही है, जिसमें "ग्राह्य-साक्ष्य" पर ही आरोप सिद्ध होने का निष्कर्ष, विधानतः, दिया जा सकता है। यद्यपि साक्ष्य अधिनियम के तकनीकी नियम पूर्णरूपेण जाँच में लागू नहीं होते, परन्तु अग्राह्य साक्ष्य पर आधारित निष्कर्ष दूषित होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि जाँच अधिकारी का निष्कर्ष "साक्ष्य" पर ही आधारित होना चाहिए।[75]

"साक्ष्य" दो किस्म के हो सकते हैं,

(1) मौखिक साक्ष्य, तथा

(2) दस्तावेजी साक्ष्य।

जाँच अधिकारी के समक्ष साक्षियों द्वारा जो बयान दिए जाते हैं उसे "मौखिक साक्ष्य" कहते हैं। सामान्यतया, ये बयान शपथ पर लिए जाते हैं, जिससे कि उसकी निश्चितता बनी रहे एवं मिथ्या साक्ष्य देने पर "शपथ-भंग" के अपराध का अभियोग चलाया जा सके।

75-नन्द किशोर बनाम बिहार राज्य-1978 स०ला० क०591 (सु०को०), सेन्ट्रल बैंक आफ इण्डिया बनाम प्रकाश चन्द्र जैन-ए०आई०आर०1969 सु०को०983 तथा ए०बी० कृष्णामूर्ति बनाम तमिलनाडु राज्य-1985 (1) स०ला० क०117 (मद्रास उच्च न्यायालय)

जाँच में, जाँच-अधिकारी के निरीक्षण हेतु जो दस्तावेज पेश किए जाते हैं, उन्हें "दस्तावेजी साक्ष्य" कहते हैं। प्राइवेट किस्म के दस्तावेजों को उसके लेखक या साक्षी से सिद्ध कराना आवश्यक होता है परन्तु पब्लिक दस्तावेजों, जिनकी प्रमाणित प्रतिलिपि नियमानुसार जारी की जा सकती हैं, को सिद्ध कराने की आवश्यकता नहीं होती, उनकी प्रमाणित प्रतिलिपि साक्ष्य में ग्राह्य होती है।

विभागीय जाँच में दो पक्ष होते हैं- एक, अनुशासनिक प्राधिकारी या विभाग का पक्ष, जिसे सामान्य बोलचाल में "अभियोजन-पक्ष" कहा जाता है, तथा दूसरा, आरोपित सेवक का पक्ष, जिसे "बचाव पक्ष" कहा जाता है। पहले अभियोजन-पक्ष का साक्ष्य लिया जाता है। अभियोजन-पक्ष का साक्ष्य लेने से पूर्व आरोपित सेवक का साक्ष्य या बचाव पक्ष के साक्षियों का बयान अभिलिखित करना सर्वथा अनुचित है, इससे सेवक को "बचाव में क्षति" हो सकती है।[76]

जाँच अधिकारी पहले अभियोजन-पक्ष के साक्षीगण को, जो आरोप-पत्र में नामित हों, साक्ष्य देने के लिए तलब करेंगे। तदुपरान्त बचाव पक्ष के साक्षियों को, आरोपित सेवक के अनुरोध पर, तलब करेंगे। सामान्यतया, आरोप-पत्र में नामित साक्षियों एवं दस्तावेजी साक्ष्यों को ही साक्ष्य में पेश किया जा सकता है। परन्तु, यदि आवश्यक हो तो ऐसा साक्ष्य भी पेश किया जा सकता है जिसका उल्लेख आरोप-पत्र में न हो, प्रतिबन्ध यह है कि ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत करने से पूर्व इसकी सूचना आरोपित सेवक को दी जाएगी, जिससे कि वह सेवक, साक्षी से प्रभावी प्रतिपरीक्षा करने के लिए स्वयं को तैयार कर सके तथा दस्तावेजी साक्ष्य का खण्डन कर सके। यदि आरोप-पत्र में नामित साक्षियों के अतिरिक्त किसी साक्षी से साक्ष्य दिलाया जाता है तथा आरोपित सेवक उस साक्षी से प्रतिपरीक्षा कर लेता है तो ऐसी दशा में, यदि "बचाव में क्षति" होने का प्रमाण न हो तो, जाँच दूषित नहीं होगी।[77]

76-डी०बी० पठान बनाम भारत संघ-1991[1]स०ला० क-356[केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण,बंगलौर]।

77-सुखबीर सिंह बनाम पुलिस उपायुक्त,नई दिल्ली-1984[2]स०ला० नि-149 [दिल्ली उ०न्या०],तथा आर०के० तिवारी बनाम भारत संघ-1983[2] स०ला० नि-770[बम्बई उच्च न्यायालय]

यदि आरोप-पत्र में किसी दस्तावेजी साक्ष्य का उल्लेख न हो तथा जाँच के दौरान अभियोजन-पक्ष वह दस्तावेज साक्ष्य में प्रस्तुत करना चाहे तो उसकी प्रतिलिपि आरोपित सेवक को दी जाएगी तथा यदि वह चाहे तो दस्तावेज का निरीक्षण करने की अनुमति भी उसे दी जाएगी, अन्यथा यह माना जाएगा कि उसे बचाव का युक्तियुक्त अवसर नहीं दिया गया। अभियोजन पक्ष का साक्ष्य लेने के उपरान्त बचाव पक्ष का साक्ष्य लिया जाएगा। यदि आरोपित सेवक अतिरिक्त साक्ष्य देना चाहे तो उसे भी इसकी पूर्व सूचना अभियोजन-पक्ष को देनी होगी। जाँच अधिकारी साक्षियों को शपथ दिलाकर उनका बयान ले सकते हैं।[78]

साक्षी तलब करना

विभागीय जाँच में साक्षियों को तलब करने का दायित्व जाँच अधिकारी का है। यदि किसी मामले में साक्षियों को तलब नहीं किया गया हो तथा आरोपित सेवक को प्रतिपरीक्षा करने का अवसर न दिया गया हो तो निश्चित रूप से उसे बचाव करने में क्षति होगी।[79] जाँच अधिकारी अभियोजन-पक्ष के साक्षियों को समन भेज कर, नियत तिथि को उपस्थित होकर, साक्ष्य देने के लिए तलब करेंगे तथा बचाव पक्ष के साक्षियों को, आरोपित सेवक के अनुरोध पर, तलब करेंगे। ये साक्षी नियमानुसार यात्रा-भत्ता पाने के अधिकारी होंगे।[80] साक्षियों को तलब करने के लिए "समन" का कोई प्रारूप नियमों में नियत नहीं है, परन्तु सुविधा के लिए समन का एक प्रारूप परिशिष्ट-तीन में दिया जा रहा है।

केन्द्र या संघीय सेवा के सरकारी सेवकों के विरुद्ध विभागीय जाँच में साक्षियों की उपस्थिति, एवं दस्तावेज को पेश करने, के लिए बाध्य करने के उपबंध विभागीय जाँच [साक्षियों को हाजिर कराना तथा दस्तावेज पेश कराना] अधिनियम, 1972 में हैं। इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन प्राधिकृत जाँच अधिकारी को विभागीय जाँच के दौरान किसी साक्षी को समन भेजने, हाजिर कराने तथा शपथ दिलाकर

78-उ0प्र0 का शासनादेश सं0 405/II-बी-163-50,दिनांकित 10-3-1959

79-जगदीश प्रसाद सिंह बनाम उ0प्र0 राज्य-1990[61]एफ-एल-आर-716 [इलाहाबाद उच्च न्यायालय]।

80-वित्तीय हस्तपुस्तिका खण्ड-III का नियम 20-F

उसका बयान लेने की, एवं किसी दस्तावेज या अन्य चीज को प्रकट एवं पेश कराने तथा किसी न्यायालय या कार्यालय से कोई लोक दस्तावेज मंगाने की, वे सभी शक्तियाँ प्राप्त होती हैं जो सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन किसी सिविल न्यायालय में निहित होती हैं। प्राधिकृत जाँच अधिकारी द्वारा जारी की गई प्रत्येक आदेशिका/समन आदि उस जिला जज के माध्यम से तामील एवं निष्पादित किए जाएंगे जिनकी स्थानीय अधिकारिता में वह साक्षी रहता हो। उस समन या आदेशिका का उल्लंघन करने के लिए विधिक कार्रवाई करने के प्रयोजन हेतु, वह समन या आदेशिका जिला जज द्वारा जारी की हुई मानी जाएगी।

यदि केन्द्र सरकार, विभागीय जाँच के प्रयोजनार्थ किसी व्यक्ति को साक्षी के रूप में समन करना अथवा किसी व्यक्ति से दस्तावेज तलब करना आवश्यक समझे तो राजपत्र में अधिसूचना द्वारा जाँच अधिकारी को, उक्त शक्तियों का प्रयोग करने के लिए, प्राधिकृत कर सकता है। ऐसे जाँच अधिकारी को "प्राधिकृत जाँच अधिकारी" कहते हैं।

उत्तर प्रदेश सरकारी सेवकों के विरूद्ध की जाने वाली विभागीय जाँच में साक्षियों की हाजिरी एवं दस्तावेजों को पेश करने के लिए बाध्य करने के उपबंध, उ0प्र0 विभागीय जाँच [साक्षियों को हाजिर कराना तथा दस्तावेज पेश कराना] अधिनियम, 1976 में हैं। उ0प्र0 राज्य के कानून या नियमावली के अधीन विभागीय जाँच करने वाले जाँच अधिकारी को इस अधिनियम में वही शक्तियाँ दी गई हैं, जिनकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। अतः उत्तर प्रदेश के सरकारी सेवकों के विरूद्ध विभागीय जाँच करने वाले जाँच अधिकारी को, साक्षियों को हाजिर कराने, शपथ पर उनका बयान लिखने, एवं दस्तावेजों को पेश कराने आदि के संबंध में, सिविल न्यायालय के समान शक्तियाँ प्राप्त होती हैं।

अतः जाँच अधिकारी, सिविल न्यायालय के समान ही, ऐसे व्यक्ति को विधानतः दंडित कर सकते हैं जो उनके द्वारा जारी समन

का उल्लंघन करे। इस विषय में दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 345 एवं 346 के उपबंध लागू होते हैं जिसके अधीन कार्यवाई हेतु जाँच अधिकारी को सिविल न्यायालय माना जाता है।[81] दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 345 एवं 346 के उपबंध इस प्रकार हैं,

द०प्र०सं० की धारा 345

"[1] जब कोई ऐसा अपराध, जैसा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 175, धारा 178, धारा 180 या धारा 228 मे वर्णित है, किसी सिविल, दण्ड या राजस्व न्यायालय की दृष्टिगोचरता या उपस्थिति मे किया जाता है तब न्यायालय अभियुक्त को अभिरक्षा मे निरुद्ध करा सकता है और उसी दिन न्यायालय के उठने के पूर्व किसी समय, अपराध का संज्ञान कर सकता है और अपराधी को ऐसा कारण दर्शित करने का, कि क्यो न उसे इस धारा के अधीन दंडित किया जाए, उचित अवसर देने के पश्चात् अपराधी को दो सौ रुपए से अनधिक जुर्माने का और जुर्माना देने मे व्यतिक्रम होने पर एक मास तक की अवधि के लिए, जब तक कि ऐसा जुर्माना उससे पूर्वतर न दे दिया जाए, सादा कारावास का दण्डादेश दे सकता है।

[2] ऐसे प्रत्येक मामले मे न्यायालय वे तथ्य जिनसे अपराध बनता है, अपराधी द्वारा किए गए कथन के [यदि कोई हो] सहित, तथा निष्कर्ष और दण्डादेश भी अभिलिखित करेगा।

[3] यदि अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 228 के अधीन है तो अभिलेख मे यह दर्शित होगा कि जिस न्यायालय के कार्य मे विघ्न डाला गया था या जिसका अपमान किया गया था, उसकी बैठक किस प्रकार की न्यायिक कार्यवाही के संबंध मे और उसके किस प्रक्रम पर हो रही थी और किस प्रकार का विघ्न डाला गया या अपमान किया गया था।"

द०प्र०सं० की धारा 346

"[1] यदि किसी मामले मे न्यायालय का यह विचार है कि धारा 345 मे निर्दिष्ट और उसकी दृष्टिगोचरता या उपस्थिति मे

81-धारा-5, विभागीय जाँच [साक्षियो को पेश कराना तथा दस्तावेज पेश कराना] अधिनियम,1972 -

किए गए अपराधों में से किसी के लिए अभियुक्त व्यक्ति जुर्माना देने में व्यतिक्रम करने से अन्यथा कारावासित किया जाना चाहिए या उस पर दो सौ रुपए से अधिक जुर्माना अधिरोपित किया जाना चाहिए या किसी अन्य कारण से उस न्यायालय की यह राय है कि मामला धारा 345 के अधीन नहीं निपटाया जाना चाहिए तो वह न्यायालय उन तथ्यों को जिनसे अपराध बनता है और अभियुक्त के कथन को इसमें इसके पूर्व उपबंधित प्रकार से अभिलिखित करने के पश्चात्, मामला उसका विचारण करने की अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट को भेज सकेगा और ऐसे मजिस्ट्रेट के समक्ष ऐसे व्यक्ति की हाजिरी के लिए प्रतिभूति दी जाने की अपेक्षा कर सकेगा, अथवा यदि पर्याप्त प्रतिभूति न दी जाए तो ऐसे व्यक्ति को अभिरक्षा में ऐसे मजिस्ट्रेट के पास भेजेगा।

[2] वह मजिस्ट्रेट, जिसे कोई मामला इस धारा के अधीन भेजा जाता है, जहाँ तक हो सके इस प्रकार कार्यवाही करने के लिए अग्रसर होगा मानो वह मामला पुलिस रिपोर्ट पर संस्थित है।"

द0प्र0सं0 की धारा 345 में भारतीय दण्ड संहिता की जिन पूर्वोक्त धाराओं का उल्लेख है, उनके उपबन्धों की जानकारी होनी आवश्यक है।

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 175 में कहा गया है कि ऐसे लोक सेवक जो किसी दस्तावेज को पेश करने के लिए वैध रूप से आबद्ध होते हुए भी पेश न करे तो उसे एक मास तक का कारावास या पाँच सौ रुपए तक का जुर्माना या दोनों से दण्डित किया जाएगा। धारा 178 में कहा गया है कि लोक सेवक, जो किसी व्यक्ति को शपथ दिलाने के लिए वैध रूप से सक्षम हो, के समक्ष कोई व्यक्ति शपथ लेने से इंकार करे तो उसे छः मास तक का कारावास या एक हजार रुपए तक का जुर्माना या दोनों से दण्डित किया जाएगा। धारा 179

में कहा गया है कि ऐसा व्यक्ति, जो किसी लोक सेवक के समक्ष किसी विषय पर सत्य कथन करने के लिए आबद्ध होते हुए भी लोक सेवक द्वारा पूछे गए किसी प्रश्न का उत्तर देने से इंकार करे तो उसे छः मास तक का कारावास या एक हजार रुपए तक का जुर्माना या दोनों से दण्डित किया जाएगा। धारा 180 में कहा गया है कि ऐसा व्यक्ति जो अपने द्वारा किए गए किसी कथन पर हस्ताक्षर करने से इंकार करे, जबकि वैध रूप से सक्षम लोक सेवक ने उससे कथन पर हस्ताक्षर करने की अपेक्षा की हो, तो उसे तीन मास तक का कारावास या पाँच सौ रुपए तक का जुर्माना या दोनों से दण्डित किया जाएगा। तथा धारा 228 में उपबंध है कि जो व्यक्ति किसी लोक सेवक का, उस समय जब कि ऐसा लोक सेवक न्यायिक कार्यवाही के किसी प्रक्रम पर बैठा हुआ हो, साशय कोई अपमान करेगा या उसके कार्य में कोई विघ्न डालेगा, वह सादा कारावास, जिसकी अवधि छः मास तक की हो सकेगी या जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक हो सकेगा, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा।

अतः विभागीय जाँच के दौरान जाँच अधिकारी की दृष्टिगोचरता या उपस्थिति में भारतीय दण्ड संहिता की पूर्वोक्त धाराओं में वर्णित कोई अपराध किया जाता है तो वह दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 345 के अधीन कार्यवाई करके ऐसा अपराध करने वाले व्यक्ति पर अधिकतम दो सौ रुपए का जुर्माना अधिरोपित कर सकते हैं, अथवा धारा 346 के अधीन, उन तथ्यों को, जिनसे अपराध बनता है, अभिलिखित करके वह मामला सक्षम मजिस्ट्रेट को भेज सकते हैं।

जाँच अधिकारी का, जाँच कार्यवाहियों पर, पूर्ण नियंत्रण होता है। साक्षियों को तलब करते समय जाँच अधिकारी को यंत्रवत कार्य नहीं करना चाहिए, अपितु आरोप के संदर्भ में उनके साक्ष्य की सुसंगतता पर विचार करके साक्षियों को तलब करना चाहिए। साक्षी को तलब करने से, मनमाने ढंग से, इंकार नहीं करना चाहिए।

यदि आरोपित सेवक अपने पक्ष कथन के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करना चाहे तो उसे, इसके लिए अवसर देना आवश्यक है। उसके द्वारा प्रस्तुत सुसंगत साक्ष्यों को अभिलिखित करना जाँच अधिकारी का दायित्व है। यदि आरोपित सेवक किसी ऐसे साक्षी को बुलाना चाहता है, जिसका साक्ष्य जाँच अधिकारी को असंगत प्रतीत हो तो वह उसे बुलाने या उसका साक्ष्य लिखने से इंकार कर सकते हैं। ऐसा आदेश करने में उन्हें समुचित कारण अभिलिखित करना होगा।[82] कभी-कभी आरोपित सेवक उच्च स्तर के अधिकारियों को, बचाव साक्षियों की सूची में नामित करके, तलब करने का अनुरोध करता है। ऐसे मामले में जाँच अधिकारी को अपने विवेक का प्रयोग करते हुए उस अनुरोध को स्वीकार या अस्वीकार करना चाहिए। यदि अधिकारियों का साक्ष्य सुसंगत हो तभी उन्हें तलब करना चाहिए, अन्यथा नहीं।[83] जाँच अधिकारी ऐसे साक्षियों को, जिन्हें जाँच में देरी कराने के लिए नामित किया गया हो तथा जो आरोप से संबंधित न हों, समन भेजने से इंकार कर सकते हैं तथा यह इंकारी आरोपित सेवक को युक्तियुक्त अवसर देने से इंकार करना नहीं मानी जाएगी।[84]

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सी0एस0 शर्मा[85] के मामले में आरोपित सेवक ने अपने तीन गवाहों की सूची, बचाव साक्ष्य में पेश करने हेतु, प्रस्तुत की थी। परन्तु जाँच अधिकारी ने उन्हें तलब नहीं किया। उसने पुनः अनुरोध किया परन्तु जाँच अधिकारी ने उसका अनुरोध मनमाने ढंग से अस्वीकार कर दिया तथा उसे उन साक्षियों को पेश करने का अवसर नहीं दिया, तो उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जाँच अधिकारी ने नैसर्गिक न्याय के मूल सिद्धान्तों का उल्लंघन किया जिससे जाँच दूषित हो गई।

मुमताज हुसैन अंसारी बनाम उ0प्र0 राज्य[86] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने उत्तर प्रदेश शासन के शासनादेश सं0 4197

---

82. बम्बई राज्य बनाम नब्लललतीफ खान-आ॰ई॰रि॰1965 सु॰को॰269
83एस॰आर॰एस॰चौधरी बनाम भारत संघ-आ॰ई॰रि॰1956 कलकत्ता 662
84-आर0के0 तिवारी बनाम भारत संघ-1983[2]स॰ला रि॰770 [बम्बई उ0न्या0]
85-आ॰ई॰रि॰1968 सु॰को॰158
86-1984[2]स॰ला रि॰1[सु॰को॰]

आर/ 111-ए-500(146)/68 का उल्लेख किया जिसमें कहा गया है कि विभागीय जाँच में बचाव साक्षियों को पेश करने के लिए यात्रा-भत्ता देने का दायित्व शासन का है। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि यदि ऐसा कोई नियम या प्रशासनिक आदेश हो तथा जाँच अधिकारी बचाव साक्षियों को समन भेजने से इंकार कर देवें, क्योंकि आरोपित सेवक ने इस शर्त का पालन नहीं किया कि वह पहले उन साक्षियों का यात्रा-भत्ता जमा करे, तो यह नैसर्गिक न्याय के नियमों का उल्लंघन होगा।

साक्ष्य लिखते समय सावधानियाँ

जाँच अधिकारी का दायित्व है कि विभागीय जाँच के दौरान प्रस्तुत किया गया मौखिक साक्ष्य अभिलिखित करें, परन्तु साक्ष्य लेखन की प्रक्रिया पर उनका पूर्ण नियंत्रण होना चाहिए। जाँच अधिकारी अपने विवेकानुसार आरोपित सेवक की प्रतिपरीक्षा करने के अधिकार अथवा बचाव साक्षी पेश करने के अधिकार का विधानतः निरीक्षण एवं नियंत्रण कर सकते हैं। उन्हें इस ढंग से जाँच करनी चाहिए जिससे कि उसकी कार्यवाही अनावश्यक रूप से एवं जानबूझकर बढ़ाई न जा सके या उसमें अनावश्यक विलम्ब न किया जा सके। यदि आरोपित सेवक बचाव साक्षी पेश करना चाहे तो जाँच अधिकारी उसे, मनमाने ढंग से, इंकार नहीं कर सकते। यदि साक्षियों का साक्ष्य असंगत हो, तब कारण अभिलिखित करते हुए उसे पेश करने की अनुमति देने से इंकार कर सकते हैं।[87]

जिस पक्ष का साक्षी है वह पक्ष उस साक्षी को पेश करके परीक्षित करेगा, जिसे मुख्य परीक्षा कहते हैं। इसके उपरान्त विपक्षी को उस साक्षी से प्रश्न पूछने का अवसर दिया जाएगा, जिसे प्रतिपरीक्षा कहते हैं। जिस पक्ष ने उस साक्षी को परीक्षित किया हो वह यदि चाहे तो जाँच अधिकारी की अनुमति से पुनः उस साक्षी को परीक्षित कर सकता है, जिसे "पुनः परीक्षा" कहते हैं। पुनः परीक्षा करने के उपरान्त विपक्षी को प्रतिपरीक्षा करने का पुनः अवसर दिया जाएगा।

87-बम्बई राज्य बनाम नुरूललतीफ खान-आ॰इ॰रि॰1966 सु॰को॰269

मुख्य परीक्षा में साक्षी से "सूचक प्रश्न" नहीं किए जा सकते हैं।[88] प्रतिपरीक्षा में साक्षी से सूचक प्रश्न पूछे जा सकते हैं। "सूचक प्रश्न" का तात्पर्य ऐसे प्रश्न से है जिसमें उत्तर सुझाया गया हो अथवा जिसका उत्तर सिर्फ "हाँ" या "नहीं" में हो। उदाहरणार्थ, यदि "अ" के विरुद्ध आरोप हो कि उसने कार्यालय में "ब" को थप्पड़-घूँसों से मार कर चोटें पहुँचाई, तो अभियोजन साक्षी से मुख्य परीक्षा में यह प्रश्न नहीं पूछा जा सकता कि, क्या "अ" ने थप्पड़-घूँसों से "ब" को कार्यालय में मारा था? क्योंकि इसमें प्रश्न का उत्तर सुझाया गया है तथा यह एक सूचक प्रश्न है। इस तथ्य के विषय में मुख्य परीक्षा में पूछा जा सकता है कि, "ब" को कार्यालय में किसने मारा था?

साक्षी का साक्ष्य अभिलिखित करने के उपरान्त उसे पढ़ कर सुना देना चाहिए अथवा उसे स्वयं पढ़ने का अवसर देना चाहिए तथा प्रत्येक पृष्ठ पर साक्षी का हस्ताक्षर करा कर जाँच अधिकारी को स्वयं भी हस्ताक्षर करना चाहिए।

प्रत्येक पक्ष को ऐसे सभी सुसंगत साक्ष्यों, जिनका वह सहारा लेता है, को पेश करने का अवसर दिया जाएगा तथा आरोपित सेवक की उपस्थिति में साक्षियों का बयान लिया जाएगा।[89] **श्याम लाल रोशन लाल बनाम पंजाब राज्य**[90] के मामले में अभियोजन साक्षियों का मुख्य परीक्षा का बयान अभिलिखित करते समय जाँच अधिकारी ने आरोपित सेवक को कमरे से बाहर खड़े रहने का निदेश दिया था तथा उसकी अनुपस्थिति में साक्षियों का मुख्य परीक्षा का बयान अभिलिखित किया तो यह माना गया कि भले ही साक्षियों से प्रतिपरीक्षा करने की अनुमति आरोपित सेवक को दी गई हो, इस ढंग से साक्ष्य अभिलिखित करना या जाँच करना नैसर्गिक न्याय के नियमों के अनुरूप नहीं है, क्योंकि प्रभावी प्रतिपरीक्षा के लिए मुख्य परीक्षा का बयान आरोपित सेवक की उपस्थिति में लिया जाना आवश्यक है।

जिस दिन आरोपित सेवक को अभियोग का विवरण दिया गया हो उसी दिन उसे अभियोजन साक्षियों से प्रतिपरीक्षा करने के लिए कहा

88-टी-वी-पठान बनाम भारत संघ-1991[1]स-ला ज-356 केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण,बैंगलोर।
89-टी-एन-वर्मा का मामला-आ-ई-रि-1957 मु-को-882
90-आ-ई-रि-1962 पंजाब 490

गया हो, लेकिन उसने प्रतिपरीक्षा की तैयारी के लिए एक दिन का अवसर मांगा हो, तथा जाँच अधिकारी ने उसका आवेदन खारिज कर दिया हो, तो यही माना जाएगा कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन किया गया।[91]

आंध्र प्रदेश राज्य बनाम मोहम्मद सरवर,[92] के मामले में उच्च न्यायालय ने पाया कि जिस दिन अभियोजन साक्षियों का मुख्य परीक्षा का बयान लिया गया, उस दिन आरोपित सेवक ने आवेदन देकर कहा कि वह बुखार से पीड़ित होने के कारण प्रतिपरीक्षा नहीं कर सकता, उसे प्रतिपरीक्षा करने के लिए कुछ दिनों का समय दिया जाए। जाँच अधिकारी ने आवेदन खारिज कर दिया। बाद में उपस्थित होकर उसने उन साक्षियों को प्रतिपरीक्षा के लिए पुनः तलब करने का आवेदन किया, परन्तु जाँच अधिकारी ने उसे भी खारिज कर दिया, तो उच्च न्यायालय ने कहा कि आरोपित सेवक को प्रतिपरीक्षा करने का युक्तियुक्त अवसर देने से इंकार किया गया, अतः जाँच दूषित है।

पंजाब राज्य बनाम दीवान चुनी लाल[93] के मामले में आरोपित सेवक ने उन पाँच अधिकारियों को साक्ष्य में तलब करने का अनुरोध जाँच अधिकारी से किया था, जिन्होंने आरोपित सेवक के विरुद्ध रिपोर्ट दी थी। वे सभी अधिकारी जाँच में परीक्षित करने के लिए उपलब्ध थे, लेकिन जाँच अधिकारी ने उन्हें तलब नहीं किया। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि ऐसे साक्षियों को, जिन्होंने आरोपित सेवक के चरित्र के विरुद्ध सामान्य टिप्पणियाँ की थी, विभागीय जाँच में परीक्षित कराने से इंकार करना, जबकि वे साक्षी जाँच में परीक्षित करने के लिए उपलब्ध थे, आरोपित सेवक को युक्तियुक्त अवसर देने से इंकार करने के समान है।

प्रारम्भिक जाँच के दौरान आरोपित सेवक की अनुपस्थिति में जिन साक्षियों का बयान लिया गया था, उनका इस्तेमाल विभागीय

91-अकल सेवक सिंह बनाम पंजाब राज्य-1970 स-ला रि-235|पंजाब उ०न्या०|
92-1971|1|स-ला रि-507|आ-प्र-उच्च न्यायालय|
93-आ-ई-रि-1970 सु-को-2086

जाँच में किया जाना हो तो उन लिखित बयानों को अभिलेख पर उपलब्ध कराने मात्र से उनका इस्तेमाल नहीं किया जा सकेगा, बल्कि उन साक्षियों को विभागीय जाँच में साक्ष्य देने हेतु पेश करना होगा तथा उन्हें परीक्षित करके आरोपित सेवक को उनसे प्रतिपरीक्षा करने का अवसर दिया जाएगा।[94]

प्रारम्भिक जाँच में जिन साक्षियों का बयान अभिलिखित किया गया था, उनमें से किसी को विभागीय जाँच में पेश करके उसका साक्ष्य अभिलिखित किया जाए तो आरोपित सेवक को उस साक्षी से, उसके पूर्व के बयान का संदर्भ दिलाते हुए, प्रतिपरीक्षा करने की अनुमति दी जाएगी। साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 में पूर्व के बयान का संदर्भ देते हुए साक्षी से प्रतिपरीक्षा करने का उपबंध है। यद्यपि साक्ष्य अधिनियम के सभी उपबंध विभागीय जाँच में लागू नहीं होते, परन्तु धारा 145 के उपबंधों के अनुरूप किसी साक्षी के बयान की सत्यता का परीक्षण करने का यह ढंग प्रचलित है। प्रतिपरीक्षा करने का यह ढंग नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त पर आधारित है कि आरोपित सेवक को अपने बचाव के लिए प्रभावी प्रतिपरीक्षा करने का युक्तियुक्त अवसर दिया जाएगा।[95] यदि प्रारम्भिक जाँच के दौरान लिए गए बयानों की प्रतिलिपियाँ आरोपित सेवक को दे दी गई हों तथा उन बयानों के संदर्भ में साक्षी से प्रतिपरीक्षा करने का अवसर भी दे दिया गया हो तो विभागीय जाँच में उन बयानों का इस्तेमाल किया जा सकता है।[96]

विभागीय जाँच के दौरान किसी साक्षी ने, आरोपित सेवक की अनुपस्थिति में, पहले बयान दिया हो तथा जाँच के दौरान साक्ष्य देने हेतु पुनः उपस्थित हुआ हो तो यह आवश्यक नहीं है कि पूर्व के बयान के प्रत्येक शब्दों एवं वाक्यों को वह साक्षी यथावत दोहराए, बल्कि इतना ही समुचित है कि पूर्व के बयान को पढ़कर उसे सुना दिया जाए तथा उसके स्वीकार करने पर बयान के उस अंश को स्वीकार करने का तथ्य अंकित कर दिया जाए एवं उसकी प्रतिलिपि आरोपित सेवक को देकर उसे प्रतिपरीक्षा करने का अवसर दे दिया जाए।[97] विभागीय

94-फुलबारी टी इस्टेट बनाम इसके कर्मकार-आ॰ई॰रि॰1959 सु॰को॰1111

95-शर्मानन्द बनाम सुपरिन्टेन्डेन्ट,गन कैरेज फैक्ट्री,जबलपुर-आ॰ई॰रि॰ 1960 म॰प्र॰178

96-उत्तर प्रदेश राज्य बनाम ओम प्रकाश-आ॰ई॰रि॰1970 सु॰को॰679

97-महाराष्ट्र राज्य बनाम सिद्धप्पा-आ॰ई॰रि॰1963 सु॰को॰375

जाँच में जाँच अधिकारी साक्षियों से प्रश्न पूछ सकते हैं, परन्तु उन्हें इतनी सावधानी रखनी चाहिए कि वह अभियोजक के रूप में कार्य न करें।[98]

यद्यपि "कहनेसुनने" पर आधारित साक्ष्य न्यायालय में ग्राह्य नहीं है, परन्तु विभागीय जाँच में ऐसा साक्ष्य, जो आरोप से युक्तियुक्त संबंध रखता हो तथा विश्वसनीय हो, ग्राह्य होगा। ऐसे सभी साक्ष्य, जो किसी भी प्रज्ञावान मनुष्य के विचार से "तात्विक प्रमाण" हों, विभागीय जाँच के दौरान साक्ष्य में ग्राह्य होते हैं।[99]

टेपरिकार्ड की हुई बातचीत एक सुसंगत साक्ष्य है, जो साक्ष्य अधिनियम की धारा-7 के अधीन ग्राह्य है। उच्चतम न्यायालय[100] ने टेपरिकार्ड पर रिकार्ड की गई बातचीत को साक्ष्य में ग्राह्य माना है। टेपरिकार्ड किया हुआ बयान निम्नलिखित शर्तों के अधीन साक्ष्य में ग्राह्य है-[101]

[1] वक्ता की आवाज की पहचान होनी अनिवार्य है। यदि वक्ता आवाज पहचान पाने में असमर्थ हो तो यह तथ्य सिद्ध करना होगा कि यह आवाज कथित वक्ता की ही है।

[2] टेप-रिकार्ड बयान की यथार्थता, रिकार्ड करने वाले व्यक्ति के संतोषप्रद साक्ष्य से, सिद्ध होनी अनिवार्य है। यह साक्ष्य प्रत्यक्ष तथा परिस्थितिजनक भी हो सकता है।

[3] टेप-रिकार्ड बयान में, या उसके किसी भाग का, उद्घर्षण या हेर-फेर की संभावना पूर्णतः अपवर्जित होनी अनिवार्य है।

[4] टेप-रिकार्ड बयान सुसंगत होना अनिवार्य है।

[5] टेप-रिकार्ड कैसेट सीलबन्द होना तथा सुरक्षित या पदीय अभिरक्षा में रखा हुआ होना अनिवार्य है।

[6] वक्ता की आवाज स्पष्ट रूप से सुनाई पड़नी अनिवार्य है तथा इसमें किसी प्रकार की विकृति या कोलाहल न हो।

98-के॰फारूख अहमद बनाम भौरल बैंक-1990[1][स॰ला॰ज॰-304[केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण,बैंगलौर]

99-हरियाणा राज्य बनाम रतन सिंह-आ॰ई॰रि॰1977 सु॰को॰1512

100-एन॰एस॰रमारेड्डी बनाम श्री वी॰वी॰गिरी-आ॰ई॰रि॰1971 सु॰को॰1162, युसुफ अली बनाम महाराष्ट्र राज्य-आ॰ई॰रि॰1968 सु॰को॰147 तथा एस॰प्रताप सिंह बनाम पंजाब राज्य-आ॰ई॰रि॰1964 सु॰को॰72

101-आर॰एम॰मलकानी बनाम महाराष्ट्रराज्य-1973[1][सु॰को॰के॰471,तथा राम सिंह एवं अन्य बनाम कर्नल राम सिंह-आ॰ई॰रि॰ 1986 सु॰को॰ 3

अतः उक्त शर्तों के अधीन टेपरिकार्ड किया गया बयान विभागीय जाँच में भी ग्राह्य है।

साक्ष्य में दस्तावेजी साक्ष्य भी पेश किए जा सकते हैं, जो दो प्रकार के हो सकते हैं, ‌|1| लोक दस्तावेज, तथा |2| प्राइवेट दस्तावेज।

निम्नलिखित दस्तावेज लोक दस्तावेज हैं:- [102]

|1| वे दस्तावेज जो-

|i| प्रभुत्तासम्पन्न प्राधिकारी के,
|ii| शासकीय निकायों और अधिकरणों के, तथा
|iii| भारत के किसी भाग के या कामनवेल्थ के, या किसी विदेश के विधायी, न्यायिक तथा कार्यपालक लोक अधिकारियों के, कार्यों के रूप में या कार्यों के अभिलेख के रूप में हैं,

|2| किसी राज्य में रखे गए प्राइवेट दस्तावेजों के लोक अभिलेख।

अन्य सभी दस्तावेज प्राइवेट हैं।[103] लोक दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियाँ, उनकी अन्तर्वस्तु के सबूत में पेश की जा सकेगी तथा साक्ष्य में ग्राह्य होगी।[104] प्राइवेट दस्तावेजों को उसके लेखक या हस्तलेख से परिचित व्यक्ति से साबित कराना आवश्यक होता है। अर्थात्, यदि कोई दस्तावेज किसी व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित या पुर्णतः या भागतः लिखी गई अभिकथित है, तो यह साबित करना होगा कि वह हस्ताक्षर या उस दस्तावेज के उतने का हस्तलेख, जितने के बारे में यह अभिकथित है कि वह उस व्यक्ति के हस्तलेख में है, उसके हस्तलेख में है।[105] प्राइवेट दस्तावेज साबित कराने पर ही साक्ष्य में ग्राह्य होगा।

न्यायालय में दस्तावेजी साक्ष्य साबित करने के लिए साक्ष्य का जो मानदण्ड है वह विभागीय जाँच में लागू नहीं होता, परन्तु इतना ध्यान रखना चाहिए कि जो दस्तावेज साक्ष्य में ग्राह्य किया जा रहा हो उसे आरोपित सेवक को अवश्य दिखा दिया जाए।

102-भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 74
103-भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 75
104-भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 77
105-भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 67

साक्ष्य के संबंध में आरोपित सेवक का स्पष्टीकरण लेना

सेन्ट्रल सी॰सी॰ए॰ रूल्स, 1965 के नियम 14[18] में उपबंध है कि जब दोनों पक्षों के साक्ष्य उपलब्ध हो जाए तो जाँच अधिकारी आरोपित सेवक से, उन परिस्थितियों के बारे में जो उसके विरुद्ध साक्ष्य में आई हों, सामान्य प्रश्न पूछकर स्पष्टीकरण ले सकते हैं। ऐसा ही उपबंध रेलवे सर्वेन्ट्स [डिसिप्लिन ऐण्ड अपील] रूल्स, 1968 के नियम 9[21] तथा आल इण्डिया सर्विसेज [डिसिप्लिन ऐण्ड अपील] रूल्स, 1969 के नियम 8[19] में भी है। अतः केन्द्रीय या संघीय सेवा के सदस्यों, रेलवे सेवकों तथा भारतीय प्रशासनिक सेवा एवं पुलिस सेवा के सदस्यों के विरुद्ध विभागीय जाँच में जाँच अधिकारी आरोपित सेवक से, उसके विरुद्ध साक्ष्य में आई परिस्थितियों के संबंध में, प्रश्न पूछकर स्पष्टीकरण ले सकते हैं। यदि आरोपित सेवक ने जाँच के दौरान स्वयं को परीक्षित न किया हो तो उसके विरुद्ध साक्ष्य में आई परिस्थितियों के संबंध में उसका स्पष्टीकरण लेना अनिवार्य है। इस उपबंध का प्रयोजन यह है कि आरोपित सेवक को, साक्ष्य में आई परिस्थितियों के संबंध में, स्पष्टीकरण देने का अवसर उपलब्ध हो सके। यद्यपि उत्तर प्रदेश के सरकारी सेवकों पर लागू होने वाली पूर्वोक्त नियमावली में इस आशय का कोई उपबंध नहीं है, फिर भी "सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर" देने के नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त के अनुरूप कार्य करते हुए उचित होगा यदि विभागीय जाँच में आरोपित सेवक से, उसके विरुद्ध साक्ष्य में आई परिस्थितियों के संबंध में प्रश्न पूछकर स्पष्टीकरण ले लिया जाए।

जाँच अधिकारी, साक्ष्य में आरोपित सेवक के विरुद्ध आई प्रत्येक परिस्थिति के संबंध में अलग-अलग प्रश्न तैयार करेंगे, तदुपरान्त प्रत्येक प्रश्न पढ़कर आरोपित सेवक को सुनाएंगे एवं उसके द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को अभिलिखित करेंगे। इसके प्रत्येक पृष्ठ पर आरोपित सेवक का हस्ताक्षर करा लिया जाएगा तथा जाँच अधिकारी भी अपना

हस्ताक्षर करेंगे। साक्ष्य के संबंध में आरोपित सेवक का स्पष्टीकरण लेने के उपरान्त जाँच अधिकारी बहस हेतु तिथि नियत करेंगे।

बहस

बहस सुनने का उपबंध सेन्ट्रल सी॰सी॰ए॰ रूल्स, 1965 के नियम 14[19] में है, जिसके अनुसार साक्ष्य लेने के उपरान्त जाँच अधिकारी, प्रस्तुति अधिकारी, यदि कोई हो, तथा आरोपित सेवक की बहस सुन सकते हैं, अथवा उन्हें लिखित संक्षिप्त बहस देने की अनुमति दे सकते हैं। ऐसा ही उपबंध रेलवे सर्वेन्ट्स [डिसिप्लिन ऐण्ड अपील] रूल्स, 1968 के नियम 9[22] तथा आल इण्डिया सर्विसेज [डिसिप्लिन ऐण्ड अपील] रूल्स, 1969 के नियम 8[20] में भी है। यद्यपि उत्तर प्रदेश के सरकारी सेवकों पर लागू होने वाली पूर्वोक्त नियमावली में ऐसा उपबंध नहीं है, फिर भी "सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर" देने के नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त के अनुरूप कार्य करते हुए उचित होगा यदि साक्ष्य लेने के उपरान्त दोनों पक्षों के तर्कों को भी सुन लिया जाए। यह प्रक्रिया अपनाने से जाँच अधिकारी को साक्ष्यों का अधिमूल्यन करने में सुगमता होगी।

साक्ष्य अधिमूल्यन

साक्ष्य लेने तथा बहस सुनने के उपरान्त जाँच अधिकारी का सबसे महत्वपूर्ण कार्य साक्ष्य अधिमूल्यन करके जाँच रिपोर्ट तैयार करना है। साक्ष्य का अधिमूल्यन विधि के सुप्रचलित सिद्धान्तों के अनुरूप करके आरोप सिद्ध होने या न होने का निष्कर्ष दिया जाएगा।

साक्ष्य अधिमूल्यन करते समय यह सिद्धान्त मस्तिष्क में रखा जाएगा कि विभागीय जाँच कोई दाण्डिक विचारण नहीं है। अपराधिक मामलों में अभियुक्त के विरुद्ध आरोप "युक्तियुक्त संदेह से परे" सिद्ध होना अनिवार्य है, जबकि विभागीय जाँच में ऐसा नहीं है। विभागीय जाँच में "अधिसंभाव्यता की प्रबलता" को मस्तिष्क में रखते हुए साक्ष्य

अधिमूल्यन किया जाएगा।[106] अर्थात् सम्पूर्ण साक्ष्य का अवलोकन करके विचार किया जाएगा कि अभियोजन कथन अधिसंभाव्य है अथवा बचाव कथन। यदि अभियोजन कथन अधिसंभाव्य हो तो आरोप "साबित" माना जाएगा। यदि बचाव-कथन अधिसंभाव्य हो तो आरोप साबित नहीं माना जाएगा।

आरोप को साबित करने का दायित्व शासन, अर्थात् आरोप लगाने वाले पर होता है, आरोपित सेवक को अपनी निर्दोषिता साबित नहीं करनी होती है।[107] यद्यपि अपराधिक विधि की कानूनी तकनीकियाँ तथा साक्ष्य अधिनियम में नियत तथ्य साबित करने के नियम विभागीय जाँच में सख्ती से लागू नहीं होते, फिर भी सरकारी सेवक को दण्डित करने से पूर्व उसके विरूद्ध लगाए गए आरोपों का साबित होना अनिवार्य है। आरोप साबित होने के उपरान्त ही उस पर दण्ड अधिरोपित किया जा सकता है, अन्यथा नहीं।[108] साक्ष्य का अधिमूल्यन करने में आरोप से भिन्न अथवा जाँच पत्रावली पर उपलब्ध सामग्री से बाह्य बातों पर विचार नहीं किया जाना चाहिए। आरोपित सेवक के विरूद्ध लगाए गए आरोपों से बाह्य अभिकथनों के बारे में जाँच नहीं की जा सकती है। यदि जाँच अधिकारी आरोपों से असंगत एवं बाह्य बातों पर विचार करें तो उन्हें आरोपित सेवक के विरूद्ध पूर्वग्रहित माना जाएगा। अतः आरोपित सेवक के विरूद्ध जाँच आरोपों की परिधि में ही सीमित रखी जानी चाहिए। उसे किसी ऐसे दुराचरण के लिए दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिए जिसका उल्लेख ही आरोप-पत्र में न हो। जाँच अधिकारी को[109] आरोपों से अलग दुराचरण का कोई नया केस नहीं बनाना चाहिए।

यद्यपि दाण्डिक विचारण में अपराध साबित होने का मानक विभागीय जाँच में आरोप साबित होने का मानक नहीं है, परन्तु "सन्देह" मात्र साक्ष्य नहीं माना जा सकता, न ही सन्देह से आरोप साबित हो सकता है।[110]

106-आंध्र प्रदेश राज्य बनाम श्री रामाराव-आ॰ई॰आर॰1963 सु॰को॰1723 तथा भारत संघ बनाम सरदार बहादुर-1972[4]सु॰को॰के॰618

107-सुरेन्द्र चन्द्र दास बनाम संघीय राज्य-क्षेत्र,त्रिपुरा-आ॰ई॰आर॰1962 त्रिपुरा15

108-मद्रास राज्य बनाम ए॰आर॰ श्री निवासन्-1966 सु॰को॰1827

109-असम राज्य बनाम मोहन चन्द्र-आ॰ई॰आर॰1972 सु॰को॰2535,तथा सिकन्दर सिंह बनाम भारत संघ-1984[2]स॰ला॰क॰594[दिल्ली उच्चा॰]

110-भारत संघ बनाम एच॰सी॰ गोयल-आ॰ई॰आर॰1964 सु॰को॰364

साक्ष्य का ऐसा कोई नियम नहीं है कि एकमात्र साक्षी के साक्ष्य पर विश्वास नहीं किया जा सकता अथवा यह कि आरोप के समर्थन में सिर्फ एकमात्र साक्षी का ही साक्ष्य उपलब्ध हो तो उसके आधार पर आरोप साबित होने का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता, भले ही उसका साक्ष्य विश्वसनीय हो। कहने का तात्पर्य यह है कि विभागीय जाँच में एकमात्र साक्षी के साक्ष्य के आधार पर भी आरोप "साबित" माना जा सकता है, यदि उसका साक्ष्य विश्वसनीय हो।[111]

विभागीय जाँच में यदि कोई पक्ष किसी महत्वपूर्ण साक्षी को पेश नहीं करता है तो जाँच अधिकारी उस पक्ष के विरुद्ध "प्रतिकूल निष्कर्ष" निकाल सकते हैं। उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[112] का मामला एक अच्छा उदाहरण है, जिसमें एक बस कंडक्टर के विरुद्ध आरोप लगाया गया था कि उसने यात्रियों से किराया वसूल किया था, परन्तु उन्हें टिकट दिए बगैर बस में ले जा रहा था। जिस अधिकारी ने बस को चैक करके रिपोर्ट दी, उसे विभागीय जाँच के दौरान साक्ष्य देने के लिए अभियोजन पक्ष ने नहीं बुलाया बल्कि अन्य दो कर्मचारियों से, जो चैकिंग के समय उनके साथ उपस्थित थे, साक्ष्य दिलवाई गई, परन्तु वे दोनों प्रश्नों का समुचित उत्तर न दे सके थे। ऐसी परिस्थिति में उच्च न्यायालय ने बस चैक करने वाले अधिकारी को साक्ष्य में पेश न करने के कारण अभियोजन पक्ष के कथन के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकालना उचित माना।

उच्चतम न्यायालय ने हरियाणा राज्य बनाम रतन सिंह[113] के मामले में कहा है कि विभागीय जाँच में साक्ष्य अधिनियम के सभी सुनिर्धारित एवं परिष्कृत नियम लागू नहीं होते हैं। वह सभी सामग्री, जो किसी प्रज्ञावान व्यक्ति के लिए तर्कसंगत प्रमाण हो, साक्ष्य में ग्राह्य है। जाँच अधिकारी को इन सामग्रियों का अधिमूल्यन करते समय पूरी सतर्कता बरतनी चाहिए तथा जो सामग्री साक्ष्य अधिनियम के अधीन सुसंगत न हो उसे, यथासंभव, ग्रहण नहीं करना चाहिए।

111-मै0 बनारस इलैक्ट्रिसिटी लाइट ऐण्ड पावर कंपनी बनाम लेबर कोर्ट, लखनऊ-आ-ई-रि-1972 सु-को-2182

112-1991|62|एफ-एल-आर-263|इलाहाबाद उच्च न्यायालय।

113-आ-ई-रि-1977 सु-को-1512

विभागीय जाँच के मामलों में जाँच अधिकारी को यह देखना होता है कि क्या "कुछ साक्ष्य" है अथवा "कोई साक्ष्य" नहीं है? ऐसा करते समय उन्हें न्यायालय की कार्यवाईयों को नियंत्रित करने वाले तकनीकी नियमों को ध्यान में नहीं रखना होता है। बल्कि उचित व्यावहारिक ज्ञान से यह देखना होता है कि "कुछ साक्ष्य" है या कुछ भी नहीं है। इस मामले के तथ्य इस प्रकार हैं,

एक सरकारी बस यात्रियों को ले जा रही थी, जिसका परिचालक रतन सिंह था। उड़ाका दल के इंसपेक्टर ने बस को रास्ते में रोक कर चैक किया तो पाया कि पन्द्रह सवारियों ने परिचालक को किराया अदा किया था, परन्तु उन्हें टिकट नहीं दिया गया था। इंसपेक्टर ने इसकी रिपोर्ट की जिसके आधार पर आरोप-पत्र देकर विभागीय जाँच की गई तथा रतन सिंह की सेवा समाप्त करने का आदेश किया गया। रतन सिंह ने इस आदेश को न्यायालय में चुनौती दी। निचली अदालतों ने सेवा समाप्ति आदेश को मुख्यतः इस आधार पर दूषित माना कि उन पन्द्रह सवारियों में से किसी को जाँच में परीक्षित नहीं किया गया तथा इंसपेक्टर ने विभागीय अनुदेश रहते हुए भी उन साक्षियों का बयान अभिलिखित नहीं किया। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि विभागीय जाँच में "कहने-सुनने" पर आधारित बयान भी ग्रहण किया जा सकता है, यदि वह विश्वसनीय हो तथा उसका युक्तियुक्त संबंध हो। यद्यपि सवारियों को साक्ष्य में परीक्षित नहीं किया गया, परन्तु इंसपेक्टर का "कहने-सुनने" पर आधारित बयान "कुछ साक्ष्य" है जो विभागीय जाँच में ग्राह्य है। इंसपेक्टर ने यह भी बताया है कि उन्होंने सवारियों का बयान अभिलिखित करने का प्रयास किया था, लेकिन उन लोगों ने इंकार कर दिया था। ऐसी परिस्थिति में साक्षियों का बयान अभिलिखित न होने के कारण मात्र से जाँच में पारित दण्डादेश दूषित नहीं होगा।

साक्ष्य अधिमूल्यन करते समय जाँच अधिकारी को पत्रावली पर उपलब्ध विधिक साक्ष्य सामग्री पर विचार करते हुए विनिश्चय

करना होता है कि क्या इस साक्ष्य से आरोपित सेवक के दोषी होने के निष्कर्ष का युक्तियुक्त समर्थन होता है? यदि युक्तियुक्त समर्थन होता हो तो इसके आधार पर आरोपित सेवक को दोषसिद्ध किया जा सकता है। जाँच अधिकारी का निष्कर्ष, अनुमान या कल्पना पर आधारित नहीं होना चाहिए।

सारांश यह है कि आरोपों के संबंध में उपलब्ध संपूर्ण साक्ष्यों का अधिमूल्यन, अधिसंभाव्यता की प्रबलता के सिद्धान्त पर किया जाएगा परन्तु संदेह, अनुमान या कल्पना अथवा बाह्य बातों पर विचार नहीं किया जाएगा। एकमात्र साक्षी के साक्ष्य, यदि विश्वसनीय हो, से भी आरोप सिद्ध माना जा सकता है तथा "कहने-सुनने" पर आधारित साक्ष्य भी विभागीय जाँच में ग्रहण किया जा सकता है, यदि वह युक्तियुक्त रूप से संबोधित तथा विश्वसनीय हो।

जाँच रिपोर्ट

जाँच अधिकारी साक्ष्य अधिमूल्यन करके जाँच रिपोर्ट तैयार करेंगे। सेन्ट्रल सी॰सी॰ए॰ रूल्स, 1965 के नियम 14[23] में उपबंध है कि जाँच रिपोर्ट में निम्नलिखित बातें लिखी जाएंगी :-

[क] आरोपों, दुराचरण या दुर्व्यवहार के अभियोग या लांछन, का कथन।

[ख] आरोपित सेवक का बचाव कथन, प्रत्येक आरोप के संबंध में।

[ग] साक्ष्य का अधिमूल्यन, प्रत्येक आरोप के संबंध में।

[घ] प्रत्येक आरोप पर निष्कर्ष तथा उसका कारण।

यही उपबंध रेलवे सर्वेन्ट्स [डिसिप्लिन ऐण्ड अपील] रूल्स, 1968 के नियम 9[25] तथा आल इण्डिया सर्विसेज [डिसिप्लिन ऐण्ड अपील] रूल्स, 1969 के नियम 8[24] में भी है। यद्यपि उत्तर प्रदेश के सरकारी सेवकों पर लागू होने वाली नियमावलियों में इस आशय का कोई उपबंध नहीं है परन्तु किसी भी जाँच रिपोर्ट

में उक्त बातें होनी अनिवार्य हैं। इन बातों के अतिरिक्त कुछ अन्य विवरण देना भी समीचीन है। अतः निम्नलिखित क्रम में विवरण लिखते हुए जाँच रिपोर्ट तैयार की जानी उचित होगी :-

[1] किस प्राधिकारी के आदेश से किस सेवक के विरुद्ध जाँच आरम्भ हुई,

[2] अभियोजन पक्ष का कथन, जिसमें आरोपों का संक्षिप्त विवरण लिखा जाएगा,

[3] बचाव पक्ष का कथन, जिसमें आरोपित सेवक के, उन आरोपों के उत्तर में किए गए, कथन लिखे जाएंगे,

[4] आरोपित सेवक की स्वीकारोक्ति, यदि कोई हो,

[5] अभियोजन साक्ष्य, जो प्रस्तुत किया गया हो,

[6] बचाव साक्ष्य, जो प्रस्तुत किया गया हो,

[7] साक्ष्य का विवेचन, प्रत्येक आरोप के संबंध में पत्रावली पर उपलब्ध संपूर्ण साक्ष्य सामग्री पर विचार करके अभिलिखित किया जाएगा,

[8] निष्कर्ष, प्रत्येक आरोप पर साक्ष्य विवेचन के अंत में अलग-अलग अभिलिखित किया जाएगा तथा सबसे अंत में सभी निष्कर्षों का सारांश समेकित रूप से लिख कर आरोप साबित होना या न होना लिखा जाएगा,

[9] जाँच रिपोर्ट, जाँच अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित की जाएगी।

जाँच रिपोर्ट में दण्ड के बारे में कोई प्रस्ताव या संस्तुति नहीं की जाएगी, जब तक कि कानूनी नियम या विशिष्ट आदेश के अधीन जाँच अधिकारी को ऐसा करना अपेक्षित न हो। यदि जाँच अधिकारी दण्ड के बारे में अपनी संस्तुति देना चाहें तो जाँच रिपोर्ट के साथ अग्रसारक-पत्र में दण्ड संस्तुत कर सकते हैं। जाँच अधिकारी की रिपोर्ट या संस्तुति, अनुशासनिक प्राधिकारी या शासन पर बाध्यकारी नहीं है।[114]

114-भारत संघ बनाम ज्वालाप्रसाद गोयल-आल०ई०रि० 1964 सु०को० 364

अनुशासनिक प्राधिकारी का विनिश्चय

जाँच रिपोर्ट प्राप्त होने के उपरान्त अनुशासनिक प्राधिकारी को विनिश्चय करना होगा कि संपूर्ण साक्ष्य सामग्री से आरोपित सेवक के विरुद्ध लगाए गए आरोप साबित हैं अथवा नहीं। यह विनिश्चय करने में अनुशासनिक प्राधिकारी जाँच रिपोर्ट से आबद्ध नहीं होते हैं।[115] अर्थात् जाँच रिपोर्ट के निष्कर्ष, अनुशासनिक प्राधिकारी पर, बाध्यकारी नहीं हैं। जाँच पत्रावली पर उपलब्ध संपूर्ण सामग्री का अवलोकन करके अनुशासनिक प्राधिकारी,

‌‌[1] जाँच अधिकारी की रिपोर्ट से सहमत हो सकते हैं, या
‌‌[2] जाँच अधिकारी की रिपोर्ट से असहमत हो सकते हैं, या
‌‌[3] पुनः जाँच करने का आदेश कर सकते हैं।

यदि जाँच रिपोर्ट में आरोप साबित होने का निष्कर्ष दिया गया हो तथा साक्ष्य सामग्री का अवलोकन करके अनुशासनिक प्राधिकारी इस निष्कर्ष से सहमत हों तो, कारण अभिलिखित करते हुए, दुराचरण के अनुरूप दण्ड की मात्रा अभिनिश्चित करेंगे। जाँच पत्रावली पर उपलब्ध संपूर्ण सामग्री, जिसमें जाँच रिपोर्ट भी सम्मिलित है, का अवलोकन करके अनुशासनिक प्राधिकारी इस मत के हों कि दुराचरण का आरोप साबित नहीं है तो वह कारण अभिलिखित करके आरोपित सेवक को दोषमुक्त कर सकते हैं। यदि जाँच अधिकारी ने आरोप साबित न होने की रिपोर्ट दी हो परन्तु अनुशासनिक प्राधिकारी संपूर्ण अभिलेखों पर विचार करके उसके विपरीत निष्कर्ष पर पहुँचे हों तो वह आरोपित सेवक पर दण्ड अधिरोपित कर सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जाँच अधिकारी का निष्कर्ष या संस्तुतियाँ अनुशासनिक प्राधिकारी पर बाध्यकारी नहीं हैं।[116] अनुशासनिक प्राधिकारी को जाँच पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य-सामग्री पर स्वतंत्र रूप से विचार करके प्रत्येक आरोप के संबंध में स्वयं निष्कर्ष निकालना होता है।

115-भारत संघ बनाम एच०सी० गोयल -आ०इ०रि० 1964 सु०को० 364

116-जनरल मैनेजर इस्टर्न रेलवे बनाम ज्वाला प्रसाद सिंह-1970]1]सु०को०के० 103

जाँच पत्रावली पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करने के उपरान्त अनुशासनिक प्राधिकारी यदि इस मत के हों कि कोई तात्विक साक्ष्य लेने से रह गया है अथवा कोई प्रक्रियात्मक त्रुटि हुई, तो वह पुनः जाँच करके रिपोर्ट प्रस्तुत करने का आदेश कर सकते हैं।

सकारण आदेश

न्यायिक-कल्प प्राधिकारी को अपने निष्कर्षों का कारण लिखना अनिवार्य है। विनिश्चय के समर्थन में कारण अभिलिखित करने से यह सुनिश्चित होता है कि न्यायिक-कल्प प्राधिकारी ने कानून के अनुरूप विनिश्चय किया है, अनुचित या मनमाने ढंग से नहीं किया है।[117] अतः अनुशासनिक प्राधिकारी को, अपने आदेश में, कारण अभिलिखित करना अनिवार्य है जिससे कि मनमानापन करने तथा न्याय विफल होने से रोका जा सके अथवा इसकी संभावना को अपवर्जित किया जा सके एवं कार्यवाईयों में निष्पक्षता सुनिश्चित की जा सके।[118]

दण्ड से पूर्व सुनवाई [दूसरी नोटिस]

अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा जाँच अधिकारी की रिपोर्ट पर अंतिम आदेश करने से पूर्व आरोपित सेवक को, दोषसिद्धि एवं प्रस्तावित दण्ड के संबंध में, अभ्यावेदन करने के लिए नोटिस देने को, सामान्य बोलचाल में, "दूसरी नोटिस" कहते हैं। दूसरी नोटिस की संकल्पना संविधान के अनुच्छेद 311[2] के मूल उपबंध में अभिव्यक्त "युक्तियुक्त सुनवाई" में अंतर्विष्ट है। संविधान के अनुच्छेद 311[2] का मूल उपबंध इस प्रकार था,

> "यथापूर्वोक्त किसी व्यक्ति को, उसके विरुद्ध प्रस्तावित कार्यवाई के संबंध में, कारण बताने का युक्तियुक्त अवसर देने के उपरान्त ही पदच्युत किया जाएगा या पद से हटाया जाएगा या पंक्ति में अवनत किया जाएगा, अन्यथा नहीं।"

117-मै० महावीर प्रसाद संतोष कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य-आ०ई०आर० 1970 सु०को० 1302

118-अनिल कुमार शील बनाम मदन मोहन मालवीय इंजीनियरिंग कालेज, 1991[62] एफ०एल०आर० 298[इलाहाबाद उच्च न्यायालय]

सन् 1958 में उच्चतम न्यायालय ने खेम चन्द बनाम भारत संघ[119] के मामले में अनुच्छेद 311[2] में अभिव्यक्त "युक्तियुक्त अवसर" की व्याख्या करते हुए कहा है कि, इसमें निम्नलिखित अवसर सम्मिलित हैं,

[1] अभियोग या दोष से इंकार करने तथा निर्दोषिता स्थापित करने का अवसर, जो आरोपित सेवक तभी कर सकता है जब उसे, उसके विरूद्ध लगाए गए आरोपों एवं अभिकथनों, जिन पर वे आरोप आधारित हैं, की सूचना उसे दे दी जाए।

[2] अभियोजन साक्षियों से प्रतिपरीक्षा करने तथा बचाव साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर।

[3] प्रस्तावित दण्ड, जो आरोपित सेवक पर अधिरोपित किया जाना हो, के संबंध में अभ्यावेदन देने का अवसर, जो वह सेवक सिर्फ तभी कर सकता है जब अनुशासनिक प्राधिकारी जाँच पूर्ण होने के उपरान्त "साबित आरोपों" की गंभीरता पर अपना मस्तिष्क प्रयोग करके तीन महादण्डों में से कोई दण्ड उस सेवक पर अधिरोपित करने का विचार करें तथा उसकी सूचना उस सेवक को दें।

सन् 1963 में उच्चतम न्यायालय ने असम राज्य बनाम बिमल कुमार पंडित[120] के मामले में अनुच्छेद 311[2] के पूर्वोक्त उपबंध के संबंध में कहा कि, यह सुप्रचलित है कि सरकारी सेवक, जिसके विरूद्ध अनुशासनिक कार्यवाई की जानी हो, दण्डादेश पारित होने के पूर्व दो अवसर पाने का अधिकारी है। प्रथम प्रक्रम पर वह अपने बचाव का अवसर पाने का अधिकारी है अर्थात्, उसके विरूद्ध नियमों में नियत विभागीय जाँच नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के अनुरूप की जाएगी जिसमें आरोपित सेवक साक्षियों से प्रतिपरीक्षा करने का अवसर पाने का अधिकारी होगा। विभागीय जाँच की रिपोर्ट प्राप्त होने पर अनुशासनिक प्राधिकारी उस पर विचार करेंगे। यदि जाँच

119-आ०इं०रि० 1958 सु०को० 300
120-आ०इं०रि० 1963 सु०को० 1612

रिपोर्ट में आरोपित सेवक के विरूद्ध निष्कर्ष हो तथा अनुशासनिक प्राधिकारी उससे सहमत हों तो आरोपित सेवक को अवसर देने का दूसरा प्रक्रम आता है कि क्यों न उसे दण्डित किया जाए? उस दूसरी नोटिस को भेजने में अनुशासनिक प्राधिकारी को, स्वाभाविक रूप से, उस सेवक के दोषी होने एवं दण्ड की मात्रा के बारे में "अनन्तिम निष्कर्ष" पर पहुँचना होता है। अनन्तिम रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँचने के उपरान्त ही वह दूसरी नोटिस जारी करेंगे। इस नोटिस के प्रतिउत्तर में आरोपित सेवक प्रस्तावित दण्ड के बारे में स्पष्टीकरण तो दे ही सकता है, वह उन निष्कर्षों की वैधता अथवा परिशुद्धता के विरूद्ध भी अभिकथन करने का अधिकारी है। कहने का तात्पर्य यह कि दूसरे अवसर में आरोपित सेवक, सभी आधारों को समेकित करके अपने विरूद्ध दुराचरण का कोई आरोप साबित न होने तथा दण्ड की कठोरता आदि का तर्क प्रस्तुत करने का अधिकारी होता है।

उच्चतम न्यायालय की पूर्वोक्त दोनों निर्णयज विधियों से सुस्पष्ट है कि अनुच्छेद 311, खण्ड [2] के उपबंध में अभिव्यक्त "युक्तियुक्त सुनवाई का अवसर" में दो अवसर अनुध्यात हैं,

[1] जाँच में बचाव करने का अवसर, तथा

[2] जाँच के उपरान्त अनन्तिम निष्कर्ष एवं प्रस्तावित दण्ड के विरूद्ध अभ्यावेदन करने का अवसर।

उच्चतम न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णयों के उपरान्त माह अक्टूबर, सन् 1963 में संविधान के पन्द्रहवें संशोधन द्वारा अनुच्छेद 311[2] में "प्रस्तावित दण्ड के संबंध में अभ्यावेदन करने का युक्तियुक्त अवसर देने का" प्रावधान जोड़ दिया गया। इस संशोधन के उपरान्त अनुच्छेद 311[2] का उपबंध इस प्रकार हो गया,

> "यथापूर्वोक्त किसी व्यक्ति को, ऐसी जाँच के पश्चात् ही, जिसमें उसे उसके विरूद्ध आरोपों की सूचना दे दी गई हो और उन आरोपों के संबंध में सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर दे दिया गया हो तथा ऐसी जाँच के उपरान्त, यदि उस पर ऐसा कोई दण्ड अधिरोपित करना प्रस्तावित हो तो उस प्रस्तावित दण्ड के

संबंध में अभ्यावेदन करने का युक्तियुक्त अवसर दे दिया गया हो, पदच्युत किया जाएगा या पद से हटाया जाएगा या पंक्ति में अवनत किया जाएगा, अन्यथा नहीं।"

इस प्रकार सन् 1963 में संशोधन के उपरान्त, आरोपित सेवक को प्रस्तावित दण्ड के संबंध में अभ्यावेदन करने का अवसर देना सांविधानिक रूप से अनिवार्य कर दिया गया। उच्चतम न्यायालय ने भारत संघ बनाम एच0सी0 गोयल [2] के मामले में, दण्डादेश के पूर्व आरोपित सेवक को सुनवाई का अवसर देने का प्रयोजन बताते हुए कहा है कि, इससे आरोपित सेवक अनुशासनिक प्राधिकारी को यह दिखा सकता है कि उसके विरुद्ध आरोप साबित नहीं है, वह निर्दोष है, तथा वह यह भी दिखा सकता है कि यदि आरोप साबित भी हों तो प्रस्तावित दण्ड अत्यंत ही कठोर है।

परन्तु जनवरी सन् 1977 में संविधान के बयालीसवें संशोधन द्वारा, जो 3 जनवरी, 1977 से प्रवर्तित है, अनुच्छेद 311[2] के इस उपबंध का लोप करके इसमें एक परन्तुक भी जोड़ दिया गया। इस संशोधन के उपरान्त अनुच्छेद 311 का सुसंगत उपबंध इस प्रकार है,

अनुच्छेद 311

[1]..........

[2] यथापूर्वोक्त किसी व्यक्ति को, ऐसी जाँच के पश्चात् ही, जिसमें उसे अपने विरुद्ध आरोपों की सूचना दे दी गई है और उन आरोपों के संबंध में सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर दे दिया गया है, पदच्युत किया जाएगा या पद से हटाया जाएगा या पंक्ति में अवनत किया जाएगा, अन्यथा नहीं:

परन्तु जहाँ ऐसी जाँच के पश्चात् उस पर ऐसी कोई शास्ति अधिरोपित करने की प्रस्थापना है वहाँ ऐसी शास्ति ऐसी जाँच के दौरान दिए गए साक्ष्य के आधार पर अधिरोपित की जा सकेगी और ऐसे व्यक्ति को प्रस्थापित शास्ति के विषय में अभ्यावेदन करने का अवसर देना आवश्यक नहीं होगा:

---

[2]-आर्इ0सी0 1964 सु0को0 364

इस प्रकार जनवरी सन् 1977 से प्रस्तावित दण्ड के संबंध में आरोपित सेवक को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने का प्रावधान समाप्त कर दिया गया और यह उपबंध कर दिया गया कि प्रस्तावित दण्ड के विषय में आरोपित सेवक को अभ्यावेदन देने का अवसर देना आवश्यक नहीं होगा। इस संशोधन के उद्देश्य एवं कारण के अभिकथन में कहा गया है कि सरकारी सेवकों को, जाँच के दूसरे प्रक्रम पर, प्रस्तावित दण्ड के विरूद्ध अभ्यावेदन करने का अवसर देने से इंकार करने हेतु यह संशोधन किया गया है। तदुपरान्त उच्चतम न्यायालय ने, **सेक्रेटरी, सेन्ट्रल बोर्ड आफ एक्साइज ऐण्ड कस्टम्स बनाम के0 एस0 महालिंगम**[122] के मामले में कहा कि, अनुच्छेद 311[2] के अधीन विभागीय जाँच में आरोपित सेवक प्रस्तावित दण्ड के संबंध में सुनवाई का अवसर पाने का अधिकारी नहीं है।

फिर भी अनुच्छेद 311[2] के अधीन जाँच में "युक्तियुक्त अवसर" देने का प्रावधान यथावत है, जिसकी पूर्वोक्त व्याख्या के अनुरूप जाँच के दूसरे प्रक्रम में आरोपित सेवक जाँच अधिकारी के निष्कर्षों एवं अनुशासनिक प्राधिकारी के अनन्तिम निष्कर्ष के संबंध में अभ्यावेदन करने का अवसर पाने का अधिकारी है, तथा उच्चतम न्यायालय[123] का स्पष्ट मत है कि जाँच अधिकारी की रिपोर्ट की प्रतिलिपि आरोपित सेवक को न देने से युक्तियुक्त सुनवाई के अधिकार का हनन होता है। पुनः उच्चतम न्यायालय की खण्डपीठ ने **भारत संघ बनाम ई0 बाकर्चेन**[124] के मामले में संप्रेक्षण किया है कि जाँच अधिकारी अपनी रिपोर्ट में आरोपित सेवक के दोषी होने या न होने के संबंध में संस्तुति करते हैं, जिसे अनुशासनिक प्राधिकारी स्वीकार या अस्वीकार कर सकते हैं। अनुशासनिक प्राधिकारी इस रिपोर्ट के आधार पर यह निष्कर्ष निकालते हैं कि आरोपित सेवक दोषी है अथवा नहीं। अपना निष्कर्ष देने में वह स्वयं साक्ष्य का अधिमूल्यन करते हैं तथा जाँच अधिकारी द्वारा अभिलिखित कारणों एवं संस्तुतियों पर विचार करते हैं। अर्थात् जाँच में अंतिम निर्णय अनुशासनिक प्राधिकारी ही लेते हैं। ऐसी परिस्थिति

122-आ0ई0आर0 1987 सु0को0 1919

123-महाराष्ट्र राज्य बनाम बी0आर0 जोशी-आ0ई0आर0 1969 सु0को0 1302 एवं तथा अवतार सिंह बनाम आई0जी0-1968 म0 ला रि0 131[सु0को0]

124-आ0ई0आर0 1988 सु0को0 1000

में आरोपित सेवक को यदि जाँच रिपोर्ट उपलब्ध नहीं कराई जाती है तो वह महत्वपूर्ण सामग्री जिस पर अनुशासनिक प्राधिकारी को विचार करना होता है, कभी भी आरोपित सेवक की जानकारी में नहीं आ सकती तथा उसे इस महत्वपूर्ण सामग्री के संबंध में कुछ भी कहने का अवसर तब तक नहीं मिलेगा जब तक कि अनुशासनिक प्राधिकारी उसे दोषी मानते हुए दण्डित न कर देवें। ऐसा भी हो सकता है कि जाँच अधिकारी ने आरोपित सेवक को निर्दोष पाया हो तथा उसे दोषमुक्त करने की संस्तुति की हो, परन्तु अनुशासनिक प्राधिकारी जाँच रिपोर्ट से सहमत न हों, अथवा ऐसा भी हो सकता है कि जाँच अधिकारी की रिपोर्ट में स्पष्ट त्रुटि एवं भूल हो या रिपोर्ट साक्ष्य पर आधारित न हो या साक्ष्य की देखी-अनदेखी करके रिपोर्ट तैयार की गई हो, फिर भी उन त्रुटियों एवं भूलों एवं साक्ष्य अधिमूल्यन की गल्तियों की तरफ अनुशासनिक प्राधिकारी का ध्यान आकृष्ट कराने का कोई अवसर आरोपित सेवक को नहीं होगा। उच्चतम न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया है कि आरोपित सेवक को रिपोर्ट की त्रुटियों के बारे में बताने के लिए रिपोर्ट की प्रतिलिपि देना उसे प्रस्तावित दण्ड के संबंध में दूसरी कारण बताओ नोटिस देने से पूर्णतः भिन्न है। अनुच्छेद 311|2| में बयालीसवे संशोधन से सिर्फ प्रस्तावित दण्ड के संबंध में नोटिस देने से छुटकारा दिलाया गया है, नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के अनुरूप युक्तियुक्त अवसर देने से छुटकारा नहीं दिलाया गया है।

उच्चतम न्यायालय ने आगे कहा कि, अनुशासनिक प्राधिकारी ही वह वास्तविक प्राधिकारी है जो आरोपित सेवक को दोषी ठहराते हैं या दोषसिद्ध करते हैं। जाँच अधिकारी उनके प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हुए सुसंगत सामग्री, जिसमें आरोपित सेवक के दोष के संबंध में उनका अपना मूल्यांकन भी सम्मिलित होता है, अनुशासनिक प्राधिकारी को प्रस्तुत करते हैं। जाँच अधिकारी की रिपोर्ट की प्रतिलिपि आरोपित-सेवक को न देने की दशा में वह एक ऐसी महत्वपूर्ण सामग्री से वंचित हो जाएगा, जिस पर अनुशासनिक प्राधिकारी अंतिम निर्णय

लेते समय विचार करते हैं। अतः जाँच अधिकारी की रिपोर्ट की प्रतिलिपि आरोपित सेवक को न देने से नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त का उल्लंघन हो सकता है एवं संविधान के अनुच्छेद 311[2] के अधीन "सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर" देने से इंकार करने के समान हो सकता है। इस बिन्दु पर निर्णय लाखों कर्मचारियों को प्रभावित करेगा, अतः इस पर सावधानीपूर्वक, गहराई से, विस्तृत विचार करना आवश्यक है एवं इसका निर्णय पूर्णपीठ द्वारा किया जाना वांछनीय है। तदनुरूप यह मामला पूर्णपीठ को संदर्भित किया गया। यद्यपि इस मामले में पूर्णपीठ का निर्णय अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है, परन्तु नवम्बर, 1990 में भारत संघ बनाम मोहम्मद रमजान खाँन[125] के मामले में उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ ने निर्णय किया है कि, संविधान के बयालीसवे संशोधन द्वारा अनुच्छेद 311[2] में युक्तियुक्त अवसर की संकल्पना से जिस अंश का विलोप किया गया है उससे आरोपित सेवक को जाँच रिपोर्ट की प्रतिलिपि देने की वांछनीयता के संबंध में कोई तात्विक परिवर्तन नहीं होता है। अनुच्छेद 311[2] के उपबंधों में से "दूसरी नोटिस" देने के उपबंध के विलोप का, आरोपित सेवक को जाँच रिपोर्ट की प्रतिलिपि उपलब्ध कराने की प्रक्रिया से कोई संबंध नहीं है। यद्यपि अनुच्छेद 311[2] के अधीन जाँच में, प्रस्तावित दण्ड के संबंध में अभ्यावेदन करने का अधिकार समाप्त कर दिया गया है, फिर भी आरोपित सेवक जाँच अधिकारी के निष्कर्षों के विरुद्ध अभ्यावेदन करने का अधिकारी है।

यह सुप्रतिष्ठित है कि विभागीय जाँच न्यायिक-कल्प कार्यवाही है जिसमें नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त लागू होते हैं। आरोपित सेवक को जाँच रिपोर्ट, जिसके साथ दण्ड के संबंध में संस्तुति, यदि कोई हो, की प्रतिलिपि देना नैसर्गिक न्याय के नियमों में अंतर्विष्ट है। जाँच रिपोर्ट की प्रतिलिपि न देना, नैसर्गिक न्याय के नियमों के उल्लंघन के समान होगा। नैसर्गिक न्याय के नियमों के अनुरूप जाँच रिपोर्ट की प्रतिलिपि आरोपित सेवक को देने की विधिक अपेक्षा में, संविधान

125-1990[6] एस०सी०सी० 736

के बयालीसवें संशोधन से, कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। अतः आरोपित सेवक जाँच अधिकारी की रिपोर्ट एवं दण्ड के संबंध में संस्तुति की प्रतिलिपि, अनुशासनिक प्राधिकारी के अंतिम निर्णय से पूर्व, पाने का अधिकारी है।

"दूसरी नोटिस" में क्या बातें होनी अपेक्षित हैं, इसके बारे में उच्चतम न्यायालय ने, **असम राज्य बनाम बिमल कुमार पण्डित**[126] के मामले में कहा है कि विभागीय जाँच में अनुशासनिक प्राधिकारी जब दूसरी नोटिस आरोपित सेवक को देवें तो वांछनीय है कि वह जाँच अधिकारी के निष्कर्षों के प्रति अपनी सहमति या असहमति का तथ्य भी अंकित कर देवें। यदि वह रिपोर्ट से सहमत हों तथा दूसरी नोटिस में यह तथ्य अंकित न करें तो इसी कारण मात्र से उनके द्वारा पारित आदेश अवैध नहीं होगा, क्योंकि दूसरी नोटिस देने का अभिप्राय ही है कि अनुशासनिक प्राधिकारी ने जाँच अधिकारी के निष्कर्षों को स्वीकार कर लिया है। परन्तु, यदि अनुशासनिक प्राधिकारी, जाँच अधिकारी के निष्कर्षों से असहमत हों तो यह आवश्यक है कि वह दूसरी नोटिस में अपने अनन्तिम निष्कर्ष का विवरण स्पष्ट रूप से लिखें। यदि जाँच अधिकारी ने अपनी रिपोर्ट में आरोपित सेवक को दोषमुक्त करने का निष्कर्ष दिया है, परन्तु अनुशासनिक प्राधिकारी इससे असहमत हों तो उनके लिए आवश्यक है कि दूसरी नोटिस में वह इस बात का स्पष्ट रूप से उल्लेख कर देवें कि जाँच रिपोर्ट के निष्कर्षों से वह असहमत हैं तथा आरोपित सेवक के विरुद्ध किस प्रकृति की कार्यवाई प्रस्तावित है। ऐसी ही स्थिति उस मामले में भी होगी जहाँ जाँच अधिकारी की रिपोर्ट के अनुसार आरोपित सेवक कुछ आरोपों के लिए दोषसिद्ध तथा शेष आरोपों के लिए दोषमुक्त होने योग्य हो। यदि अनुशासनिक प्राधिकारी इन निष्कर्षों में से कुछ से सहमत हों तथा शेष से असहमत हों तो भी उन्हें अपने अनन्तिम निष्कर्षों का विवरण दूसरी नोटिस में देना चाहिए।

कहने का तात्पर्य यह कि यदि जाँच रिपोर्ट के अनुसार आरोपित सेवक दोषी हो तथा अनुशासनिक प्राधिकारी इससे सहमत हों तो दूसरी

126-आ॰इं॰रि॰ 1963 सु॰को॰ 1612

नोटिस में जाँच रिपोर्ट से सहमत होने के तथ्य का विवरण देना अनिवार्य नहीं है, लेकिन वांछनीय है। यदि ऐसे मामले में दूसरी नोटिस में यह विवरण न दिया गया हो तो यह नहीं कहा जा सकता कि अनुच्छेद 311[2] के अधीन "युक्तियुक्त अवसर" देने से इंकार किया गया। परन्तु जाँच रिपोर्ट से असहमति के मामलों में, अनुच्छेद 311[2] के अधीन आरोपित सेवक को युक्तियुक्त अवसर देने के लिए, अनुशासनिक प्राधिकारी के अनन्तिम निष्कर्षों का विवरण दूसरी नोटिस में दिया जाना अनिवार्य है।

सारांश

जब अनुशासनिक प्राधिकारी को जाँच अधिकारी की रिपोर्ट प्राप्त हो जाए तथा वह इस मत के हों कि आरोपित सेवक को दोषसिद्ध करना है तो वह इसकी प्रतिलिपि आरोपित-सेवक को देंगे तथा उस रिपोर्ट के संबंध में अभ्यावेदन करने का अवसर उसे देंगे। यदि जाँच अधिकारी ने आरोपित सेवक पर अधिरोपित किए जाने वाले दण्ड के संबंध में कोई संस्तुति की हो तो उसकी प्रतिलिपि भी जाँच रिपोर्ट की प्रतिलिपि के साथ आरोपित सेवक को दी जाएगी। जाँच अधिकारी की रिपोर्ट से असहमति के मामले में अनुशासनिक प्राधिकारी दूसरी नोटिस में, अपने अनन्तिम निष्कर्षों का विवरण भी देंगे। यदि आरोपित सेवक कोई अभ्यावेदन करता है तो उपलब्ध सामग्री सहित उस पर भी विचार करके अनुशासनिक प्राधिकारी उसके दोषी होने या न होने का निर्णय करेंगे एवं तदनुरूप अंतिम आदेश करेंगे। यदि अवसर देने के उपरान्त आरोपित सेवक कोई अभ्यावेदन नहीं करता है तो अनुशासनिक प्राधिकारी उपलब्ध सामग्री एवं जाँच रिपोर्ट पर विचार करके अंतिम आदेश करेंगे।

यदि राष्ट्रपति या राज्यपाल को अंतिम आदेश करना हो तो वह, आदेश करने से पूर्व, लोक सेवा आयोग से परामर्श करेंगे।

लोक सेवा आयोग से परामर्श

संविधान के अनुच्छेद 320, खण्ड [3] के उपखण्ड [ग] में उपबंध है कि-

अनुच्छेद 320

[1] ....

[2] ....

[3] यथास्थिति, संघ लोक सेवा आयोग या राज्य लोक सेवा आयोग से-

[क]..........

[ख]..........

[ग] ऐसे व्यक्ति पर, जो भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार की सिविल हैसियत में सेवा कर रहा है, प्रभाव डालने वाले, सभी अनुशासनिक विषयों पर, जिनके अंतर्गत ऐसे विषयों से संबंधित अभ्यावेदन या याचिकाएँ है,

[घ]..........

[ङ]..........

परामर्श किया जाए और इस प्रकार उसे निर्देशित किए गए किसी विषय पर तथा ऐसे किसी अन्य विषय पर, जिसे, यथास्थिति, राष्ट्रपति या उस राज्य का राज्यपाल उसे निर्देशित करे, परामर्श देने का लोक सेवा आयोग का कर्तव्य होगा :

परन्तु अखिल भारतीय सेवाओं के संबंध में तथा संघ के कार्यकलाप से संबंधित अन्य सेवाओं और पदों के संबंध में भी राष्ट्रपति तथा राज्य के कार्यकलाप से संबंधित अन्य सेवाओं और पदों के संबंध में राज्यपाल उन विषयों को विनिर्दिष्ट करने वाले विनियम बना सकेगा जिनमें साधारणतया या किसी विशिष्ट वर्ग के मामले में या किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में लोक सेवा आयोग से परामर्श किया जाना आवश्यक नहीं होगा।

[4] ....

[5] ....

संविधान के इस उपबंध के अनुरूप, लोक सेवा आयोग से परामर्श करने के संबंध में, विनियमावलियाँ विरचित की गई हैं। उत्तर प्रदेश पब्लिक सर्विस कमीशन [लिमिटेशन आफ फंक्शन्स] रेगुलेशन्स, 1954 के नियम 8 में लोक सेवा आयोग से, अनुशासनिक कार्यवाही में, परामर्श करने का उपबंध है। महादण्ड देने से पूर्व परामर्श करने संबंधी उपबंधों की चर्चा यहाँ की जा रही है।

यदि राज्यपाल के मूल आदेश से किसी सरकारी सेवक पर निम्नलिखित में से कोई महादण्ड अधिरोपित करना हो तो आदेश पारित करने से पूर्व लोक सेवा आयोग से परामर्श करना आवश्यक होगा--

[1] निचले पद पर या निचले समय वेतनमान में या समयमान वेतनमान में निचले प्रक्रम पर पदावनत करना,

[2] सेवा से हटाना,

[3] पदच्युत करना,

[4] पेंशन संबंधी नियमों के अधीन अनुमन्य अधिकतम पेंशन को घटाना या रोकना।

इस संबंध में नियम-8 में कई दृष्टान्त भी दिए गए हैं। नियम 8 के दूसरे दृष्टान्त में कहा गया है कि, एक तहसीलदार जिसे अधिष्ठायी रूप से उत्तर प्रदेश सिविल सर्विस [प्रशासनिक शाखा] में पदोन्नत किया गया हो तथा राज्यपाल उन्हें तहसीलदार के रैंक पर पदावनत करना चाहें तो उन्हें आदेश करने से पूर्व आयोग से परामर्श करना चाहिए। परन्तु यदि तहसीलदार सिर्फ स्थानापन्न डिप्टी कलेक्टर नियुक्त हुए हों तथा उनका कार्य असंतोषप्रद पाने के कारण राज्यपाल उन्हें तहसीलदार के अधिष्ठायी पद पर प्रत्यावर्तित करना चाहें तो ऐसा आदेश करने से पूर्व आयोग से परामर्श करना आवश्यक नहीं होगा। परन्तु तहसीलदार को स्थानापन्न डिप्टी कलेक्टर नियुक्त किया गया हो तथा उन्हें दुराचरण के लिए दोषी पाए जाने पर निचले पद पर पदावनत करना प्रस्तावित हो तो राज्यपाल को ऐसा आदेश करने से पूर्व आयोग से परामर्श करना होगा।

पाँचवे दृष्टान्त में कहा गया है कि कृषि निदेशक के अधीन अधीनस्थ सेवा का कोई अधिकारी सेवायोजित हुआ हो तथा निदेशक उसकी पदच्युति का आदेश करने के लिए सक्षम हों तो उन्हें उस अधिकारी को पदच्युत करने के पूर्व आयोग से परामर्श करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि पदच्युति का आदेश राज्यपाल को नहीं करना है।

छठवे दृष्टान्त में कहा गया है कि, उत्तर प्रदेश सिविल न्यायिक सेवा के एक परिवीक्षाधीन सदस्य को, उच्च न्यायालय की संस्तुति पर, परिवीक्षा अवधि समाप्त होने पर राज्यपाल द्वारा सेवोन्मुक्त करने का आदेश करना हो, तो आयोग से परामर्श करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि सेवोन्मुक्ति का यह आदेश पदच्युति या सेवा से हटाने के आदेश के समान नहीं है।

सातवे दृष्टान्त में कहा गया है कि एक व्यक्ति को आर॰टी॰ओ॰ के पद पर अस्थायी रूप से नियुक्त किया गया था। उसका कार्य संतोषजनक नहीं पाया गया तथा राज्यपाल उसे एक मास की नोटिस देकर उसकी सेवा समाप्त करना चाहते हों तो आयोग से परामर्श करना आवश्यक नहीं होगा, क्योंकि इस प्रकार की सेवासमाप्ति पदच्युति या सेवा से हटाने के समान नहीं है।

जब किसी अधीनस्थ सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित दण्डादेश के विरुद्ध अपील में, यदि नियमों के अधीन अपील अनुमन्य हो, राज्यपाल को आदेश करना हो तो आयोग से परामर्श करना अनिवार्य होगा।[127]

यदि अपील से अन्यथा किसी याचिका या अभ्यावेदन पर विचार करके राज्यपाल को कोई ऐसा आदेश पारित करना हो जिससे अधीनस्थ प्राधिकारी का आदेश रद्द या परिवर्तित हो रहा हो तो आयोग से परामर्श करना आवश्यक होगा। परन्तु, यदि राज्यपाल के प्रस्तावित आदेश से अधीनस्थ सक्षम प्राधिकारी को मात्र यह निदेश देना हो कि वह नये सिरे से या बाद के किसी स्तर से पुनः अनुशासनिक कार्यवाही शुरू करें तो आयोग से परामर्श करना आवश्यक नहीं होगा।[128]

127-नियम 8 (बी)

128-विनियम 8 (डी)

यदि उत्तर प्रदेश डिसिप्लिनरी प्रोसीडिंग्स [ऐडमिनिस्ट्रेटिव ट्रिब्यूनल] रूल्स, 1947 के अधीन राज्यपाल ने कोई दण्डादेश पारित किया हो तो आयोग से परामर्श करना आवश्यक नहीं होगा।[129]

यदि किसी मामले में, पहले कभी, आयोग अपनी राय दे चुका हो तथा कोई नया महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं उठता हो तो राज्यपाल को अंतिम आदेश करने से पूर्व आयोग से पुनः परामर्श करना आवश्यक नहीं होगा।

यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन [एक्जेम्प्शन फ्राम कन्सल्टेशन] रेगुलेशन्स, 1958 के विनियम 5 में उपबंध है कि यदि राष्ट्रपति अपने मूल आदेश द्वारा रैंक में अवनति करने, वेवश्यक सेवानिवृत्ति करने, पदच्युत करने या सेवा से हटाने का महादण्ड देना चाहें तो आदेश पारित करने से पूर्व संघ लोक सेवा आयोग से परामर्श करना आवश्यक होगा। परन्तु डिफेन्स सर्विस [सिविलियन] के किसी सदस्य को दण्ड देने से पूर्व आयोग से परामर्श करना आवश्यक नहीं है। आयोग से परामर्श के संबंध में अन्य उपबंध पूर्वोक्त उपबंधों के समान हैं।

उच्चतम न्यायालय ने उ0प्र0 राज्य बनाम मनबोधन लाल श्रीवास्तव[130] में कहा है कि, लोक सेवा आयोग से परामर्श करने के दो प्रयोजन हैं,

[1] लोक सेवाओं की पवित्रता बनाए रखना। सरकारी सेवक के विरुद्ध किए जाने वाले आदेश पर एक स्वतंत्र संस्था से खुले एवं निष्पक्ष मन से विचार करा लेने से लोक सेवाओं की पवित्रता सुनिश्चित रहती है।

[2] लोक सेवाओं के मनोबल को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण विषयों पर शासन को पक्षपात रहित सलाह प्राप्त करना।

अतः शासन का दायित्व है कि सरकारी सेवक के विरुद्ध दण्डादेश पारित करने से पूर्व आयोग से परामर्श कर ले। आयोग की राय

129-विनियम 8[2] का प्रथम परन्तुक
130-आ0इं0रि0 1957 सु0को0 912

शासन पर बाध्यकारी नहीं है। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि शासन, आयोग की पूर्णतया अवहेलना कर देवे। मात्र औपचारिकतावश ही सलाह नहीं लेनी होती है, वरन् शासन को इस दृष्टिकोण से सलाह लेनी चाहिए कि सेवक की दोषसिद्धि तथा प्रस्तावित दण्ड के बारे में अधिमूल्यन हेतु उचित सहयोग प्राप्त हो सके।

उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा है कि अनुच्छेद 320, खण्ड [3] के उपखण्ड [ग] के उपबंध आज्ञापक नहीं हैं। इसके अपालन से सरकारी सेवक को कोई वादकारण प्राप्त नहीं होता है। सरकारी सेवक को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि शासन को आयोग से परामर्श करने के लिए बाध्य करे।

दण्डादेश

न्याय की अपेक्षा है कि दण्ड दुराचरण के अनुरूप होना चाहिए, कम या अधिक नहीं होना चाहिए। दण्ड, आरोपित सेवक द्वारा किए गए आचरण से, बेमेल नहीं होना चाहिए, बल्कि अनुपातिक एवं समपरिणाम होना चाहिए।[131] दण्डादेश करने से पूर्व निम्नलिखित बातों पर विचार करना चाहिए;[132]

1. आरोपित सेवक की उम्र
2. उसकी परिपक्वता या प्रौढ़ता,
3. उस सेवक का पूर्वकृत,
4. उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि,
5. अभिप्रेरण,
6. दुराचरण का कारण या प्रयोजन,
7. उस सेवक की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियाँ,
8. दुराचरण कारित करने या कराने में आरोपित सेवक की भूमिका।

सुखबीर सिंह बनाम पुलिस उपायुक्त[133] के मामले में एक पुलिस कर्मचारी के विरुद्ध आरोप था कि उन्होंने मेस के बर्तन अस्थायी तौर

131-वेद प्रकाश गुप्ता बनाम मे० डेल्टन केबिल इण्डिया कं० [प्रा०] लि०-आ०इ०रि० 1984 सु०को० 914

132-भीम सिंह करतार सिंह बनाम कारागार अधीक्षक-1982[2] स०ला रि० 629 [गुजरात उच्च न्यायालय]

133-1984[2] स०ला रि० 149 [दिल्ली उच्च न्यायालय]

पर गबन कर लिए। जाँच में यह आरोप साबित हुआ तथा उसे पदच्युत कर दिया गया। दिल्ली उच्च न्यायालय ने कहा कि यह दुराचरण इतना गंभीर नहीं था जिसके लिए पदच्युति का दण्ड दिया जाए। यह दण्ड अत्यंत ही कठोर है तथा दुराचरण के अनुपातिक नहीं है।

बी०आर० सिंह बनाम भारत संघ[134] के मामले में सेवक के ऊपर आरोप था कि वह सात दिन तक कार्यालय में अनुपस्थित था फिर भी उसने उपस्थिति पंजिका पर उन तिथियों का हस्ताक्षर किया था। इस दुराचरण के लिए उसे पदच्युत कर दिया गया। लेकिन उच्चतम न्यायालय ने कहा कि यह दण्ड अनुपातिक नहीं है, यह सही है कि उस सेवक को दण्ड मिलना चाहिए परन्तु इस दुराचरण के लिए पदच्युति का दण्ड देना उपयुक्त नहीं है।

कहने का तात्पर्य यह है कि दण्ड न तो बहुत ही कम होना चाहिए, न ही बहुत कठोर होना चाहिए, बल्कि दुराचरण की प्रकृति एवं गंभीरता के अनुरूप ही दण्ड देना चाहिए। किसी सेवक के प्रथम एवं एकमात्र दुराचरण के लिए हल्का दण्ड देना चाहिए, लेकिन लगातार दुराचरण करने वाले सेवक को अपेक्षाकृत कठोर दण्ड देना चाहिए।[135]

सारांश यह है कि दण्ड दुराचरण की गंभीरता के अनुपातिक होना अनिवार्य है। यदि दण्ड बेमेल हो तो संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होगा एवं दण्डादेश दूषित हो जाएगा।[136]

दण्डादेश की संसूचना

पदच्युति या सेवा से हटाने का आदेश करने मात्र से वह प्रभावी नहीं होगा, जब तक कि आदेश संबंधित सेवक को संसूचित न कर दिया जाए।[137] आदेश संसूचित करने के लिए कार्यालय से उसका प्रेषण अनिवार्य है, आदेश की वास्तविक प्राप्ति महत्वपूर्ण नहीं है। आदेश जब तक प्रेषित नहीं होता संबंधित प्राधिकारी, यदि उचित समझें तो,

---

134-आ०ई०रि० 1990 सु०को० 1

135-बी०बी० पाण्डेय बनाम प्रधानाचार्य,के०जी०क्न०बी०-1989[58]एफ०एल०आर० 338 [इलाहाबाद उच्च न्यायालय]

136-भगतराम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य-1983[2] एस०सी० 323[सु०को०]

137-पंजाब राज्य बनाम अमर सिंह हरिका-आ०ई०रि० 1966 सु०को० 1313

इसमें परिवर्तन कर सकते हैं। परन्तु आदेश प्रेषित कर देने पर वह उनके नियंत्रण से परे हो जाता है तथा उसमें किसी परिवर्तन की संभावना नहीं रह जाती। अतः जैसे ही आदेश संबंधित सेवक को भेज दिया जाता है तभी यह माना जाता है कि आदेश संसूचित कर दिया गया है। यह महत्वहीन होता है कि उस सेवक ने आदेश कब प्राप्त किया।[138] निलम्बन आदेश की संसूचना का भी यही सिद्धान्त है। इस संदर्भ में पंजाब राज्य बनाम खेमीराम[138] का मामला उल्लेखनीय है, जिसमें खेमीराम, जो एक सरकारी सेवक था, सेवानिवृत्ति से पूर्व अवकाश पर था। उसका निलम्बन आदेश पारित किया गया जो दिनांक 31-7-1958 को टेलीग्राम करके उसे संसूचित किया गया। दिनांक 31-7-1958 के टेलीग्राम द्वारा उसे सूचना दी गई थी कि वह 2-8-1958 से निलम्बित रहेगा। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जब टेलीग्राम भेज दिया गया तभी से निलम्बन आदेश खेमीराम को संसूचित हुआ माना जाएगा। टेलीग्राम की वास्तविक प्राप्ति की तिथि महत्वहीन है।

अतः निलम्बन आदेश या कोई भी दण्डादेश तब तक प्रभावी नहीं होगा जब तक कि संबंधित सेवक को संसूचित न कर दिया जाए। कार्यालय से प्रेषित करने पर आदेश संसूचित हुआ माना जाता है।

दण्डादेश से व्यथित सरकारी सेवक अभ्यावेदन या अपील प्रस्तुत कर सकता है।

अपील या अभ्यावेदन

लघु दण्डादेश के विरुद्ध अभ्यावेदन तथा महादण्ड के विरुद्ध अपील करने का उपबंध, सामान्यतया, सभी नियमावलियों में होता है। सी-सी-ए- रूल्स, 1930 के तेरहवें भाग में अपील या अभ्यावेदन के उपबंध, नियम 56 से 70 में हैं। व्यथित सरकारी सेवक लघु दण्डादेश के विरुद्ध अभ्यावेदन, दण्डादेश की सूचना मिलने के छः मास के अन्दर, प्रस्तुत कर सकता है।[139] यह अभ्यावेदन अनुशासनिक

138-आ॰इ॰आ॰रि॰ 1970 सु॰को॰ 214
139-नियम 56 का टिप्पण,सी॰सी॰ए॰ रूल्स,1930

प्राधिकारी से अगले उच्च प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा। अभ्यावेदन उचित माध्यम से ही प्रस्तुत किया जाना चाहिए। अभ्यावेदन प्राप्त होने पर सक्षम प्राधिकारी जाँच पत्रावली पर उपलब्ध संपूर्ण सामग्री एवं अभ्यावेदन पर विचार करके निम्नलिखित में से कोई भी आदेश कर सकते हैं :-

1. अभ्यावेदन स्वीकार करके दण्डादेश निरस्त करने का आदेश, या
2. अभ्यावेदन खारिज करके दण्डादेश पुष्ट करने का आदेश, या
3. दण्डादेश घटाने या परिवर्तित करने का आदेश, या
4. अन्य कोई आदेश जो, उस मामले में, उचित समझें।

अभ्यावेदन का निस्तारण करने से पूर्व व्यथित सेवक को व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर देने का कोई उपबंध नहीं है, परन्तु यदि वह व्यक्तिगत सुनवाई की याचना करे तो उचित होगा कि उसे व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर दिया जाए।

महादण्डादेश के विरूद्ध अपील, अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत की जा सकती है, जो दण्डादेश की सूचना मिलने के छः मास के अंदर प्रस्तुत की जा सकती है।[140] परन्तु उत्तर प्रदेश के अधीनस्थ सेवा के सदस्यों के विरूद्ध दण्डादेश किया गया हो तो वे उसकी सूचना मिलने के तीन माह के अंदर, यथास्थिति, अभ्यावेदन या अपील प्रस्तुत कर सकते हैं।[141]

केन्द्रीय या संघीय सेवा के सदस्यों, रेलवे सेवकों तथा अखिल भारतीय सेवा के सदस्यों द्वारा दण्डादेश के विरूद्ध अपील प्रस्तुत करने के लिए पैंतालीस दिनों की अवधि तत्संबंधी नियमों में नियत की गई है। जिस तिथि को दण्डादेश के आदेश की प्रतिलिपि दी गई हो उसके पैंतालीस दिनों के अंदर वह सेवक अपील प्रस्तुत कर सकता है।[142] यदि इस अवधि के उपरान्त अपील प्रस्तुत की गई हो तथा देरी का

140-नियम 64, सी०सी०ए० रूल्स, 1930

141-पनिशमेण्ट ऐण्ड अपील रूल्स फार सबोर्डिनेट सर्विसेज यू०पी०, द्वितीय अधिसूचना सं० 2628/II-264 दिनांकित 3-8-1932 का नियम । एवं 8

142-सेन्ट्रल सी०सी०ए० रूल्स, 1965 का नियम 25, रेलवे सर्विस (डिसिप्लिन ऐण्ड अपील) रूल्स, 1968 का नियम 20 तथा आल इण्डिया सर्विसेज (डिसिप्लिन ऐण्ड अपील) रूल्स, 1967 का नियम 17

समुचित कारण बताया गया हो तो अपीलीय प्राधिकारी देरी माफ करके अपील पर विचार कर सकते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति, जो अपील प्रस्तुत कर रहा हो, अपने नाम से अलग-अलग अपील प्रस्तुत करेगा।[143] अपील में निम्नलिखित विवरण लिखा जाएगा-

1. सभी तात्विक कथन,
2. सभी तर्क, जिसका अपीलार्थी सहारा ले रहा हो।

परन्तु इसमें कोई भी अशिष्ट, रूखा या निरादरपूर्ण एवं अशोभनीय या असंगत बातें नहीं लिखी जाएंगी।[144] प्रत्येक अपील कार्यालयाध्यक्ष तथा दण्डादेश करने वाले प्राधिकारी के माध्यम से प्रस्तुत की जाएगी।[144]

दण्डादेश करने वाले प्राधिकारी से उच्च अधिकारी निम्नलिखित परिस्थितियों में अपील रोकने का आदेश कर सकते हैं :-[145]

1. यदि वह अपील, उस मामले में, नियमों के अधीन अनुमन्य न हो, या
2. अपील में तात्विक कथन एवं तर्क न हों, अथवा असंगत, अशोभनीय या निरादरपूर्ण कथन किए गए हों, या
3. यदि अपील छः मास की नियत अवधि के उपरान्त प्रस्तुत की गई हो तथा देरी का कोई युक्तियुक्त कारण न बताया गया हो, या
4. यदि अपील पूर्व निस्तारित अपील की पुनरावृत्ति हो तथा कोई नया तथ्य या परिस्थितियाँ मामले पर पुनः विचार के लिए न बताई गई हों, या
5. यदि अपील ऐसे प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत की गई हो जिनके समक्ष नियमों के अधीन, अपील होती ही न हो।

अपील रोकने का सकारण आदेश किया जाना चाहिए तथा इस आदेश की सूचना अपीलार्थी को दी जाएगी। यदि, सभी तात्विक

143-नियम 62 सी०सी०ए० रूल्स
144-नियम 63, सी०सी०ए० रूल्स
145-नियम 64, सी०सी०ए० रूल्स

कथन एवं तर्क न करने के कारण अथवा अशोभनीय एवं अनादरपूर्ण भाषा का प्रयोग करने के कारण अपील रोकी गई हो तो अपील रोकने के आदेश की सूचना अपीलार्थी को मिलने की तिथि से एक माह के अन्दर उक्त त्रुटियों को शुद्ध करके अपील पुनः प्रस्तुत की जा सकेगी।[146]

सक्षम प्राधिकारी द्वारा अपील रोकने के आदेश के विरुद्ध कोई अपील प्रस्तुत नहीं की जाएगी।[147] अपील रोकने वाले प्राधिकारी द्वारा अपील रोकने के तथ्य एवं कारणों का त्रैमासिक विवरण अपीलीय प्राधिकारी को प्रस्तुत किया जाएगा।[146] अपीलीय प्राधिकारी, अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा रोकी गई किसी भी अपील को मंगा सकते हैं तथा उस पर विचार करके ऐसा आदेश कर सकते हैं जो वह उचित समझें।[148]

अपीलीय प्राधिकारी, दण्डादेश के विरुद्ध प्रस्तुत अपील पर विचार करते समय, निम्नलिखित बातों पर विचार करेंगे-[149]

1. क्या वे तथ्य, जिन पर दण्डादेश आधारित है, साबित हुए हैं?

2. क्या जो तथ्य साबित हुए हैं वे दण्ड देने के लिए समुचित आधार प्रदान करते हैं?

3. क्या दण्ड अत्यधिक है, या पर्याप्त है, या अनुपयुक्त है?

इन सभी बातों पर विचार करने के उपरान्त अपीलीय प्राधिकारी ऐसा आदेश करेंगे जो वह उचित समझें।

अपील में, आरोपित सेवक को "वैयक्तिक सुनवाई" का अवसर देना आवश्यक नहीं है, जब तक कि नियमों के अधीन ऐसी अपेक्षा न की गई हो।[150]

अपील पर विचार करके अपीलीय प्राधिकारी निम्नलिखित में से कोई भी आदेश कर सकते हैं-

1. दण्डादेश को पुष्ट, परिवर्तित या निरस्त करने का आदेश, या

2. पुनः जाँच करने का आदेश, या

146-नियम 63, सी0सी0ए0 रूल्स

147-नियम 65, सी0सी0ए0 रूल्स

148-नियम 68, सी0सी0ए0 रूल्स

149-नियम 59, सी0सी0ए0 रूल्स

150-मदन लाल बनाम भारत संघ 1975|2|स0ला रि0 286|दिल्ली उ0न्या0|

3· दण्ड घटाने का आदेश, या

4· अन्य कोई ऐसा आदेश, जो वह उस मामले में उचित समझें।

राज्य सरकार, स्वयं या अन्यथा, अपने अधीन किसी प्राधिकारी द्वारा निर्णीत किए गए किसी मामले के अभिलेखों को मंगाकर उस पर विचार कर सकती है तथा निम्नलिखित में से कोई भी आदेश कर सकती है-[151]

1· उस प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को पुष्ट, परिवर्तित या निरस्त करने का आदेश, या

2· उस मामले में पुनः जाँच करने का आदेश, या

3· दण्ड को घटाने या बढ़ाने का आदेश, या

4· ऐसा कोई आदेश जो उस मामले में उचित प्रतीत हो।

परन्तु जहाँ दण्ड बढ़ाना प्रस्तावित हो वहाँ ऐसा आदेश करने से पूर्व उस सेवक को सुनवाई का अवसर दिया जाएगा।[151]

विभागीय जाँच न्यायिक-कल्प प्रकृति की होती है जिसमें पारित आदेश, "सकारण" होना अनिवार्य है। अपीलीय प्राधिकारी का आदेश भी सकारण होना चाहिए।[152]

वह प्राधिकारी, जिनके आदेश के विरुद्ध अपील प्रस्तुत की गई हो, अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश का क्रियान्वयन एवं अनुपालन करेंगे।[153]

151-नियम 69

152-मै0 महावीर प्रसाद बनाम उ0प्र0 राज्य-आ0ई0रि0 1970 सु0को0 1302, रघ0के0 कन्ना बनाम भारत संघ-1971[1] स0ला रि0 618[पंजाब हरियाणा उ0न्या0]तथा रघ0 सोराई स्वामी बनाम भारत संघ-1980 स0ला ज0 385[कर्नाटक उ0न्या0]

153-नियम 61

विभागीय जाँच की अपेक्षायें

हमारे देश में "विधि का शासन" है, जिसमें संविधान के अधीन राज्य का प्रत्येक अंग "विधि सम्मत शासन" द्वारा विनियमित एवं नियंत्रित होता है। उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि, विधि सम्मत शासन के अभिन्न अंग नैसर्गिक न्याय का नियम, निष्पक्षता का नियम, कारण अभिलिखित करने का नियम तथा विभेद एवं मनमानापन विरोधी नियम है।[1] विधि सम्मत शासन द्वारा राज्य के कार्यकारी अपने कार्यों का निष्पादन उचित एवं न्यायसंगत ढंग से करने के लिए उत्तरदायी होते हैं। कार्य पालिका या उसके अधिकारीगण अपनी शक्तियों का प्रयोग मनमाने ढंग से नहीं कर सकते, उनका प्रत्येक कार्य "कारणयुक्त" तथा "मनमानापन रहित" होना अनिवार्य है। यह विधि सम्मत शासन का मर्म तथा अत्यावश्यक शर्त है, जो भारत का संविधान के अनुच्छेद 14 में अंगीकृत है।

> अनुच्छेद 14:- विधि के समक्ष समता- राज्य, भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।

अनुच्छेद 14 प्रत्येक व्यक्ति को समता का मूल अधिकार प्रदान करता है तथा राज्य के मनमाने कार्यों एवं विभेदकारी व्यवहार का सशक्त विरोधी है। यह अनुच्छेद, सामान्य रूप से, समता का अधिकार प्रदान करता है, जबकि अनुच्छेद 16[1] लोक नियोजन एवं नियुक्ति संबंधी विषयों में समता का अधिकार इस प्रकार प्रदान करता है,

> अनुच्छेद 16- लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता-
>
> [1] राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी।

1-महावीर आटो स्टोर बनाम भारतीय तेल निगम-1990[3] मु0को0के0 752

अनुच्छेद 16[1] में अभिव्यक्त "नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों" की उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई व्याख्या से यह सुप्रतिष्ठित है कि नियोजन संबंधी विषयों में वेतन, वेतन-वृद्धि, अवकाश, ग्रेच्युटी, पेंशन तथा सेवानिवृत्ति-आयु आदि समाविष्ट होती है, तथा नियुक्ति संबंधी विषयों में सभी सेवा-शर्तें समाविष्ट होती हैं तथा सेवा-शर्तों में पद धारण करने का अधिकार, नियुक्ति से सेवानिवृत्ति तक के नियम तथा उसके उपरान्त पेंशन पाने का अधिकार, तथा आचरण एवं अनुशासनिक कार्यवाईयाँ भी समाविष्ट होती हैं।[2]

संविधान का अनुच्छेद 14, समता के अधिकार का "वंश" है तो अनुच्छेद 16, "जाति" है, इन दोनों का प्रारम्भिक उद्देश्य समता का अधिकार प्रदान करना तथा विभेद दूर करना है। समता, विभेदकारी व्यवहार एवं मनमानेपन का प्रबल विरोधी है। राज्य के कार्यों में समता सुनिश्चित करने तथा विभेद व मनमानेपन से बचने के लिए, नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का अनुपालन आवश्यक है। उच्चतम न्यायालय[3] का स्पष्ट मत है कि नैसर्गिक न्याय का सिद्धान्त अनुच्छेद 14 में गारण्टीकृत समता के अधिकार का अभिन्न अंग है। नैसर्गिक न्याय के नियमों का उल्लंघन करने से मनमानापन प्रकट होता है, जो "विभेद" के समान है तथा विभेदकारी कार्य या व्यवहार से संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होता है। अतः नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त का उल्लंघन करने से अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होता है, जिसके परिणामस्वरूप वह कार्य असंवैधानिक एवं शून्य हो जाता है। यद्यपि अनुच्छेद 14 नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का एकमात्र स्वरूप नहीं है परन्तु यह इतनी गारण्टी देता है कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन करने वाला कोई कानून या शासकीय कार्य विखण्डित किया जाएगा। अतः अनुच्छेद 14 एवं 16 की अपेक्षा है कि सरकारी सेवाओं में नियोजन या नियुक्ति, अर्थात्, सेवा संबंधी विषयों का विनिश्चय, नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का अनुपालन करके किया जाए।

2-जनरल मैनेजर दक्षिणी रेलवे बनाम रंगाचारी-1962 सु०को०रि० 586, म०प्र० राज्य बनाम भारदूल सिंह-1970[3] सु०को०रि० 302, तथा डी०टी०सी० बनाम डी०टी०सी० मजदूर कांग्रेस-1991[1] सप्ला ज० 56[सु०को०]

3-भारत संघ बनाम तुलसी राम पटेल-आ०इं०रि० 1985 सु०को० 1416, तथा डी०टी०सी० बनाम डी०टी०सी० मजदूर कांग्रेस-1991[1] सप्ला ज० 56[सु०को०]

लोक नियोजन एक राष्ट्रीय सम्पत्ति है जिसमें सभी नागरिक समान रूप से अवसर पाने के अधिकारी हैं। समाज के मध्यम वर्गीय, निम्न मध्यमवर्गीय एवं निम्न वर्गीय व्यक्ति तथा उनके परिवारजन, सामान्यतया, नियोजन पर निर्भर होते हैं तथा ऐसे अधिसंख्य व्यक्तियों की आजीविका का साधन एवं स्रोत उनका नियोजन ही होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सरकारी सेवा में पद धारण करने का अधिकार, सेवक की "जीविका का अधिकार" है। यह सुप्रतिष्ठित है कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन "प्राण के अधिकार" में "जीविका का अधिकार" समाविष्ट है।[4] अनुच्छेद 21 में उपबंध है कि, "किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।" अतः सरकारी सेवक को उसकी "जीविका के अधिकार" से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जा सकता है। यह प्रक्रिया युक्तियुक्त, उचित एवं न्यायसंगत होनी अनिवार्य है।[5] विभागीय जाँच विधि द्वारा स्थापित ऐसी प्रक्रिया है जिसके परिणामस्वरूप सरकारी सेवक की सेवा समाप्त की जा सकती है, अर्थात् उसे जीविका के अधिकार से वंचित किया जा सकता है। अतः जाँच की प्रक्रिया युक्तियुक्त, उचित एवं न्यायसंगत होनी अनिवार्य है, जिसके लिए नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का अनुपालन अनिवार्य है।

सारांश यह कि संविधान के अनुच्छेद 14, 16 एवं 21 के प्रभाव से विभागीय जाँच में, जिसके परिणामस्वरूप सरकारी सेवक की सेवा, अर्थात् जीविका का अधिकार, समाप्त की जा सकती है, नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का अनुपालन करना अपेक्षित है। इसके अतिरिक्त, संविधान के अनुच्छेद 311[2] में, सरकारी सेवक को जीविका के अधिकार से वंचित करने की विशिष्ट प्रक्रिया नियत है। अनुच्छेद 311[2] में भी नैसर्गिक न्याय का सिद्धान्त समाविष्ट है। अतः विधि की सुप्रतिष्ठित अपेक्षा है कि विभागीय जाँच के संचालन में नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का अनुपालन किया जाए।[6]

4-ओलगा टैलिस बनाम बम्बई म्यूनिसिपल कारपोरेशन-आ०इ०रि० 1986,सु०को० 180
5-मेनका गाँधी बनाम भारत संघ-आ०इ०रि० 1975 सु०को० 597
6-भारत संघ बनाम टी०आर० वर्मा-आ०इ०रि० 1957सु०को० 882

नैसर्गिक न्याय का सिद्धान्त

नैसर्गिक न्याय का तात्पर्य "कार्रवाईयों" में ईमानदारी से है। आरम्भ में, न्यायिक निर्वचन की प्रक्रिया से, नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व करने वाले दो नियम विकसित किए गए। प्रथम नियम है, "नीमो जुडेक्स इनकाजा सुआ",[7] अर्थात् कोई भी व्यक्ति अपने मामले का स्वयं निर्णायक नहीं हो सकता। द्वितीय नियम, "आडी आल्ट्रम पार्टम"[8], अर्थात् दूसरे पक्षकार को भी सुनो, का है।[9] इन दोनों नियमों के परिणामस्वरूप यह अभिव्यक्ति प्रचलित हुई है कि "न्याय सिर्फ किया ही नहीं जाना चाहिए बल्कि ऐसा प्रतीत भी हो कि न्याय किया गया।"

बाद में,ए0के0 क्रेपक के केस[10] में उच्चतम न्यायालय ने एक तीसरा नियम भी जोड़ा है कि न्यायिक-कल्प जाँच सद्भावपूर्वक, तथा बिना किसी पूर्वग्रह के, की जानी अनिवार्य है।

एस0एन0 मुकर्जी बनाम भारत संघ,[11] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने चौथा सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए कहा है कि प्रशासनिक प्राधिकारियों को न्यायिक या न्यायिक-कल्प शक्तियों का प्रयोग करते समय कारण अभिलिखित करना अनिवार्य है। यह भी नैसर्गिक न्याय का एक नियम है। इन नियमों का विस्तार विशेष कानूनी ढाँचा, जिसके अधीन प्रशासनिक प्राधिकारी को अधिकारिता प्रदान की गई हो, पर निर्भर करता है। किसी प्रशासनिक प्राधिकारी को न्यायिक अथवा न्यायिक-कल्प शक्ति प्रदान करते समय विधान-मण्डल यह विचार कर सकता है कि वृहद् लोकहित में, प्रशासनिक प्राधिकारी को अपने आदेश का कारण अभिलिखित करना उचित नहीं होगा एवं तदनुरूप विधान-मण्डल "कारण" अभिलिखित करने से छूट दे सकता है। कानूनी उपबंध में इसका स्पष्ट रूप से उल्लेख करके ऐसा किया जा सकता है तथा कानून के उपबंध, ढाँचा एवं विषयवस्तु की प्रकृति से आवश्यक विवक्षा द्वारा भी नैसर्गिक न्याय के नियमों का प्रवर्तन वर्जित किया जा सकता है। यदि लोक हित में कारण अभिलिखित करना उचित न हो तो कारण अभिलिखित करने की आवश्यकता का परित्याग किया जा सकता है।

---

7. Nemo judex in causa sua.
8. Audi Alteram Partem
9- मैनका गाँधी बनाम भारत संघ-आई0आर0 1975 सु0को0 597
10-ए0के0 क्रेपक बनाम भारत संघ-आई0आर0 1970 सु0को0 150
11-1990 क्रि0 ला ज0 2148

सारांश यह कि प्रत्येक प्रशासनिक प्राधिकारी जब भी न्यायिक अथवा न्यायिक-कल्प कार्य करे, तब वे अपने विनिश्चय के कारण अभिलिखित करें, जब तक कि कानून में स्पष्टतः या आवश्यक विवक्षा से "कारण अभिलिखित" करने की आवश्यकता का परित्याग न कर दिया गया हो।

प्रशासनिक प्राधिकारी के विनिश्चय का कारण अभिलिखित करने की आवश्यकता का प्रयोजन निम्नवत है-

1. विनिश्चय करने की प्रक्रिया में निष्पक्षता सुनिश्चित करना,
2. निरंकुशता की संभावना से बचना,
3. प्राधिकारी द्वारा विवेक प्रयोग करने की गारण्टी।

यह उल्लेखनीय है कि प्रशासनिक प्राधिकारी के विनिश्चय के कारण इतने विस्तृत होने अपेक्षित नहीं हैं, जितने किसी न्यायालय के निर्णय में होने अपेक्षित हैं। विनिश्चय के कारणों की प्रकृति एवं विस्तार प्रत्येक केस के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर निर्भर होगी। आवश्यक यह है कि वे कारण सुस्पष्ट एवं सुव्यक्त हों, जिससे यह जाहिर हो कि विवादित विषय पर संबंधित प्राधिकारी ने सम्यक् विचार कर लिया है।

मूल अथवा प्रथम स्तर पर पारित किए जाने वाले आदेश के कारण अभिलिखित करने की अधिक आवश्यकता होती है। अपीलीय अथवा पुनर्विचार करने वाले प्राधिकारी यदि उस आदेश के कारणों से सहमत होकर आदेश की पुष्टि करें तब उन्हें इसके लिए अलग से कारण अभिलिखित करना आवश्यक नहीं होता है।

अतः यह सुप्रतिष्ठित है कि राज्य या राज्य के परिकरण का प्रत्येक कार्य, जो कार्यपालक शक्ति का प्रयोग करके किया जाए, कारणयुक्त होना अनिवार्य है।[12]

अतः नैसर्गिक न्याय के अद्यतन सिद्धान्त निम्नवत हैं:-

[1] कोई भी व्यक्ति अपने मामले का स्वयं निर्णायक नहीं हो सकता।

12-महावीर आटो स्टोर बनाम भारतीय तेल निगम-1990[3] सु०को०के० 752

(2) किसी व्यक्ति के विरुद्ध आदेश करने से पूर्व उसे सुनवाई का अवसर दिया जाए।

(3) निर्णायक पूर्वग्रह के बगैर तथा सद्भावपूर्वक कार्य करे।

(4) आदेश का कारण अभिलिखित किया जाए।

नैसर्गिक न्याय के नियमों का उद्देश्य "न्याय विफल होने से रोकना" है। ये नियम न्यायिक तथा न्यायिक-कल्प कार्यवाईयों में तो लागू होते ही हैं, प्रशासनिक कार्यवाईयों में भी लागू होते हैं। न्यायिक-कल्प जाँच तथा प्रशासनिक जाँच, दोनों, का उद्देश्य यही होता है कि न्यायसंगत विनिश्चय पर पहुँचें। प्रशासनिक कार्यवाईयों में भी "निष्पक्षता", एवं "मनमानेपन का बहिष्करण", होना तथा उचित एवं न्यायसंगत ढंग से कार्य करना, अनिवार्य है।[13] यह सुप्रतिष्ठित विधि है कि प्रशासनिक कार्यवाही में, जो सिविल दुष्परिणाम उत्पन्न करती हो, नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त अनिवार्य रूप से लागू होते हैं।[14] अर्थात् किसी प्रशासनिक आदेश से सिविल दुष्परिणाम उत्पन्न होते हों तो ऐसा प्रशासनिक आदेश भी नैसर्गिक न्याय के नियमों के अनुपालन के उपरान्त ही पारित किए जाने अनिवार्य हैं।[15] विधिसम्मत शासन का अंतर्निहित सिद्धान्त है कि सिविल दुष्परिणाम उत्पन्न करने वाला आदेश, नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का अनुपालन करके ही, किया जाए।[16]

सिविल दुष्परिणाम का तात्पर्य किसी व्यक्ति के सिविल या वैयक्तिक अधिकारों को क्षति पहुँचाने से ही नहीं अपितु सिविल स्वतंत्रताओं की हानि, तात्विक बंधन एवं गैर धनीय हानियों से भी है। ऐसा कोई भी परिणाम, जो किसी नागरिक के "सिविल जीवन" पर प्रतिकूल प्रभाव डालता हो, "सिविल दुष्परिणाम" माना जाएगा।[17]

उच्चतम न्यायालय ने स्वदेशी कॉटन मिल्स बनाम भारत संघ,[18] के मामले में कहा है कि यदि किसी कानून में प्रभावित व्यक्ति को निर्णय से पूर्व सुनवाई का अवसर देने का कोई उपबंध न हो तथा प्राधिकारी के प्रशासनिक निर्णय से "सिविल दुष्परिणाम" उत्पन्न होते हों एवं उस

13-मैनेजमेन्ट, मेसर्स एम०एस० नेलित भारत इंजीनियरिंग कम्पनी लि० बनाम बिहार राज्य-1990(2)सु०को०के० 48

14-मेनका गाँधी बनाम भारत संघ-आ०इ०रि० 1975 सु०को० 597

15-उड़ीसा राज्य बनाम डा० बीनापाणि देई-आ०इ०रि० 1967 सु०को० 1269

16-रघुनाथ ठाकुर बनाम बिहार राज्य-आ०इ०रि० 1989 सु०को० 620

17-मोहिन्दर सिंह गिल बनाम मुख्य चुनाव आयुक्त, नई दिल्ली-आ०इ०रि० 1978 सु०को० 851

18-आ०इ०रि० 1981 सु०को० 818

निर्णय के विरुद्ध गुणागुण के पुनर्विलोकन या अपील का भी कोई उपबंध न हो, तो ऐसे प्रशासनिक निर्णय के पूर्व प्रभावित व्यक्ति को "सुनवाई का अवसर" दिया जाना कानून में उपधारित होगा। तुलसी राम पटेल के मामले[19] में कहा गया है कि नैसर्गिक न्याय का सिद्धान्त न्यायिक विवेक की जड़ों में समा चुका है। यह सिद्धान्त न्यायिक, न्यायिक-कल्प या प्रशासनिक प्राधिकारी के प्रत्येक विनिश्चय करने संबंधी कार्य में अंतर्निहित है। जहाँ किसी कानून में नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का अनुपालन एक विशेष ढंग से करना कहा हो तो उस कानून के अधीन कार्य करने वाले प्राधिकारी को उसी ढंग से नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का अनुपालन करना होता है, किसी अन्य ढंग से नहीं। यदि नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का अनुपालन करने के बारे में कानून में कुछ न कहा गया हो अथवा कानून मौन हो तो यही माना जाएगा कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का अनुपालन करना है। अर्थात् नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के अंतर्निहित होने की उपधारणा होती है, जिसे कानून में स्पष्ट शब्दों अथवा आवश्यक विवक्षा द्वारा अपवर्जित किया जा सकता है।

अतः जिस विषय से "सिविल दुष्परिणाम" उत्पन्न होते हों, उन के बारे में निर्णय लेने वाले प्राधिकारी के लिए अनिवार्य है कि वह संबंधित व्यक्ति को सुनवाई का अवसर प्रदान करें। किसी प्राधिकारी के मनमाने ढंग से शक्ति प्रयोग से प्रत्येक नागरिक को सुरक्षा प्रदान की गई है। यदि विनिश्चय करने की शक्ति से किसी व्यक्ति के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने वाला हो तो उस शक्ति का प्रयोग करने में न्यायिक ढंग से कार्य करने का दायित्व अंतर्निहित होता है।[20]

नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त कठोर नहीं, अपितु लचीले एवं नमनीय हैं। कानून तथा कानूनी नियम द्वारा इन सिद्धान्तों को अंगीकृत एवं परिवर्तित किया जा सकता है। नैसर्गिक न्याय का कौन-सा विशेष नियम संबंधित मामले में लागू होगा, कौन-सा नहीं?, इसका उत्तर उस केस के तथ्यों, परिस्थितियों, उस कानून का ढाँचा जिसके अधीन जाँच की

19-आ०इ०रि० 1985 सु०को० 1416
20-उड़ीसा राज्य बनाम डा० बीनापाणि देई-आ०इ०रि० 1967 सु०को० 1269

जा रही हो तथा अभिकरण की संरचना पर निर्भर होता है।[21] यदि परिस्थितियाँ एक समान न हों तो ये सिद्धान्त समान रूप से लागू नहीं होते। कानून द्वारा दी गई शक्ति का प्रयोग नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के अनुरूप किया जाए या नहीं?, इसका उत्तर शक्ति प्रदान करने वाले उपबंध के स्पष्ट शब्दों, प्रदत्त शक्ति की प्रकृति, शक्ति प्रदान करने के प्रयोजन तथा शक्ति के प्रयोग के प्रभाव पर निर्भर होता है।[22]

तुलसी राम पटेल के मामले,[23] में उच्चतम न्यायालय ने अवधारणा किया है कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों को परिवर्तित किया जा सकता है तथा अपवादिक मामलों में उनका प्रवर्तन वर्जित भी किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप, जे0 महापात्रा एण्ड कं0 बनाम उड़ीसा राज्य,[24] के मामले में कहा गया है कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त का, कि कोई व्यक्ति अपने मामले का निर्णायक नहीं हो सकता, अपवाद "आवश्यकता का सिद्धान्त" है। इसी प्रकार "दूसरे पक्ष को सुनो", नियम के संबंध में सुप्रतिष्ठित सिद्धान्त है कि जहाँ आदेश पारित करने से पूर्व सूचना देने तथा सुनवाई का अवसर देने का अधिकार कार्यवाही में बाधा डालता हो, वहाँ उस अधिकार को अपवर्जित किया जा सकता है। जहाँ कार्यवाही की प्रकृति, उसके उद्देश्य तथा सुसंगत कानूनी उपबंधों की योजना से सुनवाई के अधिकार का अपवर्जन अपेक्षित हो वहाँ भी इस अधिकार का अपवर्जन किया जा सकता है। यदि सुनवाई के अधिकार के प्रवर्तन से प्रशासनिक प्रक्रिया ठप हो जाए अथवा जहाँ तात्कालिक कार्यवाई करने की आवश्यकता हो वहाँ भी इस नियम का प्रवर्तन वर्जित किया जा सकता है।[25] इस संदर्भ में, हीरा नाथ मिश्रा एवं अन्य बनाम प्रधानाचार्य, राजेन्द्र मेडिकल कालेज, राँची,[26] का मामला एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है, जिसके तथ्य इस प्रकार हैं, अपीलार्थीगण मेडिकल कालेज में द्वितीय वर्ष के छात्र थे तथा छात्रावास में रहते थे। छात्राओं का अलग छात्रावास था। दिनांक 10/11 जून, 1972 की रात में कालेज के कुछ छात्र, छात्राओं के छात्रावास की चारदीवारी पर बैठे हुए थे। बाद में वे उस छात्रावास के कम्पाउण्ड में नंगे घूमते हुए देखे गए। वे कुछ लड़कियों

21-ज्ञ0के0 गार्ग बनाम केरल विश्वविद्यालय-आ0ई0आर0 1969 सु0को0 198
22-भारत संघ बनाम जे0एन0 सिन्हा-आ0ई0आर0 1971 सु0को0 40
23-आ0ई0आर0 1985 सु0को0 1416
24-आ0ई0आर0 1984 सु0को0 1572
25-मेनका गाँधी बनाम भारत संघ-आ0ई0आर0 1975 सु0को0 597
26-1973[1] सु0को0के0 805

के कमरों की खिड़कियों के पास गए तथा एक छात्रा का हाथ खींचने का भी प्रयास किया। पाँच छात्र पाइप के सहारे छात्रावास की छत पर चढ़ गए, जहाँ कुछ छात्राएं पढ़ रही थीं। उन्होंने शोर मचाया तब वे छात्र भाग गए। छात्राओं ने चार छात्रों को पहचाना, जिनमें से तीन अपीलार्थी हैं तथा चौथे श्री उपेन्द्र प्रसाद सिंह थे। दिनांक 14·6·1972 को 36 छात्राओं ने प्रधानाचार्य को उक्त घटना के बारे में परिवाद-पत्र दिया, जिन्होंने तीन सदस्यीय जाँच कमेटी नियुक्त की। दिनांक 15·6·1972 को सायं 4·30 बजे जाँच कमेटी ने चारों छात्रों को एक-एक करके बुलाकर पूछताछ की, तथा प्रत्येक को परिवाद की विषयवस्तु से अवगत कराया। कमेटी ने यह ध्यान रखा कि परिवाद करने वाली छात्राओं का नाम न बताया जाए। छात्रों को आरोप-पत्र भी दिए गए। छात्रों ने अलग-अलग लिखित उत्तर दिए, जिसमें उक्त घटना से इंकार किया। छात्रों को बुलाने से पूर्व, जाँच कमेटी ने परिवाद करने वाली छात्राओं में से दस छात्राओं को बुलाकर उनका बयान लिख लिया था। ये बयान आरोपित छात्रों के समक्ष नहीं लिये गए थे। छात्रों ने साक्ष्य देने की कोई मंशा जाहिर नहीं की थी। इस जाँच के उपरान्त कमेटी ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें चार छात्रों को दोषी पाया गया। इस रिपोर्ट के आधार पर प्रधानाचार्य ने चारों छात्रों को मेडिकल कालेज से दो शैक्षिक सत्रों के लिए निष्कासित कर दिया। जिसके विरुद्ध उच्च न्यायालय में रिट याचिका प्रस्तुत की गई, जो खारिज हो गई।

अपीलार्थीगण का मुख्य तर्क यह था कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का पालन नहीं किया गया। उनके पीठ पीछे जाँच की गई। साक्षियों के बयान उनके समक्ष नहीं लिए गए तथा उनको जिरह करने का अवसर भी नहीं दिया गया।

उच्चतम न्यायालय ने कहा कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त अनमनीय नहीं हैं। विभिन्न परिस्थितियों में ये सिद्धान्त भिन्न-भिन्न रूपों में लागू किए जा सकते हैं। भारत संघ बनाम पी०के० रॉय[7], में दी गई निर्णयज

[27] आ०इं०रि० 1968 सु०को० 850

विधि का उल्लेख करते हुए कहा कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों को "स्ट्रेट जैकेट" में बन्द नहीं रखा जा सकता है। यह कोई कठोर फार्मूला नहीं है। इसका लागू होना विभिन्न परिस्थितियों व बातों पर निर्भर करता है। छात्राओं ने जो परिवाद प्रधानाचार्य को किया था वह कालेज के अनुशासन से तो संबंधित था ही, साथ-ही-साथ छात्रावास में रहने वाली छात्राओं की सुरक्षा से भी संबंधित था। अतः प्रधानाचार्य का दायित्व था कि उपयुक्त जाँच करके उपद्रवी छात्रों को दण्डित करते। परन्तु यह जाँच न तो पुलिस से कराई जा सकती थी और न ही नियमित अधिकरण की ही तरह जाँच की जा सकती थी। छात्राओं को अपनी प्रतिष्ठा के प्रति भी भय बना रहता और वे सहयोग नहीं करती। यदि आरोपित छात्रों के समक्ष बयान देने के लिए छात्राओं को बाध्य किया जाता तो जाँच के उपरान्त उन्हें प्रतिशोध, एवं परेशान करने, की आशंका बनी रहती। कालेज परिसर के बाहर छात्राओं की सुरक्षा कालेज के प्राधिकारी करने की स्थिति में नहीं होते। अतः प्राधिकारियों को एक युक्तियुक्त एवं न्यायोचित जाँच प्रक्रिया अपनानी थी, जिससे कि छात्राओं को अनावश्यक परेशानी का सामना न करना पड़े तथा आरोपित छात्रों को अपना केस प्रस्तुत करने का युक्तियुक्त अवसर उपलब्ध हो सके और उसी के अनुरूप स्टाफ के तीन सदस्यों को जाँच कमेटी में रखा गया। कमेटी ने पहले छात्राओं को बुलाकर उनका बयान लिया। उनके द्वारा नामित छात्रों को बुलाया गया तथा आरोप का विवरण उन्हें बताया गया। लिखित आरोप भी दिया गया। जिसका प्रतिउत्तर देने का उन्हें अवसर दिया गया और उन्होंने प्रतिउत्तर दिया भी। कमेटी उनके प्रतिउत्तर से संतुष्ट नहीं हुई और अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

उच्चतम न्यायालय ने जाँच कमेटी की रिपोर्ट का अवलोकन किया और पाया कि जाँच कमेटी ने पूरी सतर्कता से जाँच की थी। उक्त घटना होने के बारे में कोई शंका नहीं थी, प्रश्न केवल उपद्रवकारियों की पहचान का था। उनके नाम परिवाद में स्पष्टतः लिखे हुए थे, फिर भी कमेटी ने चारों आरोपित छात्रों के फोटोग्राफ लिए तथा बीस

अन्य छात्रों के फोटोग्राफ के साथ मिला दिए। उसके उपरान्त उपद्रवकारियों की फोटो की पहचान करने के लिए छात्राओं से कहा गया, जिन्होंने चारों उपद्रवकारी छात्रों की फोटो को पहचाना। दूसरी तरफ छात्रों का यह कहना था कि उस समय वे अपने छात्रावास में थे। परन्तु यदि ऐसा था तो इस तथ्य के संबंध में वे साक्ष्य प्रस्तुत कर सकते थे, परन्तु ऐसा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया। कमेटी ने अपनी रिपोर्ट गोपनीय रूप से प्रधानाचार्य के पास भेजी थी। छात्राओं का नाम आरोपित छात्रों की जानकारी में न आए इसी कारण से अधिकारियों ने रिपोर्ट की प्रतिलिपि उन्हें नहीं दी और ऐसा करना समीचीन भी था। इन सभी परिस्थितियों पर विचार करते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का पालन नहीं किया गया। इस केस की इन परिस्थितियों में नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त की प्रतिपूर्ति हो गई थी।"

अतः विधि की सामान्य अपेक्षा नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का अनुपालन करते हुए विनिश्चय करने की है, लेकिन आपवादिक परिस्थितियों में इन्हें परिवर्तित एवं अपवर्जित भी किया जा सकता है।

नैसर्गिक न्याय के नियमों का उद्देश्य न्याय सुलभ कराना है। इस उद्देश्य की पूर्ति "पक्षपात रहित" "सुनवाई का उचित अवसर" देकर की जा सकती है। यहाँ "पक्षपात" एवं "सुनवाई का उचित अवसर" की विस्तृत व्याख्या समीचीन है।

पक्षपात

नैसर्गिक न्याय का नियम है कि कोई भी व्यक्ति अपने मामले का स्वयं निर्णायक नहीं हो सकता। इस नियम का आशय यह है कि निर्णायक को निष्पक्ष होना चाहिए, पक्षपाती नहीं। पक्षपात तीन प्रकार का हो सकता है, विवादित विषयवस्तु से संबंधित पक्षपात, वैयक्तिक पक्षपात, तथा धनीय हित। निर्णायक को सभी प्रकार के पक्षपातों से बचना आवश्यक है।

इस नियम का एक अपवाद है- "आवश्यकता का सिद्धान्त"। जब कोई निर्णायक पूर्वाग्रह के आधार पर निर्णय करने के अयोग्य हो, परन्तु यदि अन्य व्यक्ति निर्णय करने के लिए सक्षम न हो तो, आवश्यकता के सिद्धान्त पर उसी निर्णायक द्वारा निर्णय करना अपेक्षित होगा।[28] पक्षपात के संदर्भ में कुछ निर्णीत मामलों के उद्धरण से विधिक स्थिति स्पष्ट होगी। उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मोहम्मद नूह,[29] का केस, "पक्षपात" का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है। इस मामले में विभागीय जाँच के दौरान पुलिस अधीक्षक ने, जाँच अधिकारी के रूप में कार्य करते हुए, कुछ साक्षियों का बयान लिया। एक साक्षी का साक्ष्य आरोपित सेवक के विरूद्ध बहुत ही महत्वपूर्ण था, जिसके बयान के उपरान्त पुलिस अधीक्षक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वह गवाह पक्षद्रोही हो गया है और उन्होंने उसके साक्ष्य का खण्डन करना आवश्यक समझा। परन्तु अन्य कोई साक्षी उपलब्ध नहीं था। अतः पुलिस अधीक्षक ने, जिन्हें उन तथ्यों का व्यक्तिगत ज्ञान था, एक अन्य प्राधिकारी के समक्ष अपना बयान दिया। एक बार तो आरोप विरचित करने से पूर्व उन्होंने बयान दिया और पुनः आरोप लगाने के उपरान्त भी बयान दिया और उसके उपरान्त पुनः जाँच अधिकारी के रूप में कार्य किया। जब यह प्रकरण उच्चतम न्यायालय के समक्ष आया तो न्यायालय ने कहा कि पुलिस अधीक्षक, जो जाँच अधिकारी थे, एक ही समय में निर्णायक एवं साक्षी के रूप में कार्य नहीं कर सकते थे।

दूसरा उदाहरण, **अर्जुन चौबे बनाम भारत संघ,**[30] का मामला है, जिसमें उत्तरी रेलवे, वाराणसी के वरिष्ठ वाणिज्य अधिकारी ने श्री अर्जुन चौबे से, जो सी॰सी॰एस॰ आफिस में वरिष्ठ लिपिक थे, अनुशासन हीनता के बारह आरोपों के बारे में स्पष्टीकरण मांगा था। श्री अर्जुन चौबे ने अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया। उसके अगले दिन उप मुख्य वाणिज्य अधीक्षक ने दूसरी नोटिस श्री चौबे को दी कि उनका स्पष्टीकरण समुचित नहीं है तथा उन्हें स्पष्टीकरण देने हेतु एक अन्य अवसर दिया

28-जे० महापात्रा ऐण्ड कं० बनाम उड़ीसा राज्य-ए०आई०आर० 1984 सु०को० 1572
29-ए०आई०आर० 1958 सु०को० 86
30-1984 (1) सलता न० 654

जाता है। श्री चौबे ने पुनः स्पष्टीकरण दिया, परन्तु अगले दिन उप मुख्य वाणिज्य अधीक्षक ने उनको पदच्युत करने का आदेश पारित कर दिया, जबकि श्री अर्जुन चौबे के विरूद्ध जो बारह आरोप लगाए गए थे, उनमें से सात आरोप उप-मुख्य वाणिज्य अधीक्षक से दुर्व्यवहार करने के संबंध में थे। उच्चतम न्यायालय ने संप्रेक्षण किया कि यदि इन आरोपों के संबंध में जाँच करवाई जाती तो उप मुख्य वाणिज्य अधीक्षक ही विभाग की तरफ से प्रमुख साक्षी होते। चूँकि उप मुख्य वाणिज्य अधीक्षक से दुर्व्यवहार करने के संबंध में ही मुख्य आरोप श्री अर्जुन चौबे के विरूद्ध लगाए गए थे, अतः उनके लिए यह उचित नहीं था कि श्री अर्जुन चौबे द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण के बारे में कोई निर्णय करें तथा यह विनिश्चय करें कि स्पष्टीकरण सही नहीं था। किसी भी व्यक्ति को जिसका "व्यक्तिगत हित" विभागीय जाँच में हो, उस जाँच कार्यवाही से अपने आपको अलग रखना अनिवार्य है। उच्चतम न्यायालय ने पदच्युति आदेश को, पक्षपात के आधार पर ही, निरस्त कर दिया।

ए0के0 कैपक बनाम भारत संघ,[31] का मामला भी "पक्षपात" का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है, जिसके तथ्य इस प्रकार हैं, जम्मू एवं कश्मीर राज्य के वन विभाग में कार्यरत कुछ राजपत्रित अधिकारियों का चयन भारतीय वन सेवा के सीनियर एवं जूनियर स्केल में किया जाना था। केन्द्र सरकार ने एक विशेष चयन समिति का गठन किया, जिसमें श्री नाकिसबन्द भी एक सदस्य थे। श्री नाकिसबन्द जम्मू तथा कश्मीर के कार्यवाहक मुख्य वन संरक्षक थे तथा वह स्वयं भी भारतीय वन सेवा में चयन के लिए एक उम्मीदवार थे। चयन समिति ने अधिकारियों के सेवा अभिलेखों के आधार मात्र पर कुल पच्चीस अधिकारियों का चयन किया, जिसमें श्री नाकिसबन्द का नाम चयनित अधिकारियों की सूची में प्रथम स्थान पर था। अभ्यर्थी श्री जी0एस0बसु, श्री बेग एवं श्री कौल का चयन नहीं किया गया। जबकि श्री जी0एस0 बसु, श्री नाकिसबन्द से सेवा में ज्येष्ठ थे। न तो कोई विभागीय परीक्षा ली गई और न कोई साक्षात्कार किया गया। जब श्री नाकिसबन्द के

31-आ0ई0आर0 1970 सु0को0 150

नाम पर समिति ने विचार किया उस समय वह चयन समिति में नहीं बैठे थे, परन्तु जब समिति ने श्री बसु, श्री बेग एवं श्री कौल तथा अन्य अभ्यर्थियों के नामों पर विचार-विमर्श किया तब श्री नाकिसबन्द समिति में बैठे थे तथा उस विचार-विमर्श में भाग लिया था। जब समिति ने विचार-विमर्श करके चयनित अभ्यर्थियों की सूची तैयार की उस समय भी श्री नाकिसबन्द ने भाग लिया था।

उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जब श्री नाकिसबन्द स्वयं एक अभ्यर्थी थे तब उन्हें चयन समिति का सदस्य नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए था। यह न्याय के सभी सिद्धान्तों के प्रतिकूल है कि कोई व्यक्ति अपने ही मामले में निर्णायक हो। भले ही उन्होंने अपने नाम के चयन के समय उक्त समिति के विचार-विमर्श में भाग न लिया हो, परन्तु सभी अभ्यर्थियों के चयन पर विचार-विमर्श में भाग लिया तथा चयनित अभ्यर्थियों की सूची तैयार करने में भी भाग लिया। इन परिस्थितियों में उनकी निष्पक्षता पर विश्वास करना कठिन है। ऐसे मामलों में वास्तविक प्रश्न यह होता है कि क्या यह विश्वास करने का युक्तियुक्त आधार है कि उनके पक्षपाती होने की संभावना थी? पक्षपात का संदेह मात्र होना समुचित नहीं है, अपितु पक्षपात की युक्तियुक्त संभावना होनी अनिवार्य है और इस प्रश्न का निर्णय करने में मानविक संभावना तथा मनुष्य के सामान्य आचरण को ध्यान में रखना होता है। प्रस्तुत मामले में श्री नाकिसबन्द स्वयं एक अभ्यर्थी होते हुए भी निर्णायक-मण्डल के सदस्य बने रहे। इस प्रकार उन्होंने अपने ही मामले का निर्णायक होने की भूमिका अदा की, जो नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त के प्रतिकूल है। उच्चतम न्यायालय ने तदनुसार उक्त समिति द्वारा किए गए चयन को निरस्त कर दिया।

जहाँ किसी पक्षकार को निर्णायक से पक्षपात की आशंका हो, वहाँ उन्हें आरम्भ में ही यह आशंका व्यक्त करनी चाहिए, अन्यथा वह विबंधित माने जाते हैं। इस संदर्भ में डा० जी० सरन बनाम लखनऊ विश्वविद्यालय[32], का मामला उल्लेखनीय है। इस मामले में विश्वविद्यालय

32-1976 [3] सु०को०कै० 585

की एक चयन समिति, मानव विज्ञान [एन्थ्रोपोलाजी] के प्रोफेसर पद पर, नियुक्ति हेतु गठित की गई थी, जिसमें उपकुलपति तथा कला संकाय एवं हिन्दी विभाग के विभागाध्यक्षों के अलावा तीन बाहरी विशेषज्ञ भी थे। समिति ने अभ्यर्थियों का साक्षात्कार लिया तथा अपनी संस्तुति विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद् को प्रेषित कर दी। जब डा0 जी0 सरन को ज्ञात हुआ कि उनका चयन नहीं किया गया है तब उन्होंने समिति की संस्तुति को न्यायालय में, मुख्यतः, इस आधार पर चुनौती दी कि दो विशेषज्ञ उनके विरूद्ध पूर्वाग्रहित थे तथा उन्होंने पक्षपात किया। एक अभ्यर्थी से, जिनके नाम की संस्तुति की गई थी, दोनों विशेषज्ञों के घनिष्ठ संबंध थे। उस अभ्यर्थी ने विशेषज्ञों के लिए कई पारितोषिक समनुदेशन उपलब्ध कराए थे तथा वे विशेषज्ञ जब भी लखनऊ आते थे तो उस अभ्यर्थी के घर ही ठहरते थे। एक विशेषज्ञ से डा0 सरन का पहले से झगड़ा था।

उच्चतम न्यायालय ने संप्रेक्षण किया कि यद्यपि डा0 जी0 सरन को पक्षपात संबंधी सभी सुसंगत तथ्यों की जानकारी थी, परन्तु समिति के समक्ष साक्षात्कार के पूर्व अथवा साक्षात्कार के समय उन्होंने किसी प्रकार का कोई प्रतिरोध चयन समिति के गठन के संबंध में नहीं किया। वे स्वेच्छापूर्वक समिति के समक्ष उपस्थित हुए तथा अपने पक्ष में संस्तुति होने का अवसर प्राप्त किया। ऐसा करने के उपरान्त अब उन्हें समिति के गठन के बारे में प्रतिरोध करने का अधिकार नहीं रह जाता। तदनुसार उच्चतम न्यायालय ने जी0 सरन की अपील खारिज कर दी।

उच्चतम न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णयों से सुस्पष्ट है कि "पक्षपात" की वास्तविक संभाव्यता होनी अनिवार्य है, संदेह या अनुमान मात्र पर्याप्त नहीं है। पक्षपात की संभाव्यता का परीक्षण सूत्र यह है कि क्या युक्तिमान मनुष्य को, जो तथ्यों से भिज्ञ हो, पक्षपात की युक्तियुक्त आशंका होगी? यदि आशंका हो तो उस निर्णायक को उस मामले का निर्णय नहीं करना चाहिए।

अतः, विभागीय जाँच में, यदि जाँच अधिकारी के पक्षपाती होने की वास्तविक संभाव्यता युक्तिमान व्यक्ति को होवे, तो उन्हें जाँच कार्य नहीं करना चाहिए।[33] जब किसी पक्षकार को निर्णायक से "पक्षपात" की आशंका हो तो उसे आरम्भ में ही अपनी शंका व्यक्त कर देनी चाहिए।

सुनवाई का उचित अवसर

नैसर्गिक न्याय का नियम है कि, "दूसरे पक्ष को सुनो"। इस नियम का आशय यह है कि किसी व्यक्ति के हितों के प्रतिकूल आदेश करने से पूर्व उसे सुनवाई का अवसर दिया जाए। परिस्थितियों की आवश्यकतानुसार युक्तियुक्त अनुपात में सुनवाई का अवसर देना अपेक्षित है। इसका अच्छा उदाहरण, हीरानाथ मिश्रा तथा अन्य बनाम प्रधानाचार्य, राजेन्द्र मैडिकल कालेज, राँची,[34] का पूर्वोक्त मामला है। –

विभागीय जाँच के संदर्भ में "सुनवाई का उचित अवसर" देने का तात्पर्य यह है कि सरकारी सेवक को, उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों तथा प्रस्तावित साक्ष्य की सूचना दी जाए एवं उसे साक्षियों से प्रतिपरीक्षा करने तथा बचाव साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाए।[35] इस संदर्भ में उड़ीसा राज्य बनाम डा0 वीनापाणि देई,[36] का मामला उल्लेखनीय है। डा0 वीनापाणि, उड़ीसा चिकित्सा सेवा में सहायक सर्जन थी तथा राज्य सरकार द्वारा जारी सिविल सूची में उनकी जन्म तिथि 10 अप्रैल, 1910 दर्शित थी। सेवा नियमों में सेवानिवृत्ति की आयु 55 वर्ष थी तथा उन्हें 10 अप्रैल, 1965 को सेवानिवृत्त होना था। राज्य सरकार ने मई, 1963 में अधिसूचना जारी करके सेवानिवृत्ति की आयु 55 वर्ष से बढ़ाकर 58 वर्ष कर दी। इस बीच शासन को एक गुमनाम पत्र मिला कि डा0 वीनापाणि ने अपनी उम्र गलत बताई है, जिसकी छानबीन करके डा0 वीनापाणि को कारण बताओ नोटिस जारी की गई कि क्यों न उनकी जन्म तिथि 4 अप्रैल, 1907 मानी जाए। डा0 वीनापाणि ने उत्तर दिया कि उनकी जन्म तिथि 10 अप्रैल, 1910 है तथा सिविल

33-एच0 पार्थसारथी बनाम आँ0प्र0 राज्य-ए0आई0आर0 1973 सु0को0 270

34-1973(1) सु0को0 805

35-खेम चन्द बनाम भारत संघ-ए0आई0आर0 1958 सु0को0 300

36-ए0आई0आर0 1967 सु0को0 1269

सूची में जन्म तिथि सही लिखी है। परन्तु शासन ने दिनांक 26.6.1963 के पत्र द्वारा डा0 वीनापाणि को सूचित किया कि उनकी जन्मतिथि 16 अप्रैल, 1907 अभिनिश्चित की जाती है तथा उन्हें 16.4.1962 को सेवानिवृत्त हुआ माना जाता है। डा0 वीनापाणि ने इसे उच्च न्यायालय में चुनौती दिया कि उन्हें 10 अप्रैल, 1968 को सेवानिवृत्त होना था लेकिन पहले ही सेवानिवृत्त करके सेवा समाप्त कर दी गई। यह आदेश नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों तथा अनुच्छेद 311 का उल्लंघन करके किया गया है। उच्च न्यायालय ने डा0 वीनापाणि के तर्कों को मानते हुए रिट याचिका स्वीकार कर ली जिसके विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की गई।

उच्चतम न्यायालय ने कहा कि शासन को यह शक्ति प्राप्त थी कि डा0 वीनापाणि की जन्मतिथि की सत्यता के बारे में जाँच करके उसे संशोधित करता, लेकिन नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के अनुरूप जाँच करके ही ऐसा विनिश्चय किया जा सकता था। डा0 वीनापाणि को, उनके विरुद्ध प्रस्तुत किए जाने वाले, साक्ष्य का खण्डन करने तथा अपना बचाव कथन प्रस्तुत करने का अवसर देना शासन का दायित्व था। अर्थात् जब डा0 वीनापाणि ने शासन के कथन का प्रतिवाद किया था तो कोई विनिश्चय करने से पूर्व उन्हें सुनवाई का उचित अवसर दिया जाना अनिवार्य था। यद्यपि यह आदेश प्रशासनिक प्रकृति का था, परन्तु इससे सिविल दुष्परिणाम उत्पन्न हुए, अतः नैसर्गिक न्याय के नियमों का अनुपालन करना अनिवार्य था, जिसके लिए शासन को उस मामले के तथ्यों एवं साक्ष्यों की सूचना डा0 वीनापाणि को दी जानी चाहिए थी तथा उन्हें अपना बचाव प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाना चाहिए था, परन्तु ऐसा नहीं किया गया। उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय की परिपुष्टि करते हुए अपील खारिज कर दी।

सुनवाई का उचित अवसर प्रत्येक मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर निर्भर होता है। **आंध्र प्रदेश राज्य बनाम मोहम्मद सरवर**[37] के मामले में जिस दिन अभियोजन साक्षियों का बयान लिया गया

37. 1971 (1) श0ला रि0 507 (आं0 प्र0 उच्च न्यायालय)।

उस दिन आरोपित सेवक बुखार से पीड़ित होने के कारण साक्षियों से प्रतिपरीक्षा नहीं कर सका था। जाँच अधिकारी ने अवसर हेतु उसका आवेदन अस्वीकार कर दिया था तथा अगली तिथि पर साक्षियों को प्रतिपरीक्षा हेतु तलब करने का आवेदन भी अस्वीकार कर दिया तो आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने कहा कि आरोपित सेवक को सुनवाई का उचित अवसर नहीं दिया गया।

पंजाब राज्य बनाम दीवानचुन्नी लाल,[38] के मामले में जाँच के दौरान आरोपित सेवक ने पाँच अधिकारियों को, जिन्होंने उसके विरूद्ध रिपोर्ट की थी, साक्ष्य में तलब करके बयान दिलाने का अनुरोध जाँच अधिकारी से किया था। तथा वे सभी अधिकारी जाँच में बयान देने के लिए उपलब्ध भी थे, लेकिन जाँच अधिकारी ने उन्हें तलब करने से इंकार कर दिया, तो उच्चतम न्यायालय ने कहा कि आरोपित सेवक को सुनवाई का उचित अवसर नहीं दिया गया।

उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम मुनुरूद्दीन,[39] के मामले में श्री मुनुरूद्दीन, जो बस कण्डक्टर थे, के विरूद्ध शिकायत थी कि वह बिके हुए टिकटों को पुनः बेचता है तथा मार्ग बिल में गलत विवरण भरता है। उसके विरूद्ध विभागीय जाँच की गई तथा दिनांक 23-3-1965 को उसकी सेवासमाप्ति का आदेश किया गया। मनुरूद्दीन का मुख्य तर्क यह था कि मार्ग बिल तथा टिकटों की कार्बन प्रतियाँ उसे नहीं दिखाई गई जिससे वह अपना बचाव प्रस्तुत नहीं कर सका।

उच्चतम न्यायालय ने पाया कि, विभागीय जाँच के दौरान मुनुरूद्दीन को कागजों का निरीक्षण करने की अनुमति दी गई थी, परन्तु सुसंगत तिथियों के मार्ग बिलों की प्रतियाँ उसे नहीं दी गई थी। उसने शुरू से ही कहा था कि उसने मार्ग बिल में "काटकूट" नहीं की है, न ही उसने कोई गलत इंदराज किया है। अतः उसके लिए आवश्यक था कि वह विवादित दस्तावेजों की कार्बन प्रतियाँ देखता कि उसमें काटकूट की गई है अथवा नहीं, परन्तु उन दस्तावेजों को उसे नहीं दिखाया गया,

---

38-आर्ई०आर० 1970 सु०को० 2086

39-1990[6] एस०एल०आर० 656 [सु०को०]

जबकि उसने लिखित आवेदन भी किया था, जिसके कारण वह अपना बचाव करने में असमर्थ रहा। कहने का तात्पर्य यह है कि जाँच अधिकारी ने मुनुरूद्दीन को मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों के अनुरूप, सुनवाई का उचित अवसर नहीं दिया। उच्चतम न्यायालय ने इस आधार पर जाँच दूषित घोषित करते हुए मुनुरूद्दीन की सेवासमाप्ति का आदेश निरस्त कर दिया।

सारांश

विभागीय जाँच, नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के अनुरूप की जानी अपेक्षित है, जिसकी पहली अपेक्षा यह है कि जिस व्यक्ति के विरूद्ध आरोप लगाया गया है उसे सुनवाई का उचित अवसर दिया जाए जिससे कि वह अपना बचाव कर सके। दूसरी अपेक्षा है कि जाँच अधिकारी पक्षपाती या पूर्वाग्रहित न हो, तथा निष्पक्षता एवं ऋजुता से जाँच-कार्य करे। तीसरी अपेक्षा यह है कि जाँच का निष्कर्ष, सद्भावनापूर्वक, पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य पर निकाला जाए, न कि वाह्य सामग्री पर। चौथी अपेक्षा है कि कारण अभिलिखित करते हुए आदेश किया जाए।

अध्याय- आठ

जाँच के अपवाद

संविधान के अनुच्छेद 311 के खण्ड [2] में सरकारी सेवक को महादण्ड देने से पूर्व विभागीय जाँच कराने की अनिवार्यता का उपबंध है तथा इसके द्वितीय परन्तुक में कहा गया है कि यह खण्ड वहाँ लागू नहीं होगा-

[क] जहाँ किसी व्यक्ति को ऐसे आचरण के आधार पर पदच्युत किया जाता है या पद से हटाया जाता है या पंक्ति में अवनत किया जाता है जिसके लिए अपराधिक आरोप पर उसे सिद्धदोष ठहराया गया है, या

[ख] जहाँ किसी व्यक्ति को पदच्युत करने या पद से हटाने या पंक्ति में अवनत करने के लिए सशक्त प्राधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि किसी कारण से, जो उस प्राधिकारी द्वारा लेखबद्ध किया जाएगा, यह युक्तियुक्त रूप से साध्य नहीं है कि ऐसी जाँच की जाए, या

[ग] जहाँ, यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्यपाल का यह समाधान हो जाता है कि राज्य की सुरक्षा के हित में यह समीचीन नहीं है कि ऐसी जाँच की जाए।

अतः इन तीन अपवादिक मामलों में सरकारी सेवक को, विभागीय जाँच किए बगैर, महादण्ड दिया जा सकता है। अनुच्छेद 311 खण्ड [2] के द्वितीय परन्तुक के ये तीनों खण्ड सामान्य परिस्थितियों में लागू किए जाने आशयित नहीं हैं। इन खण्डों को सरकारी सेवक के विरुद्ध लागू करने से पूर्व इनमें दी गई शर्तें विद्यमान होनी अनिवार्य हैं। परन्तु, यदि इनमें से किसी खण्ड की परिस्थितियाँ विद्यमान हों तो सरकारी सेवक पर महादण्ड अधिरोपित करना आज्ञापक नहीं है, अनुशासनिक

प्राधिकारी उस मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करके अभिनिश्चित करेंगे कि कौन-सा दण्ड देना उचित होगा? यह विचार एकतरफा एवं उस सेवक को सुने बगैर करना होगा। यदि अनुशासनिक प्राधिकारी इस मत के हों कि पदच्युति, सेवा से हटाने या रैंक में अवनीत में से कोई दण्ड देना उचित होगा तो पहले वह जाँच से अभिमुक्ति प्रदान करेंगे, तदुपरान्त विनिश्चय करेंगे कि महादण्डों में से कौन-सा दण्ड अधिरोपित किया जाए।[1]

पहला अपवाद

जब सरकारी सेवक को दाण्डिक न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किया जाता है तो अनुशासनिक प्राधिकारी के लिए, यह दोषसिद्धि, सरकारी सेवक के दुराचरण का समुचित प्रमाण होता है। इसके उपरान्त उन्हें यह विनिश्चय करना होता है कि क्या सरकारी सेवक का आचरण, जिसके कारण आपराधिक आरोप के लिए सरकारी सेवक को दोषसिद्ध किया गया है, ऐसा है कि विभागीय स्तर पर उसे दण्डित किया जाए? यदि हाँ, तो कौन-सा दण्ड अधिरोपित करना समीचीन होगा। इसका विनिश्चय करने के प्रयोजन हेतु अनुशासनिक प्राधिकारी दाण्डिक न्यायालय के निर्णय का अवलोकन करेंगे तथा उस मामले के सभी तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करेंगे। ऐसा विचार करते समय अनुशासनिक प्राधिकारी विभिन्न बातों पर जैसे, उस सरकारी सेवक का संपूर्ण आचरण, उसके द्वारा कारित अपराध की गंभीरता, उस दुराचरण से प्रशासन पर पड़ने वाले प्रभाव की संभाव्यता, क्या अपराध, जिसके लिए दोषसिद्धि की गई है तकनीकी या नगण्य प्रकृति का था?, तथा उस मामले की लघुकारी परिस्थितियाँ, यदि कोई हों, विचार करेंगे। अनुशासनिक प्राधिकारी यह विचार एकतरफा तथा सरकारी सेवक को सुने बगैर करेंगे।[1]

उपरोक्त विचारोपरान्त अनुशासनिक प्राधिकारी यदि इस मत के हों कि सरकारी सेवक की दोषसिद्धि के आधार पर उसे विभागीय स्तर पर दण्डित करना उचित है तो अगला प्रश्न होगा कि कौन-सा

1-भारत संघ बनाम तुलसी राम पटेल-आर्ई०आर० 1985 सु०को० 1416 तथा सत्यवीर सिंह बनाम भारत संघ-1986 I I एल०एल०जे० I [सु०को०]

दण्ड अधिरोपित करना उचित होगा? यह सुप्रचलित है कि मनमाने ढंग से दण्ड अधिरोपित नहीं करना चाहिए तथा अपराध की तुलना में दण्ड बेमेल नहीं होना चाहिए। अतः सरकारी सेवक को, अपराध के लिए दोषसिद्ध होने पर, कोई महादण्ड अधिरोपित करना अनिवार्य नहीं है, अपितु कोई लघुदण्ड भी अधिरोपित किया जा सकता है, अथवा यदि अपराध नगण्य प्रकृति का हो तथा सरकारी सेवक के उस आचरण से प्रशासन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना न हो तो विभागीय स्तर पर दण्डित न करना भी उचित माना जा सकता है।

उदाहरण-एक सरकारी सेवक अपने ज्येष्ठ अधिकारी, जिन्हें वह अपनी वेतनवृद्धि रोकने के लिए उत्तरदायी मानता है, के कक्ष में जाकर लोहे की छड़ से उनके सिर पर मारकर चोट पहुँचाता है। दाण्डिक न्यायालय में उस सेवक को, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 332 के अपराध के लिए विचारण किया जाता है तथा, दोषसिद्ध किया जाता है, परन्तु न्यायालय उस अपराधी को परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 का लाभ देते हुए परिवीक्षा पर छोड़ देता है। तदुपरान्त अनुशासनिक प्राधिकारी उसकी दोषसिद्धि तथा पूर्वोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करके, सेन्ट्रल सी॰सी॰ए॰ रूल्स, 1965 के नियम 19[1] के अधीन उस सेवक पर वैकल्पिक सेवानिवृत्ति का दण्ड अधिरोपित करते हैं तो यह नहीं कहा जा सकता कि यह दण्ड अत्यधिक या मनमाना था।

यह सुप्रचलित है कि सरकारी सेवक को, अपराध के लिए दोषसिद्ध होने पर, विभागीय स्तर पर दण्डित करने से पूर्व उसे सुनवाई का अवसर देना आवश्यक नहीं है। अनुशासनिक प्राधिकारी, दाण्डिक न्यायालय के निर्णय का अवलोकन करके अनुच्छेद 311[2] के द्वितीय परन्तुक के खण्ड [क] के अधीन, सरकारी सेवक को सुनवाई का अवसर दिए बगैर, दण्डादेश कर सकते हैं।[2]

2-भारत संघ बनाम तुलसी राम पटेल-आ0इं0रि0 1985 सु0को0 1416, सत्यवीर सिंह बनाम भारत संघ-1986[1] सुलता नं0 1[सु0को0], शिवा राम बनाम पी0के0 सेठ-आ0इं0रि0 1988 सु0को0 285, तथा उ0प्र0 राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम उ0प्र0 लोक सेवा अधिकरण 1990[60] एफ0एल0आर0 734[इलाहाबाद]।

दूसरा अपवाद

अनुच्छेद 311[2] के द्वितीय परन्तुक के खण्ड [ख] का उपबंध प्रकृत करने से पूर्व दो शर्तें पूरी होनी अनिवार्य हैं-

[1] ऐसी परिस्थिति विद्यमान होनी अनिवार्य है जिससे अनुच्छेद 311[2] में अनुध्यात जाँच कराना युक्तियुक्त रूप से साध्य न हो, तथा

[2] अनुशासनिक प्राधिकारी, ऐसी जाँच कराना युक्तियुक्त रूप से साध्य न होने की अपनी संतुष्टि का कारण अभिलिखित करेंगे।

विभागीय जाँच कराना साध्य है या नहीं? इस विषय पर युक्तियुक्त रूप से विचार करके निर्णय लिया जाएगा। खण्ड [ख] की यह अपेक्षा नहीं है कि जाँच कराना पूर्णतः या निरपेक्षतः असाध्य हो, वरन् अपेक्षा यह है कि क्या उस मामले की परिस्थितियों में कोई युक्तिमान मनुष्य सम्यक् विचारोपरान्त इस मत का है कि जाँच कराना असाध्य है। जाँच कराने की युक्तियुक्त रूप से साध्यता के विषय का अधिमूल्यन अनुशासनिक प्राधिकारी को करना होता है। ऐसा करते समय उन्हें तात्कालिक परिस्थितियों के संदर्भ में निर्णय करना अनिवार्य है। सामान्यतया अनुशासनिक प्राधिकारी ही मौके पर मौजूद होते हैं तथा जो भी घटनाएं हो रही हों उनकी जानकारी रखते हैं। चूंकि विद्यमान परिस्थितियों के सबसे बढ़िया निर्णायक अनुशासनिक प्राधिकारी होते हैं, अतः अनुच्छेद 311 के खण्ड [3] में इस विषय पर अनुशासनिक प्राधिकारी के विनिश्चय को अंतिम माना गया है। यद्यपि उन मामलों को जिनमें जाँच कराना युक्तियुक्त रूप से साध्य न हो, सूचीबद्ध करना संभव नहीं है, तथापि कुछ उदाहरण निम्नवत् हैं-

[1] जहाँ सरकारी सेवक अपने साथियों के माध्यम से या उनके साथ, साक्षियों को आतंकित करे, धमकी देवे या अभित्रस्त करे, जिससे वह अपने विरूद्ध साक्ष्य देने से उन साक्षियों को रोक सके या वे साक्षी इतने भयभीत हो जाएं कि उस सेवक के विरूद्ध साक्ष्य ही न दें, अथवा

[2] जहाँ सरकारी सेवक स्वयं या अपने साथियों के माध्यम से या उनके साथ अनुशासनिक प्राधिकारी या उनके परिवार के सदस्यों को आतंकित करे, धमकी देवे या अभित्रस्त करे, जिससे कि वे जाँच करने या कराने से डर जायं, या जहाँ हिंसा या सामान्य अनुशासनहीनता एवं अवज्ञा का वातावरण अभिभावी हो, यह महत्वहीन है कि संबंधित सरकारी सेवक ऐसी परिस्थिति बनाने में पक्षकार रहा है या नहीं।

अनुशासनिक अधिकारी से यह अपेक्षा नहीं है कि वह मनमाने ढंग से, या जाँच कराने से आसानी से बचने के लिए या सरकारी सेवक के विरुद्ध विभाग का अभिकथन कमजोर होने एवं विफल हो जाने की आशंका के कारण, विभागीय जाँच से अभिमुक्ति प्रदान करें।

खण्ड [ख] में प्रयुक्त शब्द "जाँच" में, जाँच का कोई हिस्सा भी सम्मिलित है। अतः यह आवश्यक नहीं है कि जाँच कराना युक्तियुक्त रूप से साध्य न होने की परिस्थितियाँ सरकारी सेवक के विरुद्ध जाँच संस्थित होने से पूर्व विद्यमान हों। ऐसी परिस्थितियाँ जाँच संस्थित होने के उपरान्त अथवा जाँच के दौरान किसी भी प्रक्रम पर उत्पन्न हो सकती हैं। कहने का तात्पर्य यह कि सरकारी सेवक को आरोप-पत्र देने के उपरान्त अथवा उसके द्वारा लिखित-कथन देने के उपरान्त अथवा कुछ साक्ष्य अभिलिखित करने के उपरान्त भी ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं, जिनके कारण अवशेष जाँच कराना युक्तियुक्त रूप से साध्य न हो। अनुशासनिक प्राधिकारी ऐसी परिस्थिति में भी खण्ड [ख] में दी गई शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं।[3]

यदि जाँच आरम्भ होने पर अथवा जाँच के दौरान कभी भी आरोपित सेवक फरार हो जाता है अथवा जाँच कार्यवाही में भाग नहीं लेता अथवा उस पर तामीला नहीं हो पाता तो यह नहीं कहा जा सकता कि जाँच कराना युक्तियुक्त रूप से साध्य नहीं है। ऐसे मामलों में जाँच में एकतरफा कार्यवाही की जाएगी, अर्थात् उसके विरुद्ध साक्ष्य एकतरफा ग्रहण किया जाएगा।[3]

3-भारत संघ बनाम तुलसी राम पटेल-आ०इ०रि० 1985 सु०को० 1416,तथा सत्यवीर सिंह बनाम भारत संघ-1986[1] सप्लीमेन्ट स०।[सु०को०]

में नहीं होगा। यह अनुमान लगाना कठिन होगा कि परिस्थितियों के सुधरने में कितना समय लगेगा। ऐसे मामलों में तुरन्त कार्रवाई करनी अपेक्षित होती है जिससे कि हिंसा या अनुशासनहीनता की स्थिति फैलने न पाए अथवा नियंत्रण से परे न हो जाए। तुरन्त कार्रवाई न करने से संबंधित प्राधिकारी को भयभीत एवं अक्षम मानते हुए उस सेवक की उद्दण्डता को प्रोत्साहन मिलने की संभावना होती है। तुरन्त कार्रवाई करने में भयोत्परतता का तत्व विद्यमान रहता है परन्तु ऐसा होना आवश्यक एवं अपरिहार्य है क्योंकि जिन परिस्थितियों में यह कार्रवाई करना आवश्यक प्रतीत होता है वह प्राधिकारियों द्वारा बनाई हुई नहीं होती अपितु उस सेवक द्वारा बनाई होती है।[5]

अतः विभागीय जाँच करने से अभिमुक्ति प्रदान करने का विनिश्चय अनुशासनिक प्राधिकारी के हठधर्मिता मात्र पर आधारित नहीं होना चाहिए, बल्कि वस्तुनिष्ठ तथ्यों पर आधारित होना चाहिए। जब अनुशासनिक प्राधिकारी की संतुष्टि को न्यायालय में चुनौती दी जाती है तो यह दिखाने का भार कि उनकी संतुष्टि निश्चित, वस्तुनिष्ठ तथ्यों पर आधारित है, उनकी स्वेच्छाचारिता या मनमौजीपन पर आधारित नहीं है, उन पर होती है जो उस आदेश का समर्थन करते हों।[6]

तीसरा अपवाद

अनुच्छेद 311[2] के द्वितीय परन्तुक के खण्ड [ग] में अभिव्यक्त "राज्य की सुरक्षा" का तात्पर्य यह नहीं है कि संपूर्ण देश अथवा संपूर्ण राज्य की सुरक्षा को खतरा हो, अपितु राज्य के किसी भाग की सुरक्षा भी इसमें सम्मिलित है। यह नहीं कहा जा सकता कि सिर्फ सशस्त्र विद्रोह से ही राज्य की सुरक्षा प्रभावित होती है, अपितु विभिन्न ढंगों से राज्य की सुरक्षा प्रभावित हो सकती है, जैसे, राज्य की गोपनीयता अथवा रक्षा उत्पादन से संबंधित सूचना या इसी के समान अन्य विषयों की सूचना किसी अन्य देश को देने अथवा आतंकवादियों से गोपनीय संबंध होने से भी राज्य की सुरक्षा प्रभावित हो सकती है। राज्य की सुरक्षा को प्रभावित करने का ढंग प्रत्यक्ष भी हो सकता है अथवा गुप्त भी।

5-तुलसी राम पटेल तथा सत्यवीर सिंह वाले उपर्युक्त मामले
6-जसवन्त सिंह बनाम पंजाब राज्य-1991[62] एफ०एल०आर० 137 [सु०को०]

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण सशस्त्र बलों या पुलिस बल में अनिष्ठा या असंतोष फैलाने का कार्य है जो राज्य की सुरक्षा को प्रभावित करता है। राज्य की सुरक्षा का हित वास्तविक कार्यों से प्रभावित हो सकता है अथवा ऐसे कार्य होने की संभावना से भी हो सकता है।

खण्ड [ग] लागू होने की शर्त राष्ट्रपति या राज्यपाल, यथास्थिति, की यह संतुष्टि है कि राज्य की सुरक्षा के हित में यह समीचीन नहीं है कि विभागीय जाँच की जाए। यह संतुष्टि राष्ट्रपति या राज्यपाल की व्यक्तिगत होनी अपेक्षित नहीं है बल्कि सांविधानिक ढाँचे में कार्य करते हुए राष्ट्रपति या राज्यपाल के संतुष्ट होने से है। जब राष्ट्रपति या राज्यपाल, यथास्थिति, संतुष्ट हो कि राज्य की सुरक्षा के हित में विभागीय जाँच कराना उचित या उपयुक्त या उपयोगी नहीं होगा, तब वह खण्ड [ग] के अधीन विभागीय जाँच करने से अभिमुक्ति प्रदान करने के अधिकारी होंगे।

राष्ट्रपति या राज्यपाल की संतुष्टि का कारण दण्डादेश में अभिलिखित होना आवश्यक नहीं है, न ही इसे जनसाधारण के लिए प्रकट किया जा सकता है। राष्ट्रपति या राज्यपाल की संतुष्टि शासन को प्राप्त गोपनीय सूचना पर आधारित हो सकती है। ऐसी सूचना प्रकट करने से सूचना के स्वरूप का प्रकटीकरण भी हो सकता है तथा एक बार ऐसे विशिष्ट स्वरूप की जानकारी हो जाने पर शासन को पुनः कोई सूचना उपलब्ध नहीं हो पाएगी।

देश की पुलिस कानून और व्यवस्था की संरक्षक है। ये देश की सीमा की सुरक्षा के लिए दुर्गम पहाड़ी स्थलों पर रहते हैं। यदि ये संरक्षक कानून तोड़ने वाले बन जाएं तथा हिंसक हो जाएं तथा दूसरों को भी ऐसा करने के लिए उकसाएं तो ऐसी परिस्थिति में तात्कालिक कार्रवाई करना आवश्यक हो जाता है तथा पुलिस बल के ऐसे प्रत्येक सदस्य के आचरण की जाँच करना राज्य की सुरक्षा के हित में समीचीन नहीं होगा एवं ऐसी परिस्थिति में खण्ड [ग] के अधीन शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है।

इसप्रकार उपरोक्त तीनों आपवादिक मामलों में विभागीय जाँच कराए बगैर सरकारी सेवक पर महादण्ड अधिरोपित किया जा सकता है। ऐसे दण्डादेश से व्यथित सरकारी सेवक को दो उपचार उपलब्ध होते हैं।

उपचार

संविधान के अनुच्छेद 311 [2] के द्वितीय परन्तुक के पूर्वोक्त तीनों खण्डों में से किसी खण्ड को लागू करके अथवा उसी के सदृश सेवा नियमों के अधीन सरकारी सेवक को पदच्युत किया जाए अथवा सेवा से हटाया जाए अथवा रैंक में अवनत किया जाए तो उसे निम्नलिखित दो उपचार उपलब्ध होते हैं-[7]

[1] सुसंगत सेवा नियमावली में उपबंधित समुचित विभागीय उपचार, अर्थात् अपील या पुनर्विलोकन, तथा
[2] यदि फिर भी असंतुष्ट हो तो न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का अवलम्ब लेना।

7-तुलसी राम पटेल तथा सत्यवीर सिंह वाले उपर्युक्त मामले।

अध्याय-नौ

दूसरी जाँच

किसी व्यक्ति को एक अपराध के लिए एक बार से अधिक "अभियोजित" और "दण्डित" नहीं किया जायगा, का सिद्धान्त विभागीय जाँच में भी लागू होता है।

अनुशासनिक प्राधिकारी किसी भी स्तर पर जाँच बन्द या समाप्त करने का आदेश कर सकते हैं, आरोपित सेवक को ऐसा कोई अधिकार नहीं है कि वह अंतिम निष्कर्ष तक जाँच जारी कराने पर बल देवें[1] यदि पहली जाँच को अनुशासनिक प्राधिकारी ने बन्द करा दिया हो अथवा पहली जाँच किसी प्रक्रियात्मक अनियमितता के आधार पर न्यायालय द्वारा निरस्त कर दी गई हो तो उन्हीं आरोपों के आधार पर "दूसरी जाँच" आरम्भ कराई जा सकती है[2] परन्तु विभागीय जाँच पूर्ण करने के उपरान्त आरोपित सेवक को दोषमुक्त कर दिया गया हो तो उन्हीं तथ्यों पर उसके विरूद्ध दूसरी जाँच नहीं कराई जा सकती, जब तक कि नियमों में ऐसे आदेश का पुनर्विलोकन करने के संबंध में विशिष्ट उपबंध न हों[4] जब सरकारी सेवक के विरूद्ध कुछ आरोपों के बारे में विभागीय जाँच करके उसे दोषमुक्त किया जा चुका हो तो उन्हीं आरोपों के साथ कुछ अन्य आरोप सम्मिलित करके दूसरा जाँच आरम्भ करना अधिकारिता से परे है तथा उचित नहीं है[5] इस संदर्भ में असम राज्य बनाम जे०एन० राय विश्वास[6], का मामला एक अच्छा उदाहरण है, जिसमें श्री विश्वास, जो एक वैटेर्नरी असिस्टेन्ट थे, को निलम्बित करके विभागीय जाँच आरम्भ की गई थी। जाँच के उपरान्त जाँच अधिकारी ने श्री विश्वास के विरूद्ध रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसके उपरान्त पदच्युति का दण्ड प्रस्तावित करके

1-प्रकाश नाथ बनाम वित्त आयुक्त[राजस्व], पंजाब,-1972 स०ला रि० 601[पंजाब उच्च न्यायालय]

2-एस०एन० पाण्डेय बनाम मध्य प्रदेश राज्य-आ०ई०आर० 1961 म०प्र० 293

3-देवेन्द्र बनाम उ०प्र० राज्य-आ०ई०आर० 1962 सु०को० 1334, तथा रमेश चन्द्र वर्मा बनाम आर०डी० वर्मा-आ०ई०आर० 1958 इला० 532

4-द्वारका चन्द्र बनाम राजस्थान राज्य-आ०ई०आर० 1958 राज० 38

5-एस०वी०जी० अयंगर बनाम महाराष्ट्र राज्य-आ०ई०आर० 1961 महाराष्ट्र 37

6-1976 स०ला न० 1[सु०को०]

उन्हें कारण बताओ नोटिस दी गई। श्री किवास ने अपने स्पष्टीकरण में अपनी निर्दोषिता का तर्क रखा। पशुपालन निदेशक ने उनके स्पष्टीकरण सहित संपूर्ण मामले पर विचार किया तथा श्री किवास को सेवा में पुनर्स्थापित करने का आदेश किया, जिसके फलस्वरूप श्री किवास सेवा में पुनर्स्थापित कर दिए गए। जब वह पशुपालन निदेशक सेवानिवृत्त हो गए तो उनके उत्तरवर्ती अधिकारी ने शासन को पत्र लिखा कि श्री किवास के विरुद्ध नये सिरे से दूसरी जाँच की जाए, जिसके विरुद्ध श्री किवास ने उच्च न्यायालय में रिट याचिका प्रस्तुत की, जो स्वीकार कर ली गई, जिसके विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की गई। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि, यद्यपि "दोहरा परिसंकट" का नियम दूसरी जाँच को बाधित नहीं करता, लेकिन नियमों में ऐसी कोई शक्ति न दी गई हो तो ऐसे मामलों में, जिनमें पहली जाँच के उपरान्त आरोपित सेवक को दोषमुक्त कर दिया गया हो, दूसरी जाँच नहीं कराई जा सकती। परन्तु कोई सरकारी सेवक ऐसा तर्क नहीं कर सकता कि यदि किसी कानूनी, तकनीकी या प्रक्रियात्मक त्रुटि या ऐसे ही किसी कारणवश पहली जाँच या दण्डादेश दूषित होना पाया जाए तो भी दूसरी जाँच नहीं कराई जा सकती। कानून के मूलभूत सिद्धान्तों का अतिक्रमण वैध उपबंधों के बगैर नहीं किया जा सकता। अतः जब एक बार जाँच पूर्ण करके आरोपित सेवक को दोषमुक्त कर दिया गया हो तथा उसे सेवा में पुनर्स्थापित कर दिया गया हो तो, नियमों में उस आदेश का पुनर्विलोकन या पुनरीक्षण करने की विशिष्ट शक्ति के अभाव में, अनुशासनिक प्राधिकारी दूसरी जाँच नहीं करा सकते।

यदि सरकारी सेवक को दुराचरण के लिए विभागीय जाँच करके दण्डित किया गया हो तथा यह दण्डादेश सक्षम न्यायालय द्वारा निरस्त कर दिया गया हो तो उसी आरोप के आधार पर दूसरी जाँच आरम्भ की जा सकती है, यदि पहली जाँच में प्रक्रियात्मक त्रुटि के आधार पर न्यायालय ने दण्डादेश निरस्त किया हो। परन्तु, यदि आरोप के गुणागुण

पर विचार करके न्यायालय ने दण्डादेश निरस्त किया हो तो उसी आरोप पर दूसरी जाँच नहीं की जा सकती।[7] इस संदर्भ में आनन्द नारायण शुक्ला बनाम म०प्र० राज्य[8] का मामला एक अच्छा उदाहरण है। श्री आनन्द नारायण शुक्ला कृषि विभाग में कार्यालयाध्यक्ष थे, जिनके विरुद्ध कुछ आरोपों के बारे में विभागीय जाँच की गई, जिसमें कुछ आरोप सही पाए गए तथा उन्हें रैंक में अवनति का दण्ड दिया गया। इस दण्डादेश को उन्होंने न्यायालय में चुनौती दी तथा न्यायालय ने इस आदेश को इस आधार पर निरस्त कर दिया कि विभागीय जाँच उचित एवं विधिक ढंग से नहीं की गई थी। इस निर्णय के उपरान्त उन्हें कार्यालयाध्यक्ष के पद पर पुनर्स्थापित कर दिया गया। कुछ ही दिनों बाद उन्हीं पुराने आरोपों पर पुनः जाँच की गई तथा श्री शुक्ला को आरोपों के लिए दोषी पाया गया एवं रैंक में अवनति का दण्डादेश किया गया। श्री शुक्ला ने तर्क किया कि उन्हीं पुराने आरोपों के लिए दूसरी जाँच नहीं की जा सकती थी, न ही दूसरा रैंक में अवनति का आदेश, विधानतः, किया जा सकता था। उच्चतम न्यायालय ने इस तर्क को अस्वीकार करते हुए कहा कि पहली जाँच में पारित दण्डादेश तकनीकी आधारों पर निरस्त किया गया था, अतः गुणागुण पर दूसरी जाँच की जा सकती थी।

यह सुप्रचलित है कि अनुशासनिक प्राधिकारी से भिन्न प्राधिकारी ने विभागीय जाँच की हो तो अनुशासनिक प्राधिकारी जाँच रिपोर्ट निरस्त करके पुनः जाँच करा सकते हैं। इस संदर्भ में वी० मुप्पन बनाम राज्य[9] का मामला उल्लेखनीय है, जिसमें श्री मुप्पन के विरुद्ध दुराचरण का परिवाद प्राप्त होने पर शासन ने मुख्य वन संरक्षक को जाँच करके रिपोर्ट देने का आदेश किया था। उन्होंने जाँच करके शासन को रिपोर्ट दी जिसमें श्री मुप्पन को कुछ आरोपों के लिए दोषी पाया गया, शेष के लिए दोषी नहीं पाया गया। शासन ने इस रिपोर्ट पर विचार करने के उपरान्त उन्हीं आरोपों के बारे में पुनः जाँच करने का आदेश किया। श्री मुप्पन ने तर्क किया कि उन्हीं आरोपों के बारे में दूसरी जाँच नहीं की जा सकती। लेकिन केरल उच्च न्यायालय ने कहा कि अनुशासनिक प्राधिकारी से भिन्न प्राधिकारी ने जाँच की हो तो उनकी जाँच रिपोर्ट

7-देवेन्द्र प्रताप बनाम उ०प्र० राज्य-आ०इ०रि० 1962 सु०को० 1334, तथा भारत संघ बनाम ज्य०पी० पटनायक-1981[1]सला रि० 377 [सु०को०]

8-1979 सला ज० 528[सु०को०]

9-आ०इ०रि० 1960 केरल 2५4

को अतिष्ठित करके अनुशासनिक प्राधिकारी पुनः जाँच करने का आदेश कर सकते हैं।

सारांश यह कि यदि पहली विभागीय जाँच, प्रक्रियात्मक या तकनीकी त्रुटि के आधार पर, निरस्त की गई हो तो उन्हीं आरोपों पर दूसरी विभागीय जाँच की जा सकती है। परन्तु यदि पहली जाँच, आरोप के गुणागुण पर विचार करके, निरस्त की गई हो तो उसी आरोप के लिए दूसरी जाँच नहीं की जा सकती।

अध्याय- दस

दाण्डिक विचारण एवं विभागीय जाँच

संविधान के अनुच्छेद 311 या किसी अन्य कानून में ऐसा कोई उपबंध नहीं है कि यदि सरकारी सेवक के कथित दुराचरण से, भारतीय दण्ड संहिता या किसी अन्य कानून के अधीन, अपराध भी बनता हो तो शासन उसके विरुद्ध, दाण्डिक न्यायालय में अभियोजन संस्थित होने की दशा में, विभागीय जाँच नहीं कर सकता है, बल्कि न्यायालय में अभियोजन तथा विभागीय जाँच, दोनों, साथ-साथ किए जा सकते हैं। यदि कथित दुराचरण से अपराध भी बनता हो तो शासन को विवेकाधिकार है कि वह पहले दाण्डिक न्यायालय में अभियोजन प्रस्तुत करे, तदुपरान्त विभागीय जाँच आरम्भ करे, अथवा अभियोजन प्रस्तुत किए बगैर विभागीय जाँच आरम्भ करे या दोनों कार्यवाहियाँ करे। आपराधिक मामले की कार्रवाई समाप्त होने के उपरान्त भी विभागीय जाँच आरम्भ की जा सकती है।[1]

एक समान आरोपों के संबंध में विभागीय जाँच एवं दाण्डिक न्यायालय में अभियोजन की कार्यवाहियाँ साथ-साथ की जा सकती हैं। यदि किसी सेवक के विरुद्ध दाण्डिक न्यायालय में अपराध के लिए विचारण किया जा रहा हो तो उसके निर्णय तक विभागीय जाँच की कार्यवाही रोकना अनिवार्य नहीं है। परन्तु यदि मामला गंभीर प्रकृति का हो अथवा तथ्य एवं कानून के विशिष्ट प्रश्न विद्यमान हों तो उचित होगा कि अनुशासनिक प्राधिकारी दाण्डिक न्यायालय के निर्णय तक प्रतीक्षा कर लें, जिससे कि आपराधिक मामले में उस सेवक को अपना बचाव करने में कोई क्षति न होने पाए।[2]

प्रत्येक मामले में न्यायालय में आपराधिक अभियोजन के कारण मात्र से विभागीय जाँच की कार्यवाही स्थगित नहीं की जा सकती।

1-मध्य प्रदेश राज्य बनाम लाडली शरन सिन्हा-आ०इं०रि० 1958 म०प्र० 326 तथा प्रताप सिंह बनाम पंजाब राज्य-आ०इं०रि० 1964 सु०को०72

2-दिल्ली क्लोथ ऐण्ड जनरल मिल्स लि० बनाम कुशलभान-आ०इं०रि० 1960 सु०को० 806

दोनों कार्यवाईयों का प्रयोजन अलग-अलग है। विभागीय कार्रवाई का प्रयोजन यह अभिनिश्चित करना है कि क्या वह सेवक सेवा में बनाए रखने योग्य है? जबकि आपराधिक अभियोजन का प्रयोजन यह अभिनिश्चित करना है कि भारतीय दण्ड संहिता या अन्य कानून में परिभाषित अपराध के अवयव बनते हैं या नहीं।[3] विभागीय कार्यवाहियों में विचारणीय प्रश्न होता है कि क्या सरकारी सेवक उन आरोपों के लिए दोषी है जिन पर उसके विरूद्ध कार्यवाही की जानी प्रस्तावित है? यही प्रश्न किसी सिविल या दाण्डिक कार्रवाई में, न्यायालय में भी, विचाराधीन हो सकता है। परन्तु न्यायालय में कार्यवाही विचाराधीन होने मात्र से अनुशासनिक कार्रवाई करने में कोई बाधा नहीं है। अनुशासनिक कार्रवाई करने की शक्ति अनुशासनिक प्राधिकारी में निहित होती है, सिविल या दाण्डिक न्यायालय को ऐसी कोई शक्ति प्राप्त नहीं होती। अतः यदि न्यायालय ने विभागीय कार्रवाई स्थगित करने का कोई आदेश न किया हो तो अनुशासनिक प्राधिकारी अपनी विधिक शक्तियों का प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र हैं। परन्तु यदि न्यायालय ने कोई स्थगन आदेश किया हो तो उसका जानबूझकर उल्लंघन करके अनुशासनिक कार्रवाई करने से न्यायालय की अवमानना हो सकती है।[4]

अतः, यदि विभागीय जाँच में आरोपित सेवक के विरूद्ध लगाया गया आरोप गंभीर प्रकृति का हो जिसमें तथ्य एवं कानून के विशिष्ट प्रश्न विद्यमान हों तथा उसी विषय में न्यायालय में कार्यवाही विचाराधीन हो तो अनुशासनिक प्राधिकारी के लिए यही उचित होगा कि वह विभागीय जाँच की कार्यवाही, न्यायालय के निर्णय होने तक, स्थगित कर देवें। साधारण मामलों में विभागीय जाँच की कार्यवाही साथ-साथ जारी रखी जा सकती है।[5] यदि सरकारी सेवक के विरूद्ध दोनों कार्यवाहियाँ की गई हों तथा विभागीय जाँच पहले पूर्ण करके पदच्युति आदेश कर दिया गया हो तो यह आदेश, बाद में दाण्डिक न्यायालय द्वारा उस सेवक को आपराधिक आरोप से दोषमुक्त करने के कारण, प्रभावित नहीं होगा, क्योंकि विभागीय जाँच में "अधिसंभाव्यता की प्रबलता" पर आरोप साबित

3-भगवान सिंह बनाम डिप्टी कमिश्नर, सीतापुर-आ0इ0रि0 1962 इला0 232

4-जंग बहादुर सिंह बनाम बैजनाथ-आ0इ0रि0 1969 सु0को0 30

5-टाटा आयल मिल्स कं0लि0 बनाम उसके कर्मकार-आ0इ0रि0 1965 सु0को0 155, डी0डी0 सहमत बनाम पंजाब नेशनल बैंक 1981[2] स0ला रि0 365 [पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय]

माना जाता है, जबकि दाण्डिक विचारण में आरोप, "युक्तियुक्त संदेह से परे" साबित होना अनिवार्य है।[6]

आपराधिक मामले में दोषमुक्ति का प्रभाव

सरकारी सेवक जब भारतीय दण्ड संहिता के अधीन दण्डनीय अपराध कारित करे तो, सामान्यतया, पहले उसका अभियोजन दाण्डिक न्यायालय में करना चाहिए, परन्तु ऐसा करना प्रत्येक मामले में अनिवार्य नहीं है, अनुशासनिक प्राधिकारी उस आरोप के लिए विभागीय जाँच भी करा सकते हैं। यदि विभाग ने दाण्डिक न्यायालय में अभियोजन किया हो तो उसके निर्णय की प्रतीक्षा की जानी चाहिए, उसके उपरान्त ही विभागीय जाँच करनी चाहिए। दाण्डिक न्यायालय विचारण करके आरोपित सेवक को दोषमुक्त कर देवे तो उसके विरुद्ध उसी अभियोग एवं साक्ष्य पर विभागीय जाँच करना सर्वथा अनुचित है। ऐसे साक्ष्य, जो न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए थे और जिन पर न्यायालय ने अविश्वास कर दिया था, के आधार पर विभागीय जाँच में उस सेवक को दोषी ठहराना उचित नहीं होगा।[7] यदि न्यायालय ने आरोपित सेवक को दोषमुक्त कर दिया हो तथा यह आदेश गुणागुण पर आधारित हो, तकनीकी आधारों पर न हो, तो उन्हीं आरोपों के लिए विभागीय जाँच करना उचित नहीं है।[8]

कभी-कभी तकनीकी कारणों से अभियोजन विफल हो जाता है। ऐसे मामलों में सेवक, दोषमुक्ति के फलस्वरूप, दुराचरण के कलंक से पूर्णतः मुक्त नहीं होता है। ऐसी दोषमुक्ति को "सम्मानित दोषमुक्ति" नहीं कहा जा सकता है। ऐसे मामलों में सेवक को तकनीकी दोषमुक्ति के बावजूद उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाई के लिए समुचित सामग्री उपलब्ध हो सकती है जो साबित कर सके कि वह सेवक सरकारी सेवा में बने रहने योग्य नहीं है। ऐसे मामलों में उसके विरुद्ध विभागीय जाँच की जा सकती है तथा उसे विभागीय स्तर पर दण्डित किया जा सकता है।[9] कहने का तात्पर्य यह है कि ससम्मान दोषमुक्ति से अन्यथा मामलों में, अर्थात् ऐसी दोषमुक्ति जो गुणागुण पर न होकर तकनीकी बातों

6-सरदार बहादुर बनाम भारत संघ-1972 स0ला रि0 355 [सु0को0]
7-श्री0 रुममबरम् पोन्नुरंगम बनाम जी0एम0, मैसूर राज्य परिवहन विभाग आ0इं0रि0 1965 मैसूर 84
8-श्री0 चनप्पा बनाम मैसूर राजस्व अपीलीय अधिकरण, बंगलौर-आ0इं0रि0-1966 मैसूर 68
9-मध्य प्रदेश राज्य बनाम लाडली शरन सिन्हा-आ0इं0रि0 1958 म0प्र0 326

पर आधारित हो, विभागीय जाँच की जा सकती है।[10] अतः जाँच अधिकारी ने अपनी रिपोर्ट में यदि यह कहा हो कि दाण्डिक विचारण करने वाले मजिस्ट्रेट का निर्णय प्रत्येक दशा एवं प्रत्येक मामले में उस सेवक के विरूद्ध विभागीय जाँच में बाध्यकारी नहीं हो सकता है, तो जाँच अधिकारी के इस कथन में कोई त्रुटि नहीं है।[11]

यह सुप्रचलित है कि तथ्यों एवं अभिकथनों को सक्षम न्यायालय ने परीक्षित किया हो एवं निष्कर्ष दिया हो कि ये कथन सही नहीं है तो उन्हीं तथ्यों एवं अभिकथनों के आधार पर किसी आरोप के संबंध में विभागीय जाँच करना अनुमन्य नहीं है। परन्तु यदि न्यायालय ने सिर्फ उन अभिकथनों की सत्यता के बारे में आशंका जाहिर की हो तो उन्हीं अभिकथनों पर विभागीय जाँच कराने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती है, यदि न्यायालय में प्रस्तुत साक्ष्य से बेहतर साक्ष्य उपलब्ध होने की उम्मीद हो।[12]

जब सरकारी सेवक दाण्डिक न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया जाए तो उसके विरूद्ध लम्बित विभागीय जाँच की कार्यवाही जारी रखी जाए या नहीं? इसका विनिश्चय, दाण्डिक न्यायालय के निष्कर्षों की प्रकृति पर विचार करके, किया जाएगा। सामान्यतया, जब अभियुक्त को ससम्मान एवं सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया हो तो उन्हीं आरोपों पर या उन्हीं साक्ष्यों पर विभागीय जाँच करना या जारी रखना उचित नहीं होगा। लेकिन सिर्फ अभियुक्त के दोषमुक्त होने मात्र से अनुशासनिक प्राधिकारी की जाँच करने या जारी रखने की शक्ति नहीं छिन जाती, न ही उनके विवेकाधिकार पर कोई अंकुश लगता है। यदि वह उचित समझें कि जाँच करने या जारी रखने के अच्छे आधार एवं समुचित साक्ष्य उपलब्ध है तो वह जाँच करा या जारी रख सकते हैं।[13]

अपराधिक विचारण में आरोपित व्यक्ति को दोषसिद्ध करना एक बात है तथा दण्ड देना दूसरी बात है। उसी आरोप के लिए विभागीय स्तर पर दुराचरण के लिए दण्ड देना एक तीसरी बात है।

10-आर०पी० कपूर बनाम भारत संघ-आ०इ०रि० 1964 सु०को० 787
11-आँध्र प्रदेश राज्य बनाम श्री रामाराव-आ०इ०रि० 1963 सु०को० 1723
12-के०एन० सोलंकी बनाम अधीक्षक पोस्ट आफिस-1987[3] स०ला० ज० 75 [केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, अहमदाबाद]
13-कारपोरेशन आफ नागपुर बनाम रामचन्द्र-आ०इ०रि० 1984 सु०को० 626

अतः यदि दाण्डिक न्यायालय ने आरोपित व्यक्ति को दोषसिद्ध किया हो, परन्तु दण्ड न देकर उसे सदाचार की परिवीक्षा पर रिहा किया हो तो सिर्फ इसी कारणका "दोषसिद्धि" का प्रभाव समाप्त नहीं हो सकता, अर्थात् सदाचार की परिवीक्षा पर छोड़ने से दोषसिद्धि समाप्त नहीं होती एवं अपराध के लिए दोषसिद्धि के आधार पर विभागीय स्तर पर दण्ड अधिरोपित किया जा सकता है।[14]

परिवीक्षा अधिनियम की धारा 12, सदाचार की परिवीक्षा पर छोड़े गए अभियुक्त को इस सीमा तक लाभ देता है कि अपराध की दोषसिद्धि से जुड़ी अयोग्यता से उसे क्षति न होगी या हानि न होगी। लेकिन विभागीय कार्यवाहियाँ उन अयोग्यताओं में सम्मिलित नहीं की जा सकती क्योंकि वे दोषसिद्धि से जुड़ी नहीं हो सकती। अतः सरकारी सेवकों को परिवीक्षा पर छोड़ने अथवा धारा 12 के प्रभाव से उस सेवक को विभागीय कार्यवाहियों से मुक्ति नहीं मिल सकती।[15]

उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों की विभिन्न निर्णयज विधियों पर विचार करके मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने एम०एम० रबर कं० लि०, मद्रास बनाम एस० नटराजन एवं एक अन्य, के मामले[16] में आपराधिक कार्यवाहियों एवं अनुशासनिक कार्यवाहियों के बीच अंतर इस प्रकार सारांशित किया है-

1. अनुशासनिक कार्यवाई, कोई आपराधिक विचारण नहीं है।
2. आपराधिक कार्यवाईयों का उद्देश्य समाज की सुरक्षा सुनिश्चित करना है, जबकि विभागीय कार्यवाहियों का उद्देश्य लोक सेवाओं में दक्षता तथा शुद्धता सुनिश्चित करना है।
3. दाण्डिक विचारण में किसी अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए आरोप युक्तियुक्त संदेह से परे साबित होना अपेक्षित है, जबकि सबूत का ऐसा मानक विभागीय जाँच में किसी व्यक्ति को दोषी ठहराने के लिए अपेक्षित नहीं है, अपितु इसमें "अधिसंभाव्यता की प्रबलता" से दोषसिद्ध किया जा सकता है।

14-भारत संघ बनाम बक्षी राम-1960 कि०ला० ज० 1013

15-हरि सिंह बनाम उ०प्र० राज्य-1990 कि०ला० ज० 66[इलाहाबाद]

16-1968[1]म०ला० ज० 256

4. आपराधिक कार्यवाहियों में साक्ष्य के कठोर नियम तथा साक्ष्य अधिनियम के उपबंध लागू होते हैं जबकि विभागीय जाँच में ये नियम एवं उपबंध सख्ती से लागू नहीं होते। सरकारी सेवक के विरूद्ध जिस आरोप के लिए आपराधिक विचारण किया गया हो उसी आरोप पर विभागीय जाँच आरम्भ करने से किसी कानूनी उपबंध अथवा नैसर्गिक-न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन नहीं होता है।

सारांश यह है कि विभागीय कार्यवाहियों एवं दाण्डिक विचारण के क्षेत्र अलग-अलग हैं। दाण्डिक न्यायालय द्वारा दोषमुक्त करने मात्र से उन्हीं आरोपों पर विभागीय जाँच करना बाधित नहीं है, परन्तु न्यायालय ने गुणागुण पर विचार करके दोषमुक्त किया हो तो उन्हीं आरोपों एवं साक्ष्यों पर विभागीय जाँच करना या जारी रखना उचित नहीं है। यदि तकनीकी कारणों से न्यायालय ने दोषमुक्त किया हो, तथा जाँच करने के अच्छे आधार एवं समुचित साक्ष्य उपलब्ध हो तो विभागीय जाँच करायी या जारी रखी जा सकती है।

अध्याय- ग्यारह

न्यायिक अधिकारियों के विरुद्ध जाँच

संविधान के अनुच्छेद 235 में "अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण" का उपबंध इस प्रकार है-

> "जिला न्यायालयों और उनके अधीनस्थ न्यायालयों का नियंत्रण जिसके अंतर्गत राज्य की न्यायिक सेवा के व्यक्तियों और जिला न्यायाधीश के पद से अवर किसी पद को धारण करने वाले व्यक्तियों की पदस्थापना, प्रोन्नति और उनको छुट्टी देना है, उच्च न्यायालय में निहित होगा, किन्तु इस अनुच्छेद की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह ऐसे किसी व्यक्ति से उसके अपील के अधिकार को छीनती है जो उसकी सेवा की शर्तों का विनियमन करने वाली विधि के अधीन उसे है या उच्च न्यायालय को इस बात के लिए प्राधिकृत करती है कि वह उससे ऐसी विधि के अधीन विहित उसकी सेवा की शर्तों के अनुसार व्यवहार न करके अन्यथा व्यवहार करे।"

इस प्रकार जिला न्यायाधीशों और उनके अधीनस्थ न्यायालयों का नियंत्रण उच्च न्यायालय में निहित होता है, जिसका प्रयोजन न्यायपालिका की स्वतंत्रता बनाए रखना है। शब्द "नियंत्रण" में न्यायाधीशों के आचरण एवं अनुशासन संबंधित विषयों का नियंत्रण भी सम्मिलित है, अर्थात्, उच्च न्यायालय को राज्य की न्यायिक सेवा के अधिकारियों के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाई करने की अधिकारिता प्राप्त होती है। यह सही है कि राज्य के न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति राज्यपाल करते हैं तथा इन अधिकारियों को पदच्युत करने या सेवा से हटाने की शक्ति भी राज्यपाल को ही प्राप्त होती है, लेकिन इससे उच्च न्यायालय के नियंत्रण का अतिक्रमण नहीं होता। कहने का तात्पर्य यह कि न्यायिक अधिकारियों के विरुद्ध विभागीय जाँच कराने की शक्ति

एवं महादण्ड से अन्यथा कोई दण्ड अधिरोपित करने की शक्ति उच्च न्यायालय में निहित होती है। लेकिन पदच्युति या सेवा से हटाने या रैंक में अवनति का महादण्ड अधिरोपित करने की शक्ति उच्च न्यायालय को प्राप्त नहीं होती, अपितु राज्यपाल को प्राप्त होती है।[1]

यद्यपि राज्य की न्यायिक सेवा के अधिकारियों की नियुक्ति राज्यपाल करते हैं, लेकिन नियुक्ति हो जाने पर इन अधिकारियों पर पूर्ण नियंत्रण उच्च न्यायालय में निहित होता है। इन अधिकारियों के विरुद्ध कोई भी अनुशासनिक कार्रवाई उच्च न्यायालय ही आरम्भ कर या करा सकता है, अर्थात् उच्च न्यायालय ही राज्य के न्यायिक अधिकारियों के विरुद्ध विभागीय जाँच करा सकता है। राज्यपाल किसी न्यायिक अधिकारी की सेवा समाप्त करने, पदच्युत करने या सेवा से हटाने या रैंक में अवनत करने का आदेश उच्च न्यायालय की संस्तुति पर ही कर सकते हैं।[2] अतः राज्य की न्यायिक सेवा के अधिकारियों के विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाईयाँ उच्च न्यायालय द्वारा ही आरम्भ की जा सकती है। यदि जाँचोपरान्त कोई दण्ड अधिरोपित करना हो तो सेवा शर्तों के अनुरूप किया जा सकता है। चूँकि न्यायिक अधिकारियों के नियुक्ति प्राधिकारी राज्यपाल होते हैं, अतः इन अधिकारियों पर महादण्ड राज्यपाल ही अधिरोपित कर सकते हैं, उच्च न्यायालय राज्य के न्यायिक अधिकारियों पर महादण्ड अधिरोपित नहीं कर सकता। राज्य के न्यायिक अधिकारी पर महादण्ड अधिरोपित करने का उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश असंवैधानिक है। ऐसे आदेश की पुष्टि राज्यपाल द्वारा करने मात्र से यह वैध नहीं हो सकता। यदि आरम्भिक प्राधिकारी का आदेश या मूल आदेश शून्य हो तो अपीलीय अधिकारी का आदेश इसे वैध नहीं बना सकता।[3]

1-कलकत्ता उच्च न्यायालय बनाम अमृत कुमार-आ०इ०रि० 1962 सु०को० 1705, तथा पश्चिम बंगाल राज्य बनाम नृपेन्द्र नाथ बागची-आ०इ०रि० 1966 सु०को० 447

2-पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय बनाम हरियाणा राज्य-आ०इ०रि० 1975 सु०को० 613 [पूर्ण न्याय पीठ],शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य-आ०इ०रि० 1974 सु०को० 2192, तथा ईश्वर चन्द्र अग्रवाल बनाम पंजाब राज्य-आ०इ०रि० 1974 सु०को० 2192

3-शरतकान्त मिश्र बनाम उच्च न्यायालय, उड़ीसा-आ०इ०रि० 1976 सु०को० 1899

इस संदर्भ में पश्चिम बंगाल राज्य बनाम नृपेन्द्र नाथ बागची[4] का मामला एक अच्छा उदाहरण है, जिसमें श्री बागची को 10·11·1927 को मुंसिफ के पद पर नियुक्त किया गया था तथा बाद में पदोन्नत करते हुए जिला न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किया गया। उन्हें दिनांक 31·7·1953 को सेवानिवृत्त होना था लेकिन राज्य सरकार ने उन्हें दिनांक 1·8·1953 से दो मास के लिए सेवा में बने रहने का आदेश दिनांक 19·7·1953 को किया तथा 20·7·1953 के आदेश से उन्हें निलम्बित कर दिया। उसके अगले दिन उन्हें आरोप-पत्र देकर राज्य सरकार ने विभागीय जाँच करने का आदेश किया। जाँचोपरान्त उन्हें पदच्युत करने का आदेश किया गया। इस संपूर्ण कार्यवाही में उच्च न्यायालय से कोई सलाह नहीं ली गई। श्री बागची ने इस आदेश को उच्च न्यायालय में चुनौती दी। उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने विभागीय जाँच एवं उसमें पारित पदच्युति आदेश निरस्त कर दिया। जिसके विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की गई। उच्चतम न्यायालय ने अपील खारिज कर दी तथा कहा कि, सिर्फ उच्च न्यायालय ही, इस मामले में, श्री बागची के विरुद्ध विभागीय जाँच करा सकता था।

उच्चतम न्यायालय ने, मुख्य न्यायाधीश, आंध्र प्रदेश बनाम एल०वी०ए० दीक्षितलु एवं अन्य,[5] के मामले में कहा है कि संविधान के अनुच्छेद 235 के अधीन, अधीनस्थ न्यायालयों पर उच्च न्यायालय का नियंत्रण अपवर्जक प्रकृति का है, इसका व्यापक विस्तार है एवं प्रभावशाली ढंग से लागू होता है। इस नियंत्रण में विभिन्न किस्म के विषयों का समावेश होता है। अन्य विषयों के अलावा इसमें निम्नलिखित विषय सम्मिलित हैं,

(1) राज्य के न्यायिक अधिकारियों के विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई करने की अधिकारिता, जिसमें सिर्फ महादण्ड देने की शक्ति सम्मिलित नहीं है। अर्थात् उच्च न्यायालय न्यायिक अधिकारियों के विरुद्ध विभागीय जाँच कर या करा सकता है तथा पदच्युति

4-आर्ड०आर० 1966 सु०को० 447
5-आर्ड०आर० सु०को० 193

या सेवा से हटाने के सिवाय अन्य दण्ड अधिरोपित कर सकता है।

[2] राज्य के न्यायिक अधिकारियों पर उच्च न्यायालय का नियंत्रण एकांतिक होता है तथा इन अधिकारियों के आचरण की जाँच सिर्फ उच्च न्यायालय ही कर या करा सकता है, अन्य कोई प्राधिकारी नहीं।

[3] राज्य की न्यायिक सेवा के सदस्यों को निलम्बित करना।

[4] राज्य की न्यायिक सेवा के सदस्यों का स्थानान्तरण, स्थायीकरण एवं पदोन्नति करना।

[5] प्रशासनिक पदों पर प्रतिनियुक्ति अथवा कैडर से अतिरेक पद पर पदोन्नत न्यायिक अधिकारियों को वापस बुलाना।

[6] न्यायिक अधिकारियों को वैकल्पिक सेवानिवृत्त करना।

राज्य की न्यायिक सेवा के सदस्यों का प्रशासनिक, न्यायिक एवं अनुशासनिक नियंत्रण सिर्फ उच्च न्यायालय में निहित होता है। इन विषयों के संबंध में उच्च न्यायालय की संस्तुति राज्य सरकार पर बाध्यकारी होती है। प्रशासनिक एवं अनुशासनिक अधिकारिता का प्रयोग करके वैकल्पिक सेवानिवृत्ति की जाती है। अतः किसी न्यायिक अधिकारी की वैकल्पिक सेवानिवृत्ति उच्च न्यायालय की संस्तुति पर ही की जा सकती है।[6]

सारांश यह है कि राज्य के न्यायिक अधिकारियों के आचरण की विभागीय जाँच करने या कराने की शक्ति सिर्फ उच्च न्यायालय को प्राप्त होती है। अन्य कोई प्राधिकारी न्यायिक अधिकारियों के विरुद्ध जाँच करने या कराने का आदेश नहीं कर सकता। इस जाँच के उपरान्त, आरोपों के लिए दोषी पाने की दशा में पदच्युति या सेवा से हटाने या रैंक में अवनत करने का दण्ड अधिरोपित करने की शक्ति राज्यपाल को प्राप्त होती है, उच्च न्यायालय यह दण्ड अधिरोपित नहीं कर सकता। इन तीनों महादण्डों के सिवाय कोई भी दण्ड उच्च न्यायालय, सेवा

6-हरियाणा राज्य बनाम इन्दर प्रकाश आनन्द एवं अन्य-आ०इं०रि० 1976 सु०को० 184।

शर्तों के अनुरूप, न्यायिक अधिकारियों पर अधिरोपित कर सकता है। संविधान के अनुच्छेद 311[2] के द्वितीय परन्तुक के खण्ड [ख] एवं [ग] के विषय में भी उच्च न्यायालय कोई विनिश्चय नहीं कर सकता, इसका विनिश्चय सिर्फ राज्यपाल ही कर सकते हैं।

7-पश्चिम बंगाल राज्य बनाम नृपेन्द्र नाथ बागची-आ0इ0रि0 1966सु0को0447

सेवानिवृत्त होने पर जाँच

सरकारी सेवक के विरुद्ध विभागीय जाँच करके उसे दण्डित करने की जो शक्ति शासन को प्राप्त रहती है, वह सेवक के सेवानिवृत्त हो जाने पर प्राप्त नहीं होती, क्योंकि सेवानिवृत्ति के उपरान्त संविधान के अनुच्छेद 311[2] में नियत "रैंक में अवनति", "पदच्युति" या "सेवा से हटाने" का दण्ड सेवक पर अधिरोपित नहीं किया जा सकता है। इसीलिए उच्चतम न्यायालय[1] ने कहा है कि किसी सरकारी सेवक के विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई की जानी हो तो उसके सेवानिवृत्त होने से पूर्व ही यह कार्रवाई कर ली जानी चाहिए। सेवानिवृत्त होने पर "मालिक-सेवक" का संबंध समाप्त हो जाता है और सामान्यतया इसके उपरान्त सेवक के विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई आरम्भ या जारी नहीं की जा सकती है। परन्तु, यदि नियमों में ऐसा अनुमन्य हो तो पैंशन रोकने या वापस लेने अथवा पैंशन से वसूली करने के सीमित प्रयोजन हेतु अनुशासनिक कार्रवाई जारी रखी अथवा आरम्भ की जा सकती है।[2]

सरकारी सेवक जब त्यागपत्र देता है तो उसकी सेवा, सामान्यतया, समुचित प्राधिकारी द्वारा त्यागपत्र स्वीकार करने की तिथि से समाप्त हो जाती है, यदि सेवा विधि या नियमावली में अन्यथा उपबंध न हो।[3] सेवानिवृत्ति या पद त्यागने से मालिक-सेवक का सम्बन्ध समाप्त हो जाता है एवं उसके उपरान्त, सामान्यतया, उस सेवक के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही नहीं की जा सकती है, परन्तु यदि नियमों में अनुमन्य हो तो पैंशन रोकने या पैंशन में से वसूली करने के सीमित प्रयोजन हेतु अनुशासनिक कार्यवाही की जा सकती है।[4]

सेवानिवृत्त सेवक के विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई करने के उपबंध सिविल सर्विस रेगुलेशन्स के अनुच्छेद 470[बी], 351 तथा

1-पंजाब राज्य बनाम खेमी राम-आ०ई०आर० 1970 सु०को० 214

2-पी०बी० पुष्करन बनाम केरल स्टेट फाइनेन्शियल इंटरप्राइजेज-1988[56] एफ०एल०आर० 883[केरल उच्च न्यायालय]

3-काशी लिंगम बनाम पी०एस०जी० कालेज 1981[1] एल०एल०जे० 405

4-पी०बी० पुष्करन बनाम केरल स्टेट फाइनेंशियल इन्टरप्राइजेज लि० 1988[56] एफ०एल०आर० 883[केरल उच्च न्यायालय]

351-ए में है। उत्तर प्रदेश शासन ने इन अनुच्छेदों को अंगीकृत किया है, जिससे ये उपबंध उत्तर प्रदेश के सरकारी सेवकों पर लागू होते हैं।

सेवानिवृत्त सरकारी सेवक ने सेवानिवृत्ति से पूर्व अर्थात् अपने सेवाकाल में दुराचरण या दुर्व्यवहार किया हो तो उसके विरुद्ध अनुच्छेद 470[बी] तथा 351-ए के अधीन अनुशासनिक कार्रवाई की जा सकती है। यदि वह सेवानिवृत्ति के उपरान्त कोई दुराचरण करता है तो उसके विरुद्ध अनुच्छेद 351 के अधीन अनुशासनिक कार्रवाई की जा सकती है। अतः सेवानिवृत्त सेवक के विरुद्ध जाँच कार्रवाई को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है:-

1. सेवाकाल में किए गए दुराचरण की जाँच, तथा
2. सेवानिवृत्ति के उपरान्त किए गए दुराचरण की जाँच।

1. सेवाकाल में किए गए दुराचरण की जाँच

सिविल सर्विसेज रेगुलेशन्स के अनुच्छेद 470 के उपखण्ड [ए] में उपबंध किया गया है कि नियमों के अधीन अनुमन्य पूर्ण पेंशन सामान्य रूप से नहीं दी जाएगी, अथवा तब तक नहीं दी जाएगी जब तक कि उस सेवक की सेवा अच्छी न समझी जाए। तथा उपखण्ड [बी] में उपबंध है कि, यदि सेवा पूर्णतया संतोषजनक न रही हो, तो पेंशन स्वीकृत करने वाले प्राधिकारी पेंशन की धनराशि को, जितनी उचित समझें, घटा सकते हैं। यदि पेंशन स्वीकृत करने वाले प्राधिकारी, नियुक्ति प्राधिकारी से भिन्न हों तो पेंशन की धनराशि घटाने का आदेश नियुक्ति प्राधिकारी के अनुमोदन के बगैर नहीं किया जाएगा।

दुराचरण, उपेक्षा, अक्षमता, अयोग्यता, कर्तव्यपरायणता का अभाव या अन्य सुसंगत कारणों से, किसी सेवक की सेवा असंतोषजनक मानी जा सकती है। अतः यदि किसी सरकारी सेवक ने अपने सेवाकाल के दौरान कोई दुराचरण या दुर्व्यवहार किया हो तथा वह सेवानिवृत्त

हो जाता है तो अनुच्छेद 470[बी] के अधीन पैंशन घटा कर स्वीकृत करने के प्रयोजन हेतु जाँच की जा सकती है। इस उपबंध के अधीन यह विनिश्चय करने के लिए, सेवानिवृत्त-सेवक के विरुद्ध जाँच की जा सकती है, कि उसकी सेवा पूर्णतया संतोषप्रद रही है या नहीं। यह आवश्यक नहीं है कि उसके सेवानिवृत्त होने से पूर्व जाँच आरम्भ कर दी गई हो। यदि सेवानिवृत्ति होने के पूर्व जाँच आरम्भ कर दी गई हो तो सेवानिवृत्त होने के उपरान्त भी उक्त प्रयोजन हेतु जाँच जारी रखी जा सकती है। यदि सेवानिवृत्त होने के पूर्व जाँच आरम्भ न की गई हो तो सेवानिवृत्त होने के उपरान्त यह जानने के लिए जाँच की जा सकती है कि उसकी सेवा पूर्णतया संतोषप्रद रही है या नहीं। दोनों दशाओं में, यह विनिश्चय करने के लिए जाँच की जा सकती है कि उस सेवक की सेवा पूर्णतया संतोषप्रद रही है या नहीं। यदि इस जाँच के उपरान्त ज्ञात होवे कि सेवक की सेवा पूर्णतया संतोषप्रद नहीं रही है तो सक्षम प्राधिकारी पैंशन घटाकर स्वीकृत करने का दण्ड दे सकते हैं। अनुच्छेद 470[बी] के अधीन पैंशन घटाना यद्यपि सी०सी०ए० रूल्स में दण्ड नहीं है, परन्तु शासनादेश सं0- 843/दस-325 दिनांक 3 मार्च, 1991 में उत्तर प्रदेश शासन ने कहा है कि अनुच्छेद 470[बी] के अधीन पैंशन घटाकर स्वीकृत करने के आदेश के विरुद्ध अपील उस प्राधिकारी के समक्ष की जा सकती है जिसके समक्ष सी०सी०ए० रूल्स या पनिशमेण्ट ऐण्ड अपील रूल्स के अधीन पारित दण्डादेश के विरुद्ध अपील की जा सकती हो। इससे स्पष्ट है कि अनुच्छेद 470[बी] के अधीन पैंशन घटाकर स्वीकृत करने का आदेश एक दण्ड है।[5]

उच्चतम न्यायालय[6] ने कहा है कि पैंशन घटाने, रोकने या वापस लेने अथवा पैंशन से वसूली करने के आदेश से "प्रभावित व्यक्ति" को आर्थिक हानि होती है, अर्थात् सिविल दुष्परिणाम उत्पन्न होते हैं, अतः उस व्यक्ति को अपनी सफाई का उचित अवसर दिए बगैर ऐसा आदेश नहीं किया जा सकता है।

5-महेश चन्द्र विश्नल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य-1983[2]बा0ला न0 121 इला0उच्च न्यायालय|

6-पंजाब राज्य बनाम के0आर0 एरी-आर्ई0आर0 1973 पृ0को0 834 एवं पंजाब राज्य बनाम इकबाल सिंह-आर्ई0आर0 1976 पृ0को0 667

यद्यपि अनुच्छेद 470 [बी] के अधीन कार्रवाई करने हेतु "विभागीय जाँच" करना आवश्यक नहीं है, परन्तु नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त के अनुरूप संबंधित सरकारी सेवक को कारण बताओ नोटिस अवश्य दी जानी चाहिए।[7] कहने का तात्पर्य यह है कि यदि सरकारी सेवक ने अपने सेवाकाल में कोई दुराचरण किया हो अथवा उसकी असावधानी से शासन को आर्थिक क्षति हुई हो तो अनुच्छेद 470 [बी] के अधीन शक्ति का प्रयोग करने से पूर्व, लघु दण्ड के लिए नियत जाँच प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए। इस जाँच में यदि वह सेवक दोषी पाया जाए तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि उसकी सेवा पूर्णतया संतोषजनक नहीं रही है, जिसके कारण पैंशन घटाकर स्वीकृत करने का दण्डादेश किया जा सकता है। यह कार्रवाई, सेवानिवृत्त सेवक को पैंशन स्वीकृत करने से पूर्व ही की जा सकती है। सरकारी सेवक जब सेवानिवृत्त होता है तो नियमानुसार अनुमन्य पैंशन स्वीकृत करनी होती है। पैंशन स्वीकृत करने से पूर्व ही अनुच्छेद 470 [बी] के अधीन कार्रवाई की जा सकती है। यदि पूर्ण पैंशन स्वीकृत की जा चुकी हो तो अनुच्छेद 470 [बी] के अधीन कार्रवाई नहीं की जा सकती।[7]

यदि पैंशन स्वीकृत करने के उपरान्त ज्ञात होता है कि उस सेवक ने अपने सेवाकाल में कोई दुराचरण या कुर्व्यवहार किया था तो अनुच्छेद 351-ए के अधीन जाँच कार्रवाई की जा सकती है।[7]

अनुच्छेद 351-ए में उपबंध किया गया है कि सेवानिवृत्त सरकारी सेवक के विरुद्ध, यदि सेवानिवृत्ति से पूर्व जाँच आरम्भ न की गई हो तो निम्नलिखित शर्तें पूरी होने पर विभागीय जाँच आरम्भ की जा सकती है,

[i] दुराचरण सेवा-अवधि के दौरान किया गया हो,

[ii] दुराचरण की घटना जाँच शुरू करने की तिथि से पूर्व, चार वर्ष की अवधि के अन्दर की हो। इस अनुच्छेद के प्रयोजनार्थ

7-मुरली धरन प्रसाद सिन्हा बनाम उ0प्र0 राज्य-1976 स0ला0 ज0 771 [इला0 उच्च न्यायालय] [पूर्ण न्यायपीठ]

जाँच उस तिथि को शुरू हुई मानी जाएगी जिस तिथि को पेंशनभोगी के विरुद्ध विरचित आरोप उसे जारी किया गया हो। यदि सेवानिवृत्ति से पूर्व उसे निलम्बित किया जा चुका हो तो निलम्बन आदेश की तिथि से जाँच शुरू हुई मानी जाएगी। अर्थात् सरकारी सेवक, जो माह मार्च, 1989 में सेवानिवृत्त हुआ हो, के विरुद्ध विभागीय जाँच यदि मार्च, 1990 में शुरू की जानी हो तो यह अनिवार्य है कि दुराचरण की घटना मार्च, 1986 या उसके बाद की हो। यदि घटना मार्च, 1986 से पूर्व की हो तो जाँच शुरू नहीं की जा सकेगी, क्योंकि चार वर्षों की अवधि से पूर्व की घटना थी।

(111) राज्यपाल ने जाँच आरम्भ करने की मंजूरी दे दी हो।

यह जाँच राज्यपाल द्वारा निर्देशित प्राधिकारी ही कर सकेंगे तथा जाँच स्थल भी राज्यपाल द्वारा ही नियत किया जाएगा। जाँच की प्रक्रिया वही होगी जो महादण्ड देने के लिए नियत है। इस जाँच में यदि वह सेवक दोषी पाया जाए तो, उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग से परामर्श करके, राज्यपाल निम्नलिखित दण्ड अधिरोपित कर सकते हैं:-

(1) पेंशन रोकने का आदेश, स्थायी रूप से या एक नियत अवधि के लिए, या

(2) पेंशन वापस लेने का आदेश, स्थायी रूप से या एक नियत अवधि के लिए, या

(3) शासन को हुई आर्थिक क्षति को अंशतः या पूर्णतः पेंशन से वसूलने का आदेश।

क्रम सं0 1 या 2 का दण्ड तभी अधिरोपित किया जा सकता है जब वह सेवक विभागीय या न्यायिक कार्यवाही में किसी गंभीर दुराचरण के लिए दोषी पाया जाए। क्रम सं0 3 का दण्ड तभी अधिरोपित किया

जा सकता है जब वह सेवक, दुराचरण या लापरवाही से, शासन को आर्थिक क्षति पहुँचाने के लिए दोषी पाया जाए।

यदि सेवानिवृत्ति से पूर्व जाँच की जा रही हो तो अनुच्छेद 351-ए के प्रयोजनार्थ, सेवानिवृत्ति के उपरान्त भी जाँच कार्यवाई जारी रखी जा सकती है। इसके लिए राज्यपाल का आदेश होना आवश्यक नहीं है, अनुशासनिक प्राधिकारी ही जाँच जारी रखने का आदेश कर सकते हैं। परन्तु पेंशन रोकने या वापस लेने अथवा पेंशन से वसूली करने का दण्डादेश राज्यपाल द्वारा ही पारित किया जा सकता है।

अनुच्छेद 351-ए के अधीन जिस प्रकार पेंशन से वसूली करने का अधिकार शासन को प्राप्त है ठीक उसी प्रकार ग्रेच्युटी या पारिवारिक पेंशन से भी वसूली करने का अधिकार, यू0पी0 रिटायरमेन्ट बेनीफिट रूल्स, 1961 के नियम 9[1] के अधीन, शासन को प्राप्त है। अतः विभागीय जाँच करके ग्रेच्युटी या पारिवारिक पेंशन से वसूली करने का दण्डादेश पारित किया जा सकता है।

सेवानिवृत्त सरकारी सेवक के विरूद्ध जाँच प्रशासनिक अधिकरण से भी कराई जा सकती है। यू0पी0 डिसिप्लिनरी प्रोसीडिंग्स [ऐडमिनिस्ट्रेटिव ट्रिब्यूनल] रूल्स, 1947 के नियम 10-ए में उपबंध है कि यदि किसी सेवानिवृत्त सरकारी सेवक के विरूद्ध सिविल सर्विस रेगुलेशन्स के अनुच्छेद 351-ए के अधीन कार्यवाई की जानी प्रस्तावित हो तो राज्यपाल उस मामले को अधिकरण में जाँच हेतु प्रेषित कर सकते हैं। यदि किसी सरकारी सेवक के विरूद्ध अधिकरण में जाँच कार्यवाई विचाराधीन हो और वह सेवक सेवानिवृत्त हो जाता है तो भी अनुच्छेद 351-ए के प्रयोजन हेतु, राज्यपाल जाँच कार्यवाई जारी रखने का आदेश कर सकते हैं।

यदि सेवा असंतोषजनक रही होने के कारण अनुच्छेद 470[बी] के अधीन पेंशन घटाकर स्वीकृत की गई हो तो भी, किसी अन्य दुराचरण के लिए अनुच्छेद 351-ए के अधीन कार्यवाई की जा सकती है।[8]

8-मुरली धरन बजाय चिन्हा बनाम उ0प्र0 राज्य-1976 ए0डब्लू0 सी0 771[इलाहाबाद उच्च न्यायालय][पूर्ण न्यायपीठ]

अतः किसी सरकारी सेवक ने अपनी सेवा-अवधि के दौरान कोई दुराचरण किया हो तथा उसकी सेवानिवृत्ति से पूर्व जाँच कार्यवाई शुरू की जा चुकी हो तो, सेवानिवृत्ति के उपरान्त भी, अनुच्छेद 470[बी] एवं अनुच्छेद 351-ए के प्रयोजनार्थ, जाँच कार्यवाई जारी रखी जा सकती है। जाँचोपरान्त यदि वह सेवक दोषी पाया जाए तो सेवा असंतोषजनक रही होने के कारण अनुच्छेद 470[बी] के अधीन पेंशन घटाकर स्वीकृत करने का दण्डादेश किया जा सकता है। यदि उस दुराचरण या लापरवाही के कारण शासन को आर्थिक क्षति हुई हो तो, अनुच्छेद 351-ए के अधीन उस सेवक की पेंशन से वसूली का आदेश भी किया जा सकता है।[9]

यदि सेवानिवृत्ति से पूर्व जाँच आरम्भ न की गई हो तो सेवानिवृत्ति के उपरान्त भी, अनुच्छेद 470[बी] एवं 351-ए के प्रयोजनार्थ, जाँच आरम्भ की जा सकती है, प्रतिबन्ध यह है कि अनुच्छेद 470[बी] के अधीन आदेश पेंशन स्वीकृत करने से पूर्व ही किया जा सकता है। पेंशन स्वीकृत होने के उपरान्त अनुच्छेद 351-ए के अधीन आदेश, पूर्वोक्त शर्तें पूरी होने पर, किया जा सकता है।

अतः सरकारी सेवक ने अपनी सेवा-अवधि के दौरान कोई दुराचरण या दुर्व्यवहार किया हो तथा दण्डित न किया जा सका हो तो उसके सेवानिवृत्त होने पर, जाँचोपरान्त, निम्नलिखित आदेश किए जा सकते हैं:-

[1] पेंशन घटाकर स्वीकृत करने का आदेश।[10]

[2] पेंशन या उसके किसी अंश को, स्थायी रूप से या एक नियत अवधि के लिए रोकने का आदेश।[11]

[3] पेंशन या उसके किसी अंश को, स्थायी रूप से या एक नियत अवधि के लिए, वापस लेने का आदेश।[11] एवं

[4] शासन को हुई आर्थिक क्षति को, अंशतः या पूर्णतः, पेंशन से वसूलने का आदेश।

9-मुरलीधरन सहाय सिन्हा बनाम उ0प्र0 राज्य-1976 ए0ला ज0 771 [इलाहा0 उच्च न्यायालय] [पूर्ण न्यायपीठ]

10-अनुच्छेद 470[बी]

11-अनुच्छेद 351-ए

क्रम सं0 1 का आदेश करने से पूर्व लघुदण्ड के लिए नियत जाँच प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए, जबकि क्रम सं0 2, 3 एवं 4 का आदेश करने से पूर्व महादण्ड देने के लिए नियत जाँच प्रक्रिया अपनानी, तथा उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग से परामर्श करना, अनिवार्य है।

2• सेवानिवृत्ति के उपरान्त किए गए दुराचरण की जाँच

शासन अपने सेवकों से, सेवानिवृत्त होने के बाद भी, सदाचरण की अपेक्षा करता है। यदि सेवानिवृत्त होने के बाद सेवक दुराचरण करे तो शासन को उसकी पेंशन रोकने या वापस लेने का अधिकार प्राप्त है। सिविल सर्विस रेगुलेशन्स के अनुच्छेद 351 में शासन को यह अधिकार प्रदान किया गया है।

अनुच्छेद 351 में उपबंध है कि कोई पेंशनभोगी किसी गंभीर अपराध हेतु दोषसिद्ध किया गया हो अथवा किसी गंभीर दुराचरण हेतु दोषी पाया गया हो तो राज्य सरकार उसकी पेंशन या पेंशन के किसी भाग को रोकने या वापस लेने का आदेश कर सकता है। इस अनुच्छेद के अधीन पेंशन रोकने या वापस लेने का अधिकार सिर्फ राज्य सरकार को ही प्राप्त है तथा उसका निर्णय अंतिम है। अनुच्छेद 351 के अधीन कार्यवाई के लिए यह अनिवार्य है कि जिस अपराध या दुराचरण के लिए पेंशनभोगी को दोषी पाया गया हो, वह उसने सेवानिवृत्त होने के बाद किया हो।[12] यद्यपि इस अनुच्छेद में कोई प्रक्रिया नहीं दी गई है लेकिन उक्त वर्णित उपबंध से ही स्पष्ट है कि पेंशनभोगी के विरुद्ध या तो दाण्डिक न्यायालय में कोई आपराधिक मामला चला हो, अथवा कोई विभागीय जाँच की गई हो, क्योंकि इन कार्यवाहियों के उपरान्त ही दोषसिद्ध या दोषी ठहराया जा सकता है। अतः सेवानिवृत्त होने के उपरान्त सेवक कोई दुराचरण या दुर्व्यवहार करता है तो "विभागीय जाँच" करके शासन उसकी पेंशन रोकने या वापस लेने का आदेश पारित कर सकता है। सेवा-अवधि में किए गए दुराचरण के लिए

12-नीलकण्ठ मिश्र बनाम उड़ीसा राज्य-1977 क0ला0 ज0 513 [उड़ीसा उच्च न्या0]

अनुच्छेद 351 के अधीन कार्यवाई नहीं की जा सकती। उड़ीसा उच्च न्यायालय द्वारा निर्णीत नीलकण्ठ मिश्र बनाम उड़ीसा राज्य का मामला[13] एक अच्छा उदाहरण है। श्री नीलकण्ठ मिश्र दिनांक 19·6·68 को सेवानिवृत्त हुए। दिनांक 17·6·69 को शासन ने महालेखाकार को संसूचित किया कि श्री मिश्र की सेवा संतोषजनक रही है, परन्तु उनके विरूद्ध आपराधिक मामला विचाराधीन है, अतः अनुमन्य पेंशन के 2/3 से अधिक "अनंतिम पेंशन" न दिया जाए। शासन के इस आदेश को न्यायालय ने दिनांक 20·12·73 को निरस्त कर दिया। इस बीच श्री मिश्र को आपराधिक मामले में न्यायालय ने दोषसिद्ध कर दिया, जो अपील में पुष्ट हो गया। तदुपरान्त उन्हें कारण बताओ नोटिस दी गई कि क्यों न अनुच्छेद 351 के अधीन उनकी पेंशन का 10 प्रतिशत वापस ले लिया जाए। श्री मिश्र ने आपत्ति की कि अनुच्छेद 351 लागू नहीं होता है, क्योंकि जिस अपराध के लिए उन्हें दोषसिद्ध किया गया है वह सेवानिवृत्ति के बाद का नहीं अपितु सेवानिवृत्ति से पूर्व का है। लेकिन दिनांक 2·9·74 को शासन ने उनकी पेंशन का 10 प्रतिशत वापस लेने का आदेश पारित कर दिया, जिसे उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई। उच्च न्यायालय ने अवधारणा किया कि सेवानिवृत्ति के बाद के अपराध या दुराचरण के लिए ही अनुच्छेद 351 के अधीन कार्यवाई की जा सकती है, सेवानिवृत्ति से पूर्व के अपराध या दुराचरण के लिए नहीं। यदि अपराध या दुराचरण सेवानिवृत्ति से पूर्व का हो तथा सेवक के सेवानिवृत्त होने के उपरान्त उसे दोषसिद्ध किया जाता है तो अनुच्छेद 351 लागू नहीं होगा। अतः अनुच्छेद 351 के अधीन् श्री नीलकण्ठ मिश्र की पेंशन वापस लेने का आदेश अवैध है।

अनुच्छेद 351 के अधीन कार्यवाई हेतु निम्नलिखित शर्तें पूरी होनी अनिवार्य हैं:-

[1] जिस सेवक के विरूद्ध जाँच की जानी है, वह पेंशन भोगी हो, तथा

13-1977 सठला न0 513 [उड़ीसा उच्च न्यायालय]

|2| सेवानिवृत्ति के उपरान्त उसने कोई गंभीर दुराचरण या अपराध किया हो, तथा

|3| जाँचोपरान्त, दुराचरण के लिए उसे दोषी पाया गया हो, या दाण्डिक न्यायालय ने उसे गंभीर अपराध के लिए दोषसिद्ध किया हो।

यद्यपि अनुच्छेद 351 में जाँच प्रक्रिया निर्धारित नहीं है, परन्तु अनुच्छेद 351-ए के अधीन पेंशन रोकने या वापस लेने का आदेश करने से पूर्व महादण्ड के लिए नियत जाँच प्रक्रिया अपनाने का प्रावधान है, तथा अनुच्छेद 351 के अधीन पेंशन रोकने या वापस लेने का ही आदेश किया जाता है। एक समान आदेश के लिए एक समान प्रक्रिया अपनाई जानी उचित है। अतः यही समीचीन प्रतीत होता है कि अनुच्छेद 351 के अधीन कार्यवाई करने से पूर्व महादण्ड के लिए नियत जाँच प्रक्रिया अपनाई जाए। जाँचोपरान्त पेंशनभोगी को गंभीर दुराचरण के लिए दोषी पाए जाने पर उसके विरुद्ध निम्नलिखित आदेश किए जा सकते हैं:-

1. पेंशन या उसके किसी अंश को रोकने का आदेश, या
2. पेंशन या उसके किसी अंश को वापस लेने का आदेश।

अध्याय- तेरह

अधिकरण द्वारा जाँच

उत्तर प्रदेश डिसिप्लिनरी प्रोसिडिंग्स [ऐडमिनिस्ट्रेटिव ट्रिब्यूनल] रूल्स, 1947 में उपबंध है कि राज्यपाल उत्तर प्रदेश राज्य के किसी भी सरकारी सेवक या सेवकों के समूह द्वारा किए गए दुराचरण या दुर्व्यवहार के मामले की जाँच, प्रशासनिक अधिकरण से, कराने का आदेश कर सकते हैं।[1] राज्यपाल अपनी इस शक्ति का प्रत्यायोजन जिले के संबंधित विभागों के प्रभारी राजपत्रित अधिकारियों को कर सकते हैं[2] परन्तु न्यायिक अधिकारियों के विरुद्ध जाँच के मामले उच्च न्यायालय ही अधिकरण के पास भेज सकता है।[3] इस नियमावली के अधीन सेवानिवृत्त सरकारी सेवकों के विरुद्ध जाँच के मामले भी प्रशासनिक अधिकरण को भेजे जा सकते हैं।[4]

उक्त नियमावली के अधीन जाँच के मामले प्रशासनिक अधिकरण में भेजने के संबंध में राज्य सरकार ने, परिपत्र सं0- ए-6172/पच्चीस-डी-एस-527/47, दिनांकित 10-12-1947 द्वारा, निम्नलिखित निदेश जारी किए हैं-

[1] अनुशासनिक प्राधिकारी सरकारी सेवक के विरुद्ध दुराचरण या दुर्व्यवहार के अभियोग की प्रारम्भिक जाँच करवाएंगे,

[2] यदि प्रारम्भिक जाँच से सरकारी सेवक के विरुद्ध दुराचरण का प्रथम दृष्टया केस बनता हो तथा अनुशासनिक प्राधिकारी औपचारिक जाँच प्रशासनिक अधिकरण से कराना उचित समझें तो वे उस मामले को शासन में भेजेंगे। शासन ही यह निर्णय लेगा कि यह मामला प्रशासनिक अधिकरण को भेजा जाए अथवा सामान्य नियमों के अधीन विभागीय स्तर पर ही जाँच कर ली जाए,

---

1-नियम 4[1]
2-नियम 13[1]
3-नियम 4[2], जैसा कि यू0पी0 डिसिप्लिनरी प्रोसिडिंग्स [ऐडमिनिस्ट्रेटिव ट्रिब्यूनल] [तृतीय संशोधन] रूल्स, 1989 द्वारा संशोधित किया गया है।
4-नियम 1[4] एवं नियम 10-क

\[3\] अनुशासनिक प्राधिकारियों को अधिकरण का पूरा उपयोग करना चाहिए तथा चुनिन्दा मामले, जिनमें जाँच की सामान्य प्रक्रिया अपनानी, लोकहित में, उचित प्रतीत न हो, अधिकरण को भेजना चाहिए। निम्नतर सेवा के सदस्यों के विरूद्ध जाँच के मामलों, अथवा अन्य छोटे-छोटे जाँच मामलों, में सामान्य नियमों के अधीन ही कार्रवाई की जानी चाहिए।

अतः उत्तर प्रदेश के किसी भी सरकारी सेवक, भले ही वह सेवानिवृत्त हो चुका हो, के विरूद्ध दुराचरण या दुर्व्यवहार के अभियोग की जाँच अधिकरण से कराने का आदेश शासन या, यथास्थिति, उच्च न्यायालय द्वारा ही किया जा सकता है। यदि सरकारी सेवक के विरूद्ध जाँच प्रशासनिक अधिकरण में विचाराधीन हो तथा वह सेवक सेवानिवृत्त हो जाए तो भी अनुच्छेद 351-ए के प्रयोजन हेतु राज्यपाल जाँच कार्रवाई जारी रखने का आदेश कर सकते हैं।[5]

कोई मामला अधिकरण को प्रेषित करने में निम्नलिखित विवरण तैयार करके प्रेषित किया जाएगा-

1. उस सेवक का पूर्ण विवरण, जिसके विरूद्ध अभियोग लगाया गया हो,
2. दुराचरण या दुर्व्यवहार के अभियोग का सार, जो स्पष्ट एवं निश्चित आरोप के रूप में अभिलिखित किया गया हो,
3. प्रत्येक आरोप के समर्थन में दुराचरण या दुर्व्यवहार के अभियोग का विवरण, जिसमें निम्नलिखित बातें होंगी-

   \[क\] सुसंगत तथ्यों का विवरण, जिसमें सेवक द्वारा की गई कोई स्वीकृति या संस्वीकृति भी सम्मिलित होगी।
   \[ख\] उन दस्तावेजों की सूची तथा गवाहों की सूची, जिनके द्वारा आरोप साबित किया जाना प्रस्तावित हो।[6]

प्रत्येक अधिकरण *में दो सदस्य होंगे, जिनमें से एक सदस्य विभागाध्यक्ष या मण्डलायुक्त-स्तर का कोई वरिष्ठ अधिकारी होगा तथा

5-नियम-10-ए
6-नियम 5\[1\]

दूसरा सदस्य ऐसा न्यायिक अधिकारी होगा जो उच्च न्यायालय में न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति की अर्हता रखता हो। परन्तु उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवा, उत्तर प्रदेश राज्य न्यायिक सेवा तथा उत्तर प्रदेश न्यायिक अधिकारी सेवा के सदस्यों के विरुद्ध जाँच करने वाले अधिकरण के दोनों सदस्य न्यायिक अधिकारी ही होंगे।[7]

राज्यपाल द्वारा नियुक्त किए गए एसेसर, जाँच कार्यवाई में, अधिकरण की सहायता करेंगे। एसेसर नियुक्त करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि आरोपित सेवक के वेतनमान से उच्च वेतनमान में नियुक्त राजपत्रित अधिकारी को ही एसेसर नियुक्त किया जाए।[7]

यदि अधिकरण के दोनों सदस्य न्यायिक अधिकारी हो तथा सुनवाई की किसी तिथि को उनमें से एक सदस्य अनुपस्थित हो तो दूसरे सदस्य अकेले ही मामले की सुनवाई कर सकते हैं। अन्य अधिकरणों के एक सदस्य अनुपस्थित हो परन्तु दूसरे सदस्य एवं एसेसर उपस्थित हो तो वे मामले की सुनवाई कर सकते हैं। यदि एसेसर अनुपस्थित हो परन्तु दोनों सदस्य उपस्थित हो तो वे भी मामले की सुनवाई कर सकते हैं।[8]

शासन या उच्च न्यायालय, यथास्थिति, आरोपों के समर्थन में अपना पक्ष-कथन प्रस्तुत करने हेतु किसी सरकारी सेवक या विधि-व्यवसायी को प्रेजेन्टिंग आफीसर नियुक्त कर सकता है।[9] आरोपित सेवक भी अपना पक्ष-कथन प्रस्तुत करने हेतु किसी सरकारी सेवक की सहायता ले सकता है, परन्तु वह किसी विधि-व्यवसायी की सेवा तब तक नहीं ले सकता जब तक कि प्रेजेन्टिंग आफीसर भी कोई विधि व्यवसायी न हो अथवा अधिकरण ने ऐसी अनुमति न दे दी हो।[10] आरोपित सेवक की सहायता करने वाला सरकारी सेवक, शासन से कोई यात्रा या दैनिक भत्ता पाने का अधिकारी नहीं होगा।[11]

जब अधिकरण में जाँच का मामला आ जाय तो अभिलेखों का अवलोकन करके अधिकरण आरोपों में संशोधन कर सकता है तथा दुराचरण

7-नियम 3

8-नियम 8|3|

9-नियम 7|2|

10-नियम 7|3|

11-नियम 7|3| का परन्तुक

या दुर्व्यवहार के अभियोग के विवरण में कोई त्रुटि हो तो उसे भी शुद्ध कर सकता है।[12]

अधिकरण की कार्यवाहियाँ बन्द कमरे में की जाएंगी।[13] यदि आरोपित सेवक ने अपने लिखित-कथन में आरोपों को स्वीकार न किया हो या कोई लिखित-कथन न दिया हो तथा अधिकरण के समक्ष उपस्थित होवे तो अधिकरण उससे पूछेगा कि-

(i) क्या वह किसी आरोप का दोषी है? या

(ii) क्या उसे कोई प्रतिवाद करना है?

यदि वह किसी आरोप का दोषी होने का अभिवचन करे तो अधिकरण ऐसे अभिवचनों को अभिलिखित कर लेगा तथा स्वयं हस्ताक्षर करके उस सेवक के भी हस्ताक्षर करा लेगा।[14] जाँच करने में, अधिकरण साम्या एवं नैसर्गिक न्याय के नियमों द्वारा मार्गदर्शित होगा तथा साक्ष्य एवं प्रक्रिया संबंधी औपचारिक नियमों से बाधित नहीं होगा।[15]

जाँच कार्यवाही पूरी होने पर, मामले की अंतिम सुनवाई की तिथि से तीस दिनों के अन्दर एसेसर अपना "लिखित विचार" अधिकरण को प्रस्तुत कर देंगे। अधिकरण एसेसर के अनुरोध पर समय बढ़ा भी सकता है। तदुपरान्त अधिकरण उस मामले का रिकार्ड तैयार करेगा, जिसमें आरोपों व स्पष्टीकरण का विवरण तथा एसेसर के विचार एवं अधिकरण का अपना निष्कर्ष अभिलिखित होगा। अधिकरण दण्ड के संबंध में अपनी संस्तुतियाँ दे सकता है तथा सी.सी.ए. रूल्स में नियत कोई भी दण्ड देने या वैकल्पिक सेवानिवृत्त करने या सिविल सर्विस रैगुलेशन्स के अनुच्छेद 351-ए के अधीन कार्यवाई करने की संस्तुति कर सकता है।[16]

न्यायिक अधिकारी के विरुद्ध जाँच के मामले में अधिकरण की संस्तुतियाँ प्राप्त होने पर उच्च न्यायालय उस अधिकारी को, पदच्युति, सेवा से हटाने या वैकल्पिक सेवानिवृत्ति के सिवाय, कोई दण्ड दे सकता

12-नियम 5(1-ग)
13-नियम 7(1)
14-नियम 7(4)
15-नियम 8
16-नियम 9, जैसा कि वर्ष 1989 में यथा संशोधित

है, अथवा पदच्युति का दण्ड अधिरोपित करने या अन्य उचित आदेश पारित करने की संस्तुति राज्यपाल को कर सकता है। अन्य सरकारी सेवकों के मामलों में अधिकरण की संस्तुतियाँ प्राप्त होने पर राज्यपाल अधिकरण द्वारा संस्तुत या उससे अधिक या कम दण्ड अधिरोपित करने का आदेश कर सकते हैं। दण्डादेश पारित करने से पूर्व लोक सेवा आयोग से परामर्श करना आवश्यक नहीं है। राज्यपाल या उच्च न्यायालय, यथास्थिति, यदि आवश्यक समझें तो अधिकरण से पूरक रिपोर्ट माँग सकते हैं। राज्यपाल या उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जा सकेगी।[17]

17-नियम 10

अध्याय- चौदह

निलम्बन

निलम्बन का शाब्दिक अर्थ किसी चीज, अधिकार, कार्य या श्रम की अस्थाई समाप्ति है।[1]

सरकारी सेवक को निलम्बित करने का अभिप्राय उसे अस्थाई रूप से अपने पदीय कार्यों को निष्पादित करने से रोकना है। जब किसी सरकारी सेवक को निलम्बित किया जाता है तो "मालिक-सेवक" के संबंध समाप्त नहीं होते। ऐसे मामले में मालिक के रूप में शासन, सिर्फ, सेवक को अपने पदीय कर्तव्यों का निष्पादन करने से रोक देता है। निलम्बन आदेश के माध्यम से शासन एक निदेश जारी करता है कि कानून या नियम या सेवा संविदा की शर्तों के अधीन सरकारी सेवक को जो कार्य करना अपेक्षित था वह कार्य करने से उस सेवक को रोका जा रहा है, जबकि मालिक-सेवक के संबंध यथावत् बने रहेंगे।[2] निलम्बन आदेश सेवक की सेवा समाप्त नहीं करता है। निलम्बन के दौरान वह सेवक सेवा का सदस्य बना रहता है। निलम्बन आदेश का वास्तविक प्रभाव यह होता है कि यद्यपि वह सेवक सरकारी सेवा का एक सदस्य बना रहता है, परन्तु उसे कार्य करने की अनुमति नहीं होती तथा निलम्बन अवधि के दौरान उसे कुछ भत्ता दिया जाता है, जिसे "जीवन निर्वाह भत्ता" कहते हैं।[3]

निलम्बन दो प्रकार के हो सकते हैं:-

[क] अंतरिम निलम्बन, तथा

[ख] दांडिक निलम्बन।

1-आबिद मोहम्मद खान बनाम राज्य-आ०इ०रि० 1958 म०प्र० 44

2-ब्रज०लाल० मेहरा बनाम भारत संघ-आ०इ०रि० 1974 सु०को० 128।

3-प्रेम चन्द बनाम भारत संघ-आ०इ०रि० 1963 सु०को० 687

[क] अंतरिम निलम्बन

शासन को किसी अन्य नियोजक की ही तरह अपने सेवकों को, विभागीय जाँच या आपराधिक केस के दौरान, निलम्बित करने का अधिकार प्राप्त होता है। ऐसे निलम्बन को अंतरिम निलम्बन कहा जाता है।[4] अनुशासनिक कार्यवाही में अंतरिम उपचार के रूप में निलम्बन किया जाता है, जो स्वयं में एक अनुशासनिक विषय है, जिससे कि संबंधित सेवक दस्तावेजों पर नियंत्रण प्राप्त न कर सके, अथवा दस्तावेजों को अपनी अभिरक्षा में न रख पाए, अथवा अपनी पदीय स्थिति या शक्ति का दुरुपयोग न कर पाए।[5] यह सुप्रतिष्ठित है कि सरकारी सेवक को, उसके विरुद्ध विभागीय जाँच पूर्ण होने के दौरान निलम्बित करने की अंतर्निहित शक्ति शासन को प्राप्त होती है।[6]

जब किसी सरकारी सेवक के विरुद्ध दुराचरण का अभियोग लगाया जाता है तो शासन, सामान्यतया, प्रारम्भिक जाँच करता है। यदि शासन इस जाँच से संतुष्ट हो कि प्रथम दृष्टया केस बनता है तो संविधान के अनुच्छेद 311[2] के अनुरूप विभागीय जाँच की जाती है। जाँच आरम्भ करने से पूर्व, उस मामले की परिस्थितियों में शासन को यह आवश्यक प्रतीत हो सकता है कि उस सरकारी सेवक को निलम्बित किया जाए, क्योंकि कार्यालय में उसकी उपस्थिति से साक्ष्य एकत्र करने एवं जाँच करने में उलझन एवं बाधाएं हो सकती हैं। ऐसी परिस्थिति में शासन उस सेवक को निलम्बित कर सकता है। यदि विभागीय जाँच आसन्न हो तो भी सेवक को निलम्बित किया जा सकता है। साक्ष्य एकत्र करने एवं निष्पक्ष जाँच की सुगमता के लिए निलम्बन आदेश किया जाता है। यह संभव है कि निलम्बन के उपरान्त शासन, विभागीय जाँच करने का आदेश न करे, यदि समुचित साक्ष्य उपलब्ध न हो।

सेवा संविदा या कानून या नियमों में अंतरिम निलम्बन की अभिव्यक्त शक्ति न दी गई हो तो भी नियोजक अपने सेवक का अंतरिम

4-आर०पी० कुमार बनाम भारत संघ-आर्ई०आर० 1964 सु०को० 787
5-वी०आर० नायक बनाम भारत संघ-आई०आर० 1972 सु०को० 554
6-नारायण प्रसाद बनाम उड़ीसा राज्य-आई०आर० 1953 उड़ीसा 51, तथा ओम प्रकाश गुप्ता बनाम उ०प्र० राज्य-आई०आर० 1955 सु०को० 600

निलम्बन करने का आदेश कर सकता है, परन्तु उसे संविदा की शर्तों के अनुरूप वेतन देना होगा।[7] यह निलम्बन दण्ड नहीं है, बल्कि एक अनुशासनिक कार्यवाही है। विभागीय जाँच दण्ड अधिरोपित करने के लिए की जाती है लेकिन निलम्बन इस आशय से नहीं किया जाता है।[8] विभागीय जाँच के दौरान सरकारी सेवक का निलम्बन, संविधान के अनुच्छेद 311 में अभिव्यक्त "पदच्युति" अथवा "सेवा से हटाना" नहीं है। अतः यदि सरकारी सेवक को विभागीय जाँच के दौरान निलम्बित किया जाता है तो अनुच्छेद 311[2] लागू नहीं होता।[9]

यह सुप्रतिष्ठित सिद्धान्त है कि नियोजक अपने सेवक को, उसके दुराचरण के संबंध में, जाँच के दौरान निलम्बित कर सकता है। ऐसे निलम्बन पर प्रश्न सिर्फ यह होता है कि निलम्बन अवधि के दौरान उसे कितना वेतन दिया जाएगा? यदि सेवा संविदा, कानून या नियमों में निलम्बन करने एवं उसके दौरान वेतन देने के संबंध में कोई अभिव्यक्त शर्त न हो तो वह सेवक अंतरिम निलम्बन की अवधि में वेतन की संपूर्ण धनराशि पाने का अधिकारी होगा। परन्तु सेवा संविदा या कानून या नियमों में निलम्बन की अवधि के दौरान वेतन की दर नियत हो तो सेवक को उसी दर पर वेतन दिया जाएगा।[10]

बी०आर० पटेल बनाम महाराष्ट्र राज्य[11] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने, निलम्बन के संबंध में, निम्नलिखित सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं:-

1. निलम्बन आदेश के प्रभाव से "मालिक-सेवक" का संबंध अस्थायी रूप से निलम्बित रहता है, जिसके परिणामस्वरूप सेवक सेवा करने के लिए बाध्य नहीं होता तथा मालिक वेतन देने के लिए बाध्य नहीं होता।

2. यदि सेवा संविदा या नियमों में अंतरिम निलम्बन का प्रावधान न हो तो भी किसी सेवक का, दुराचरण के संबंध में की जा रही जाँच के दौरान, अंतरिम निलम्बन किया जा सकता है। परन्तु ऐसी दशा में सेवक निलम्बन की अवधि में संपूर्ण वेतन भत्ते पाने का अधिकारी होगा, यदि कानून अथवा नियमों में अन्यथा उपबंध न हो।

7-टी० काजी बनाम यू०एन० सिन्हा-आ०ई०आर० 1961 सु०को० 276
8-बी०आर० नायक बनाम भारत संघ-आ०ई०आर० 1972 सु०को० 554
9-उड़ीसा राज्य बनाम शिव प्रसाद दास-1985[1] सलता जा० 304[सु०को०]
10-आर०पी० कुमार बनाम भारत संघ-आ०ई०आर० 1964 सु०को० 787
11-बी०आर० पटेल बनाम महाराष्ट्र राज्य-आ०ई०आर० 1968 सु०को० 800

3· सरकारी सेवक के नियुक्ति प्राधिकारी को अधिकार प्राप्त होता है कि विभागीय जाँच अथवा अपराधिक केस के दौरान सेवक को निलम्बित कर सकें।

4· जब तक निलम्बन समाप्त करने का आदेश पारित न किया जाए तब तक उस सेवक को सेवा में बहाल होने का अधिकार नहीं होता।

कानूनी उपबंध

उत्तर प्रदेश की सिविल सेवा एवं विशेषज्ञ सेवा के सदस्यों के अंतरिम निलम्बन के उपबंध सी·सी·ए· रूल्स, 1930 के नियम 49-ए में तथा अधीनस्थ सेवा के सदस्यों के अंतरिम निलम्बन के उपबंध पनिशमेण्ट ऐण्ड अपील रूल्स फार सबोर्डिनेट सर्विसेज, उ0प्र0, 1932 के नियम 1-ए में हैं। यू0पी0 स्टेट इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड [आफिसर्स ऐण्ड सर्वेन्ट्स [कण्डीशन्स आफ सर्विसेज [रेगुलेशन्स, 1975 के विनियम 2 के प्रभाव से सी·सी·ए· रूल्स, 1930 के नियम 49-ए में दिए हुए निलम्बन के उपबंध उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत परिषद् के अधिकारियों एवं सेवकों पर भी लागू होते हैं।

सी·सी·ए· रूल्स, 1930 के नियम 49-ए के समान ही, अन्तरिम निलम्बन के उपबंध उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम कर्मचारी [अधिकारियों से भिन्न] सेवा नियमावली, 1981 के विनियम 67 में, सेन्ट्रल सिविल सर्विसेज [क्लासिफिकेशन, कंट्रोल ऐण्ड अपील] रूल्स, 1965 के नियम 10 में, रेलवे सर्वेन्ट्स [डिसिप्लिन ऐण्ड अपील] रूल्स, 1968 के नियम-5 में, एवं आल इण्डिया सर्विसेज [डिसिप्लिन ऐण्ड अपील] रूल्स, 1969 के नियम 3 में, दिए हुए हैं। सी·सी·ए· रूल्स, 1930 के नियम-49-ए के अनुसार किसी सरकारी सेवक को निम्नलिखित परिस्थितियों में निलम्बित किया जा सकता है:-

[1] विभागीय जाँच के दौरान- जब सरकारी सेवक के आचरण के विरुद्ध विभागीय जाँच, आसन्न हो अथवा की जा रही हो तो नियुक्ति प्राधिकारी

या अन्य सक्षम प्राधिकारी, स्वविवेकानुसार, जाँच पूर्ण करने के दौरान उस सरकारी सेवक को निलम्बित कर सकते हैं। परन्तु न्यायिक सेवा के सदस्यों के मामले में, राज्यपाल अपनी इस शक्ति को उच्च न्यायालय को प्रत्यायोजित कर सकते हैं।

"जाँच आसन्न होना" का तात्पर्य इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने उत्तर प्रदेश राज्य बनाम जय सिंह दीक्षित[12] के मामले में बताया है। जब भी नियुक्ति प्राधिकारी मन बना लेवें कि विभागीय जाँच की जाएगी, अथवा विभागीय जाँच करने की पूरी संभावना है, तब कहा जाएगा कि विभागीय जाँच आसन्न है। सामान्यतया विभागीय जाँच से पूर्व अनौपचारिक प्रारम्भिक जाँच की जाती है। प्रारम्भिक जाँच की दो अवस्थाएं हो सकती हैं, पहली, संक्षिप्त अन्वेषण- यह जानने के लिए कि सरकारी सेवक के विरुद्ध लगाए गए अभियोग सारवान् हैं या नहीं। दूसरी, उस अन्वेषण के उपरान्त तथ्यों की जानकारी के लिए जाँच- यह विनिश्चय करने के लिए कि औपचारिक विभागीय जाँच की जाए या नहीं। नियुक्ति प्राधिकारी संक्षिप्त अन्वेषण या गोपनीय जाँच अथवा अभिलेखों के निरीक्षण से इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि सरकारी सेवक के विरुद्ध लगाए गए अभियोग सारवान् हैं तथा यथासमय औपचारिक विभागीय जाँच की जाएगी। ऐसे सभी मामले नियम 49-ए से आच्छादित होंगे, अर्थात् विभागीय जाँच आसन्न होनी मानी जाएगी। कुछ मामलों में नियुक्ति प्राधिकारी संक्षिप्त अन्वेषण के पूर्व अर्थात्, परिवाद प्राप्त होने या उस पर विचार करने के स्तर पर ही इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि अभियोग सारवान् हैं एवं यथासमय विभागीय जाँच की जाएगी। अतः जब उपलब्ध सामग्री पर वस्तुनिष्ठ विचार करके नियुक्ति प्राधिकारी यह मत बनाएं कि वह ऐसा मामला है जिसमें विभागीय जाँच होगी, भले ही कोई प्रारम्भिक जाँच या संक्षिप्त अन्वेषण किया गया हो या न किया गया हो तो ऐसी स्थिति में भी, विभागीय जाँच आसन्न होनी मानी जाएगी।

अतः जब किसी सरकारी सेवक के विरुद्ध विभागीय जाँच चल

12-1975[2] सर्विस रि० 754

रही हो तब उस जाँच के दौरान तो उसे निलम्बित किया ही जा सकता है, यदि जाँच की जाने वाली हो अर्थात् प्रस्तावित हो तो भी उसे निलम्बित किया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि विभागीय जाँच आरम्भ करने से पूर्व, अर्थात् आरोप विरचित करने एवं सरकारी सेवक को संसूचित करने से पूर्व भी निलम्बन किया जा सकता है।

निलम्बन मात्र से ही सरकारी सेवक की प्रतिष्ठा, उसके मानसिक स्तर, पारिवारिक स्थिति तथा सरकारी हैसियत को जो ठेस पहुँचती है इन सबका मिला-जुला प्रभाव किसी भी गम्भीर दण्ड से कम नहीं होता।[13] अतः किसी सरकारी सेवक को उस समय तक निलम्बित नहीं करना चाहिए जब तक कि उसके विरुद्ध इतना साक्ष्य उपलब्ध न हो, जिसके आधार पर उसको सेवा से हटाने, पदच्युत करने या रैंक में अवनति करने की संभावना हो अथवा कोई ऐसी स्थिति उत्पन्न न हो जाए जिसमें जनहित को ध्यान में रखते हुए सेवक को निलम्बित करना अत्यावश्यक हो।[14] सरकारी सेवक को निलम्बित करने का निर्णय लेने में सार्वजनिक हित को ध्यान में रखना चाहिए और अनुशासनिक प्राधिकारी को सभी तथ्यों पर विचार करके अपने विवेक का प्रयोग करना चाहिए निलम्बन की आवश्यकता वस्तुनिष्ठ कारणों पर स्पष्टतः आधारित होनी चाहिए और ऐसा करने में सक्षम प्राधिकारी को अन्य कारणों से प्रभावित नहीं होना चाहिए।[15]

अतः निलम्बन जैसी कार्यवाहियाँ सामान्यतया तभी की जानी चाहिए जब सरकारी सेवक के विरुद्ध प्रथम दृष्टया इतना साक्ष्य उपलब्ध हो जिसके आधार पर उसको सेवा से हटाने, पदच्युत करने अथवा रैंक में अवनति किये जाने के आधार पुष्ट हों। यदि ऐसी विषम स्थिति अथवा प्रशासकीय जटिलता उत्पन्न होती जाती है, जिसमें लोकहितार्थ तथा प्रशासकीय कारणों से सरकारी सेवक को निलम्बित करना अतिआवश्यक हो तो भी उस सेवक को निलम्बित किया जा सकता है।[16]

अतः उपलब्ध सामग्री पर वस्तुनिष्ठ विचारोपरान्त यदि नियुक्ति प्राधिकारी इस मत के हों कि सरकारी सेवक के विरुद्ध सी॰सी॰ए॰ रूल्स

13-उत्तर प्रदेश शासनादेश संख्या-7/2/78-कार्मिक-1, दिनांक 18-7-1979
14-शासनादेश संख्या 22/4/71-नियुक्ति[ख], दिनांक 2 जुलाई, 1971
15-उ0प्र0 का शासनादेश सं0 12/1/65-दो-ख-1965, दिनांक 26 जुलाई, 1965
16-शासनादेश संख्या 22/4/71-नियुक्ति-[ख] दिनांक 2 जुलाई, 1971
उ0प्र0 शासनादेश सं0 7/2/78-कार्मिक-1, दिनांक 18 जुलाई, 1979

के नियम 55 अथवा सिविल सर्विसेज ऐण्ड अपील रूल्स के नियम 5 के अधीन औपचारिक विभागीय जाँच प्रत्याशित है, अथवा जाँच की जा रही हो, तो उस सेवक को निलम्बित किया जा सकता है। निलम्बन की इस शक्ति का प्रयोग किस स्तर पर किया जायगा, यह हमेशा प्रत्येक केस के तथ्यों व परिस्थितियों पर निर्भर होगा।

यदि अखिल भारतीय सेवा का सदस्य राज्य सरकार के अधीन कार्यरत हो तथा उसके विरूद्ध विभागीय जाँच आसन्न हो तो राज्य सरकार उस सेवक को निलम्बित कर सकती है, परन्तु 45 दिनों के अन्दर उस सेवक के विरूद्ध अनुशासनिक कार्यवाही आरम्भ की जानी अनिवार्य होगी, अथवा निलम्बन आदेश की पुष्टि केन्द्र सरकार द्वारा की जानी अनिवार्य होगी, अन्यथा 45 दिनों के बाद वह निलम्बन आदेश अवैध हो जायगा।[17]

[1-ख] आपराधिक आरोप लगाने पर- "यदि सरकारी सेवक के संबंध में या उसके विरूद्ध आपराधिक आरोप का अन्वेषण, जाँच या विचारण लम्बित हो तो नियुक्ति प्राधिकारी, स्वविवेकानुसार, उस कार्रवाई की समाप्ति तक के लिए उस सेवक को निलम्बित कर सकते हैं, यदि वह आरोप सरकारी सेवक के पद से संबंधित हो, अथवा उसके कर्तव्य निष्पादन में उलझन डालने वाला हो या नैतिक अक्षमता में अंतर्ग्रस्त करने वाला हो।"

इस उपनियम के अनुसार, यदि किसी सरकारी सेवक के संबंध में या उसके विरूद्ध किसी आपराधिक आरोप से संबंधित अन्वेषण, जाँच या विचारण लम्बित हो तो नियुक्ति प्राधिकारी उसे अपने विवेक से निलम्बित कर सकते हैं, जब तक कि उस आरोप से संबंधित सभी कार्यवाहियाँ समाप्त न हो जायें। ऐसा उन्हीं मामलों में किया जाना चाहिए जिनमें आरोप सरकारी सेवक के रूप में उसकी पदीय स्थिति से सम्बद्ध हो, या उससे उसे अपने कर्तव्यों का पालन करने में उलझन पड़ने की संभावना हो या उसमें नैतिक अधमता सम्मिलित हो और जिनमें आरोप इस प्रकार के हों, जिनके आधार पर न्यायालय में अभियोजन चल सके, जैसे, सरकारी धन का गबन करना, घूस लेते हुए पकड़ा जाना इत्यादि।[18]

17-आल इण्डिया सर्विसेज [डिसिप्लिन ऐण्ड अपील] रूल्स,1969 के नियम 3 के उप नियम [1] का परन्तुक

18-उ0प्र0 शासनादेश सं0 7/2/78-कार्मिक-1, दिनांक 18 जुलाई,1979

यदि आपराधिक केस के कारण सरकारी सेवक को निलम्बित किया गया हो तथा उस केस की कार्यवाही बाद में स्थगित कर दी जाती है तो निलम्बन समाप्त नहीं माना जाएगा। इस संदर्भ में ए0के0 वर्मा बनाम जिलाधिकारी, गोरखपुर,[19] का केस अच्छा उदाहरण है। श्री वर्मा को, सी॰सी॰ए॰ रूल्स के नियम 49 [1-ए] के अधीन, आपराधिक केस विचाराधीन होने के दौरान, निलम्बित किया गया था। उन्होंने उच्च न्यायालय में आपराधिक पुनरीक्षण प्रस्तुत किया जिसके निस्तारण तक आपराधिक केस की कार्यवाही उच्च न्यायालय ने स्थगित कर दी। प्रश्न उठा कि क्या आपराधिक केस की कार्यवाही स्थगित होने से निलम्बन आदेश समाप्त कर दिया जाएगा? इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने नकारात्मक उत्तर देते हुए कहा कि आपराधिक केस के स्थगित होने के बावजूद निलम्बन वैध है, क्योंकि स्थगन आदेश के कारण श्री वर्मा के विरुद्ध विचाराधीन आपराधिक केस समाप्त हुआ नहीं माना जाएगा।

निलम्बन आदेश करने से पूर्व सरकारी सेवक को सुनवाई का अवसर देने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस संदर्भ में एम0पी0 चाह्वाण बनाम महाराष्ट्र राज्य,[20] का मामला उल्लेखनीय है। श्री चाह्वाण एक पुलिस इंसपेक्टर थे, जिनके विरुद्ध अवैध धन लेने के लिए आपराधिक केस न्यायालय में विचाराधीन था। उन्हें उस जिले से स्थानान्तरित कर दिया गया तथा निलम्बित भी कर दिया गया। बम्बई उच्च न्यायालय ने कहा कि ये दोनों आदेश साथ-साथ किए जा सकते हैं तथा ये वैध हैं। निलम्बन आदेश करने से पूर्व इंसपेक्टर को सुनवाई का अवसर देने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

[2] निलम्बन माना जाना [मूलतवी निलम्बन]- "यदि सरकारी सेवक, आपराधिक आरोपों या अन्य कारण से 48 घण्टे से अधिक अवधि तक किसी अभिरक्षा में निरुद्ध रहा हो तो, नियुक्ति प्राधिकारी के आदेश से, वह सेवक निरोध की तिथि से निलम्बित माना जाएगा।

19-1989[58] एफ0एल0आर0 603[इलाहाबाद उच्च न्यायालय]
20-1990 लेब0आई0सी0 129 [बम्बई उच्च न्यायालय]

यदि सरकारी सेवक को किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है तथा 48 घण्टे से अधिक कारावास की सजा दी जाती है तो वह सेवक, नियुक्ति प्राधिकारी के आदेश से, दोषसिद्धि की तिथि से ही निलम्बित माना जाएगा, यदि उसे दोषसिद्धि के फलस्वरूप तत्काल पदच्युत अथवा सेवा से हटा न दिया गया हो। 48 घण्टे की अवधि की गणना दोषसिद्धि के उपरान्त कारावास शुरू होने के समय से की जाएगी तथा उस आपराधिक कार्यवाई के दौरान वह सेवक जितने समय कारावास में रहा हो, उस अवधि को भी जोड़ लिया जाएगा।"

सामान्यतया निलम्बन, आदेश करने के साथ ही आरम्भ होता है एवं उसके बाद की अवधि में प्रभावी होता है।[21] जब कोई आदेश पारित किया जाता है तथा संबंधित सरकारी सेवक को भेजा जाता है तो यह माना जाएगा कि वह आदेश उसे संसूचित कर दिया गया है। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि उसने वास्तविक रूप से उस आदेश को कब प्राप्त किया। वास्तविक प्राप्ति की तिथि से आदेश प्रभावी होना नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार निलम्बन आदेश उस तिथि से प्रभावी होता है जिस तिथि को संसूचित किया गया हो, न कि वास्तविक प्राप्ति की तिथि से।[22] निलम्बन का तात्पर्य कार्य करने से रोकना है, अतः जिस अवधि में सरकारी सेवक ने अपने पदीय कर्तव्यों के निष्पादन में कार्य किया हो उस अवधि के लिए, बाद में आदेश करके उसे निलम्बित नहीं किया जा सकता। जब कानूनन उसने अपने कर्तव्यों के निष्पादन में कार्य कर लिया हो, तो उस बीती अवधि में उसे कार्य करने से मना करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। परन्तु, यदि किसी सरकारी सेवक ने पूर्व में अपने कर्तव्यों के निष्पादन में कार्य किया हो तो विधिक कल्पना द्वारा यह माना जा सकता है कि उसने कार्य नहीं किया था। ऐसी कल्पना अभिव्यक्त नियम से ही की जा सकती है। "निलम्बन" के सामान्य अर्थ से ऐसा निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। अतः किसी अभिव्यक्त नियम के अभाव में, शासन को ऐसी कोई शक्ति नहीं है

21-हेमन्त कुमार बनाम एस०एन० मुकर्जी-ए०आई०आर० 1954 कलकत्ता 340

22-पंजाब राज्य बनाम खेमीराम-ए०आई०आर० 1970 सु०को० 214

कि किसी सरकारी सेवक का निलम्बन आदेश करने से पूर्व की अवधि में उसे निलम्बित हुआ मान लेवें, यदि उस अवधि में उस सेवक ने अपने पदीय कर्तव्यों के निष्पादन में कार्य किया हो।[23] अर्थात् भूतलक्षी प्रभाव से निलम्बन तभी किया जा सकता है, जब नियमों में ऐसा उपबंध हो। सी॰सी॰ए॰ रूल्स, 1930 का नियम 49-ए[2] एक ऐसा नियम है जो भूतलक्षी प्रभाव से सरकारी सेवक को निलम्बित करने की शक्ति प्रदान करता है। यदि कोई सरकारी सेवक आपराधिक आरोप के लिए अभिरक्षा में 48 घण्टे से अधिक अवधि तक निरूद्ध रहा हो तो निरोध की तिथि से उसका निलम्बन स्वतः हो जाएगा, भले ही निलम्बन का कोई औपचारिक आदेश न किया गया हो। वह सेवक निरोध की तिथि से निलम्बित माना जाएगा। उसके बाद किया गया निलम्बन आदेश उस सेवक को 48 घण्टे से अधिक निरोध के विधिक परिणाम एवं प्रभाव को स्पष्ट करता है। अभिरक्षा से रिहा होने अथवा आपराधिक आरोप से दोषमुक्त होने के साथ निलम्बन रद्द हुआ नहीं माना जाता, अपितु नियुक्ति प्राधिकारी जब इस आशय का आदेश पारित करेंगे तभी निलम्बन रद्द माना जाएगा।[24]

[3] पदच्युति या सेवा से हटाने का आदेश निरस्त होने पर- यदि सरकारी सेवक को पदच्युत करने अथवा सेवा से हटाने का आदेश अपील अथवा पुनर्विचारण में निरस्त कर दिया गया हो तथा वह मामला पुनः जाँच या कार्यवाई या किसी अन्य निदेश के साथ वापस भेज दिया गया हो तो-

[अ] यदि वह सेवक दण्डादेश के पूर्व निलम्बित रहा हो तो उसके निलम्बन का आदेश, पदच्युति अथवा सेवा से हटाने के मूल आदेश की तिथि से निरन्तर प्रभावी रहा होना माना जाएगा, प्रतिबन्ध यह है कि अन्यथा कोई निदेश न हो।

[ब] यदि वह सेवक दण्डादेश से पूर्व निलम्बित न रहा हो, परन्तु अपीलीय अथवा पुनर्विचारण करने वाले प्राधिकारी ने ऐसा निदेश दिया हो तो, नियुक्ति प्राधिकारी के आदेश से वह सेवक पदच्युति

23-आबिद मोहम्मद खाँन बनाम राज्य-आ॰ई॰आर॰ 1958 म॰प्र॰ 44

24-मिहिर कुमार राय बनाम पश्चिम बंगाल राज्य-1980 ल॰ला॰ज॰ 429 [कलकत्ता उच्च न्यायालय]

अथवा सेवा से हटाने के मूल आदेश की तिथि से निलम्बित माना जाएगा।

परन्तु, यदि पदच्युति अथवा सेवा से हटाने का दण्डादेश अपील अथवा पुनर्विचारण में अभियोग के गुणागुण से अन्यथा किसी आधार पर निरस्त किया गया हो लेकिन सम्पूर्ण मामला पुनः जाँच या कार्यवाई हेतु वापस नहीं किया गया हो, अथवा अन्य कोई निदेश न हो, तो ऐसे मामले में सक्षम प्राधिकारी को शक्ति प्राप्त है कि उन्हीं अभियोगों पर उस कर्मचारी के विरूद्ध, पुनः जाँच के दौरान निलम्बन का आदेश कर सकें। परन्तु यह निलम्बन आदेश भूतलक्षी प्रभाव नहीं रखेगा।

एच0 एल0 मेहरा बनाम भारत संघ[25] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि जब "पदच्युति" का आदेश किया जाता है तो "मालिक- सेवक" का संबंध समाप्त हो जाता है, उसी के साथ ही निलम्बन आदेश भी समाप्त हो जाता है। ऐसे मामले में प्रश्न उठता है कि बाद में जब पदच्युति का आदेश निरस्त कर दिया जाए तब क्या निलम्बन आदेश स्वतः पुनर्जीवित हो जाएगा? उच्चतम न्यायालय ने कहा कि निलम्बन आदेश पुनर्जीवित नहीं होगा, परन्तु यदि इस आशय के कानूनी उपबंध या नियम हों तो निलम्बन आदेश स्वतः पुनर्जीवित होगा।

सी॰सी॰ए॰ रूल्स, 1930 का नियम 49-ए[3] एक ऐसा कानूनी उपबंध है जिसके प्रभाव से निलम्बन आदेश भूतलक्षी प्रभाव से पुनर्जीवित किया जा सकता है।

[4] न्यायालय के निर्णय से पदच्युति या सेवा से हटाने का आदेश निरस्त होने पर- यदि न्यायालय के निर्णय से अथवा निर्णय के फलस्वरूप सरकारी सेवक की पदच्युति अथवा सेवा से हटाने का आदेश निरस्त किया जाता है अथवा निष्प्रभावी घोषित किया जाता है तथा मामले की परिस्थितियों पर विचार करके उन्हीं अभियोगों पर पुनः जाँच कराने का निर्णय नियुक्ति प्राधिकारी लेते हैं, तब-

25-आ0इ0आर0 1974 सु0को0 1281

[अ] यदि वह सेवक दण्ड के तुरन्त पूर्व निलम्बित रहा हो तो वह निलम्बन आदेश, पदच्युति अथवा सेवा से हटाने के मूल आदेश की तिथि से, प्रभावी रहा होना माना जाएगा, प्रतिबन्ध यह है कि नियुक्ति प्राधिकारी का अन्यथा कोई निदेश न हो।

[ब] यदि वह सेवक दण्ड से पूर्व निलम्बित न रहा हो तथा नियुक्ति प्राधिकारी ने ऐसा निदेश दिया हो तो, सक्षम प्राधिकारी के आदेश से वह सेवक, पदच्युति अथवा सेवा से हटाने के मूल आदेश की तिथि से निलम्बित रहा होना माना जाएगा।

शिवशंकर तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश, लोक सेवा अधिकरण[26] के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने अवधारणा किया है कि नियम 49[4] लागू होने के लिए निम्नलिखित दो शर्तें पूरी होनी चाहिए-

[1] सरकारी सेवक को सेवा से हटाने का जो दण्ड दिया गया था वह विधि द्वारा स्थापित न्यायालय के निर्णय से निरस्त कर दिया गया हो, अथवा निष्प्रभावी घोषित कर दिया गया हो, तथा

[2] जिस अभियोग पर उस सेवक को पदच्युति या सेवा से हटाने का दण्ड दिया गया था, उसी अभियोग पर पुनः जाँच कराने का विनिश्चय नियुक्ति प्राधिकारी ने किया हो।

यदि उक्त दोनों शर्तें पूरी हों तथा वह सेवक पदच्युति आदेश के पूर्व निलम्बित रहा हो तो पदच्युति या सेवा से हटाने के मूल आदेश की तिथि से उसका निलम्बन प्रभावी रहा होना माना जाएगा। यदि किसी अन्य अभियोग पर जाँच आरम्भ की जाती है तब उस सेवक को निलम्बित रहा होना नहीं माना जाएगा।

[5] **निलम्बन आदेश की अवधि-** "कोई भी निलम्बन आदेश, या निलम्बित हुआ मानने का आदेश या निलम्बन प्रवृत्त रहने का आदेश तब तक प्रभावी रहेगा जब तक कि राज्यपाल या नियुक्ति प्राधिकारी

26-1983[2] यू०एल०जे० 184

या निलम्बन आदेश करने वाले सक्षम प्राधिकारी उस आदेश को परिवर्तित या प्रतिसंहृत [रिवोक] न कर दे।"

जहाँ सरकारी सेवक निलम्बित हो अथवा निलम्बित रहा माना गया हो तथा उस निलम्बन के दौरान उसके विरुद्ध कोई अन्य अनुशासनिक कार्यवाही प्रारम्भ की जाती है तो सक्षम प्राधिकारी, कारण अभिलिखित करके, निदेश दे सकते हैं कि वह सेवक उन सभी अथवा उनमें से किसी कार्यवाई के समाप्त होने तक निरन्तर निलम्बित रहेगा।

[6] जीवन निर्वाह भत्ता- "निलम्बन की अवधि में सरकारी सेवक को "जीवन निर्वाह भत्ता" देने के उपबंध उत्तर प्रदेश मूल नियमावली के नियम 53 में दिए हुए हैं।" यह नियमावली वित्तीय हस्त पुस्तिका खण्ड-2, भाग 2-4 के भाग 2 में अंतर्विष्ट है।

मूल नियम 53- जीवन निर्वाह भत्ता

[1] सरकारी सेवक, जो नियुक्ति प्राधिकारी के आदेश से निलम्बित हो, या निलम्बित रहा होना माना गया हो, निम्नलिखित भुगतान पाने का हकदार होगा:-

[क] जीवन निर्वाह भत्ता, जिसकी धनराशि ऐसे अवकाश वेतन की धनराशि के बराबर होगी जो उस सेवक को प्राप्त होती, यदि वह अर्द्ध-औसत वेतन या अर्द्ध-वेतन पर अवकाश पर रहा होता तथा इसके अतिरिक्त अवकाश वेतन पर अनुमन्य महँगाई भत्ता भी मिलेगा। परन्तु जहाँ निलम्बन अवधि तीन माह से अधिक हो जाए तो वह प्राधिकारी प्रथम तीन माह की अवधि के पश्चात् की किसी अवधि के लिए जीवन निर्वाह भत्ते की धनराशि में निम्नलिखित परिवर्तन करने के लिए सक्षम होगा-

[1] यदि उक्त प्राधिकारी की राय में निलम्बन की अवधि तीन माह से अधिक बढ़ने के लिए उस सेवक का सीधा दायित्व न हो तो जीवन निर्वाह भत्ता के रूप में जो धनराशि उसे

प्राप्त हो रही थी, उसकी अधिकतम 50 प्रतिशत धनराशि के बराबर धनराशि जीवन निर्वाह भत्ते में वृद्धि कर दे सकते हैं।

॥॥ यदि उक्त प्राधिकारी की राय में निलम्बन अवधि तीन माह से अधिक बढ़ने के लिए उस सेवक का सीधा दायित्व हो तो प्रथम तीन माह में जीवन निर्वाह भत्ते की जो धनराशि दी गई थी, उसके 50 प्रतिशत के बराबर धनराशि निर्वाह भत्ते में से घटा सकते हैं।

॥॥॥ महँगाई भत्ते की दर उपर्युक्त खण्ड । व 2 के अधीन अनुमन्य जीवन निर्वाह भत्ते की बढ़ाई या घटाई हुई धनराशि पर आधारित होगी।

॥ख॥ यदि निलम्बन की तिथि पर उस सेवक के वेतन के साथ अन्य कोई प्रतिकर भत्ता अनुमन्य रहा हो तो जीवन निर्वाह भत्ते के साथ वह प्रतिकर भत्ता भी उसे दिया जाएगा। परन्तु वह सेवक प्रतिकर भत्तों का तब तक हकदार नहीं होगा, जब तक कि उक्त प्राधिका संतुष्ट न हो जाएं कि सरकारी सेवक ऐसा व्यय कर रहा है जि लिए प्रतिकर भत्ता मंजूर किया गया हो।

॥2॥ जीवन निर्वाह भत्ता का भुगतान तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि सरकारी सेवक इस आशय का प्रमाण-पत्र प्रस्तुत नहीं करता कि वह किसी अन्य सेवायोजन, व्यापार, वृत्ति या व्यवसाय में नहीं लगा है। परन्तु जहाँ सरकारी सेवक को पदच्युत या सेवा से हटा दिया गया हो, परन्तु यह दण्डादेश निरस्त कर दिया गया हो, तथा सी॰सी॰ए॰ रूल्स के नियम 49-ए॥3 एवं 4॥ के अधीन उस सेवक के पदच्युत या सेवा से हटाने के आदेश की तिथि से निलम्बित रहा होना माना गया हो तथा निलम्बन की उस अवधि के संबंध में वह सेवक उक्त चर्चित प्रमाण-पत्र प्रस्तुत नहीं करता है तब वह सेवक जीवन निर्वाह भत्ते की उतनी ही धनराशि पाने का हकदार होगा जितनी इस अवधि में उसकी आय की धनराशि जीवन निर्वाह भत्ते से कम

पड़ती हो। यदि जीवन निर्वाह भत्ते एवं अन्य अनुमन्य भत्ते की धनराशि उसकी आय की धनराशि के बराबर या उससे कम हो तो ये उपबंध लागू नहीं होंगे।

दाण्डिक निलम्बन

जब किसी सरकारी सेवक के विरुद्ध दुराचरण या दुर्व्यवहार का अभियोग लगाया गया हो तो शासन विभागीय जाँच करा सकता है। यदि जाँच में वह सेवक दोषी पाया जाता है तो दण्डस्वरूप उसके निलम्बन का आदेश किया जा सकता है, यदि नियमों में ऐसा अनुमन्य हो। अर्थात् नियमों में जो दण्ड नियत है, यदि उनमें से निलम्बन भी एक दण्ड है तो, जाँच के उपरान्त निलम्बन का दण्डादेश पारित किया जा सकता है। इसे दाण्डिक निलम्बन कहते हैं।[27]

सी॰सी॰ए॰ रूल्स, 1930 के नियम49 के खण्ड। V । में तथा पनिशमेण्ट ऐण्ड अपील रूल्स फार सबोर्डिनेट सर्विसेज, यू॰पी॰, 1932 के नियम-1 के खण्ड। V । में निलम्बन का दण्ड अधिरोपित करने के उपबंध हैं। अतः उत्तर प्रदेश सिविल सेवा, विशेषज्ञ सेवा, अधीनस्थ सेवा एवं विधुत परिषद् की सेवा के सदस्यों पर निलम्बन का दण्ड अधिरोपित किया जा सकता है। यद्यपि इन नियमों में दाण्डिक निलम्बन का उपबंध है, परन्तु यह निलम्बन अप्रचलित एवं लुप्तप्राय हो चुका है।

सेन्ट्रल सिविल सर्विसेज ।क्लासिफिकेशन, कंट्रोल ऐण्ड अपील। रूल्स, 1965, आल इण्डिया सर्विसेज ।डिसिप्लिन ऐण्ड अपील। रूल्स, 1969, रेलवे सर्वेन्ट्स ।डिसिप्लिन ऐण्ड अपील। रूल्स, 1968 तथा उ0प्र0 राज्य सड़क परिवहन निगम कर्मचारी ।अधिकारियों से भिन्न। सेवा विनियमावली, 1981 में दण्डों के जो उपबंध हैं उनमें निलम्बन दण्ड नहीं है। अतः जिन सेवकों पर ये नियमावली लागू होती हैं, उन पर निलम्बन का दण्ड अधिरोपित नहीं किया जा सकता।

27-आर॰पी॰ कुमार बनाम भारत संघ-आ0इं0रि0 1964 सु0को0 787

सारांश

अंतरिम निलम्बन अनुशासनिक कार्यवाही का एक अंग है, यह दण्ड नहीं है।[28] उस प्राधिकारी को जिसे नियुक्ति करने की तत्समय शक्ति हो, यह शक्ति भी प्राप्त होती है कि वह किसी ऐसे व्यक्ति को, जो उक्त शक्ति के प्रयोग में उसके द्वारा या किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा नियुक्त किया गया हो, निलम्बित कर सके।[29] अतः जो प्राधिकारी लोक सेवक को नियुक्त करने की शक्ति रखता हो उसे यह शक्ति भी प्राप्त होती है कि उस सेवक के विरूद्ध यदि कोई विभागीय जाँच या अपराधिक विचारण लम्बित हो तो उसे निलम्बित कर सके।[30] निलम्बन आदेश का प्ररूप परिशिष्ट-4 में दिया गया है।

सेवक को अपने कर्तव्यों का निष्पादन करने से मना करने का अधिकार नियोजक को प्राप्त होता है।[31] ऐसे मामले में यदि उस सेवक को वेतन भुगतान करने के संबंध में कोई नियम न हो तो नियोजक को उस सेवक को सम्पूर्ण वेतन एवं भत्तों का भुगतान करना होगा। परन्तु, जहाँ वेतन भुगतान के बारे में नियम विद्यमान हों वहाँ उस सेवक को तदनुरूप वेतन एवं भत्तों का भुगतान करना होगा।

परन्तु सरकारी सेवक पर निलम्बन का दण्ड तभी अधिरोपित किया जा सकता है जब प्रकृत नियम में ऐसा उपबंध हो। दण्ड स्वरूप निलम्बित करने का अधिकार तथा जाँच के दौरान

28-वी०आर० नायक का पूर्वोक्त मामला

29-केन्द्रीय साधारण खण्ड अधिनियम तथा उ०प्र० साधारण खण्ड अधिनियम की धारा-16

30-वी०आर० पटेल का पूर्वोक्त मामला

31-वी०पी० गिन्दरोनिया बनाम मध्य प्रदेश राज्य 1970 एस०सी० 329 [यु०को०]

सेवा-संविदा निलम्बित करने का अधिकार, दोनों ही, सेवायोजन की संविदा अथवा सेवा शर्तों से विनियमित होते हैं।[32]

32-बी0पी0 गिन्डरोनिया बनाम मध्य प्रदेश राज्य 1970 स0ला0 रि0 [illegible] पृ0 [illegible]।

अध्याय- पन्द्रह

अस्थायी सेवकों की सेवा समाप्ति

अस्थायी सरकारी सेवकों को, सामान्यतया पद धारण करने का अधिकार नहीं होता है तथा उनकी सेवाएं, नियमों या संविदा के अनुरूप नोटिस देकर, समाप्त की जा सकती है। इस प्रकार की सेवा समाप्ति, "पदच्युति" या "सेवा से हटाने" का, दण्ड नहीं मानी जाती है।

उत्तर प्रदेश के अस्थायी सरकारी सेवकों की सेवा-समाप्ति के लिए राज्यपाल ने, संविधान के अनुच्छेद 309 द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करके, उत्तर प्रदेश अस्थायी सरकारी सेवा [सेवा-समाप्ति] नियमावली, 1975 बनाई है। यह नियमावली उन सभी व्यक्तियों पर लागू होती है, जो उत्तर प्रदेश सरकार के किसी सिविल पद पर हों, किन्तु जिनका उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन किसी स्थायी सरकारी पद पर धारणाधिकार [लियन] न हो।[1] "अस्थायी सेवा" का तात्पर्य उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन, किसी अस्थायी पद पर स्थानापन्न या अधिष्ठायी सेवा से है, अथवा, स्थायी पद पर स्थानापन्न सेवा से है।[2]

अस्थायी सेवा में स्थित सरकारी सेवक की सेवा किसी भी समय, लिखित नोटिस देकर, समाप्त की जा सकती है। यह नोटिस सरकारी सेवक द्वारा नियुक्ति प्राधिकारी को या नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा सरकारी सेवक को लिखित रूप से दी जा सकती है। नोटिस की अवधि एक मास होगी।[3]

किसी अस्थायी सेवक की सेवा तुरन्त भी समाप्त की जा सकती है, परन्तु ऐसी समाप्ति पर वह सेवक नोटिस की अवधि के लिए, या, यथास्थिति, ऐसी नोटिस एक मास से जितनी कम हो उतनी अवधि

1-नियम 1[3]
2-नियम 2
3-नियम 3

के लिए, अपने वेतन एवं भत्ते [यदि कोई हों] की धनराशि के बराबर धन पाने का हकदार होगा।[4]

यदि कोई सरकारी सेवक अपनी अस्थायी सेवा स्वयं समाप्त कराना चाहता हो तो नियुक्ति प्राधिकारी चाहे तो नोटिस के बगैर तथा उसके बदले में किसी शास्ति का भुगतान करने की उपेक्षा किए बिना उस सेवक को अवमुक्त कर सकते हैं, अथवा कम अवधि की नोटिस भी स्वीकार कर सकते हैं।[5]

यदि अस्थायी सेवक के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाई विचाराधीन या आसन्न हो और उसने सेवा समाप्ति की नोटिस नियुक्ति प्राधिकारी को दिया हो तो ऐसी नोटिस तभी प्रभावी होगी जब वह नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा स्वीकार कर ली जाए। यदि अनुशासनिक कार्यवाई आसन्न हो तो उस दशा में सरकारी सेवक को उसकी नोटिस स्वीकार न किए जाने की सूचना, नोटिस की समाप्ति के पूर्व, दी जाएगी।[6]

उत्तर प्रदेश शासनादेश सं0 20/1/74-नियुक्ति-31, दिनांक 24 जुलाई, 1975 द्वारा अस्थायी सरकारी सेवकों की "सेवा-समाप्ति" करने के लिए नोटिस के प्रारूप निर्धारित किए गए हैं, जो परिशिष्ट में यथावत उद्धृत किए जा रहे हैं।

निम्नलिखित श्रेणी के व्यक्तियों पर उक्त नियम लागू नहीं होंगे, अपितु उनकी पदावधि या नियुक्ति या सेवायोजन की पदावधि की निरन्तरता उनकी नियुक्ति या सेवायोजन की शर्तों द्वारा नियंत्रित होगी,[7]

[क] वे व्यक्ति जो संविदा पर नियुक्त हों,
[ख] वे व्यक्ति जो सरकार के पूर्णकालिक सेवायोजन में न हों,
[ग] वे व्यक्ति जिन्हें आकस्मिक व्यय की धनराशि से अदायगी की जाती हो,
[घ] वे व्यक्ति जो कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में सेवायोजित हों,
[ङ] वे व्यक्ति जिन्हें अधिवर्षिता के पश्चात् पुनः सेवायोजित किया जाए,

4-नियम 3[2] का प्रथम परन्तुक
5-नियम 3[2] का द्वितीय परन्तुक
6-नियम 3[2] का तृतीय परन्तुक
7-नियम 4

[च] वे व्यक्ति जिन्हें विनिर्दिष्ट अवधि के लिए सेवायोजित किया जाए और जिनकी सेवा का पर्यवसान उस अवधि के व्यतीत होने पर स्वतः हो जाए,

[छ] वे व्यक्ति जिन्हें विनिर्दिष्ट अवधि के लिए इस शर्त पर सेवायोजित किया जाए कि उस अवधि में किसी भी समय कमी की जा सकती है,

[ज] वे व्यक्ति जिन्हें अल्पकालिक व्यवस्था या रिक्तियों में नियुक्त किया जाए और जिनकी सेवा का पर्यवसान[8] उस व्यवस्था या रिक्ति की समाप्ति पर स्वतः हो जाए।

केन्द्रीय सिविल सेवाओं के अस्थायी सेवकों की सेवा समाप्ति के लिए सेन्ट्रल सिविल सर्विसेज [टेम्पोरेरी सर्विस] रूल्स, 1965 विरचित किए गए हैं, जिनमें अस्थायी सेवकों की सेवा समाप्ति के संबंध में पूर्वोक्त उपबंधों के समान ही उपबंध हैं। अतः केन्द्रीय सिविल सेवाओं के अस्थायी सेवकों की सेवा भी एक माह की नोटिस या वेतन देकर समाप्त की जा सकती है।

अतः केन्द्र या राज्य सरकार के अधीन सेवायोजित अस्थायी सरकारी सेवक की सेवा, कोई कारण बताए बगैर, एक मास की नोटिस देकर अथवा नोटिस के स्थान पर एक मास का वेतन देकर समाप्त की जा सकती है, जिसे "साधारण सेवा समाप्ति" कहते हैं।

अंतिम आवक प्रथम जावक पद्धति

जब कई अस्थायी सेवक हों तथा उनमें से कुछ की सेवा समाप्त की जानी हो तो "अंतिम आवक प्रथम जावक" का सिद्धान्त लागू किया जाएगा अथवा नहीं? इस प्रश्न का[9] उच्चतम न्यायालय ने, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम कैलाश किशोर शुक्ला, के मामले में, विचार करके कहा है कि यह पद्धति उन मामलों में ही लागू होती है, जहाँ कार्य की कमी के कारण, सेवकों की छटनी करके सेवा समाप्त की जाती है। इस

8-नियम 4

9-1991 [62] एफ०एल०आर० 240 [सु०को०]

सिद्धान्त के अधीन ज्येष्ठ सेवक को सेवा में बनाए रखा जाता है जबकि कनिष्ठ सेवक की सेवाएं समाप्त की जाती हैं। परन्तु यह सिद्धान्त उन मामलों में लागू नहीं होता जहाँ किसी अस्थायी सेवक की सेवा कार्य-आचरण का अधिमूल्यन करके, पद के लिए उसकी अयोग्यता के कारण, समाप्त की जानी हो। यदि किसी विभाग में कई अस्थायी सेवक कार्य कर रहे हों और उनमें से किसी ज्येष्ठ सेवक को, उसके कार्य आचरण के आधार पर, पद के अयोग्य पाया जाता है तो सक्षम प्राधिकारी उसकी सेवाएं समाप्त कर सकते हैं तथा कनिष्ठ सेवक जो पद के सुयोग्य पाए जाएं उन्हें सेवा में बनाए रख सकते हैं। ऐसी प्रक्रिया संविधान के अनुच्छेद 14 एवं 16 में अंतर्विष्ट "समता के सिद्धान्त" का उल्लंघन नहीं करती है।

असंतोषप्रद कार्य की सूचना

उच्चतम न्यायालय के निर्णयों से यह सुप्रतिष्ठित है कि अस्थायी या परिवीक्षाधीन सेवक, जिन्हें पदधारण करने का अधिकार नहीं है, को पद के अयोग्य पाए जाने पर उनकी सेवा-समाप्ति वैध है तथा संविधान के अनुच्छेद 311 को आकर्षित नहीं करती।[10] डा० [श्रीमती] सुमति के मामले[11] में उच्चतम न्यायालय ने इस सिद्धान्त का अनुमोदन करते हुए इस आशय का संप्रेक्षण किया है कि यदि अस्थायी या परिवीक्षाधीन सेवक की सेवा असंतोषप्रद हो तो सेवा समाप्ति से पूर्व यह आवश्यक एवं उचित है कि उसे पहले से बता दिया जाए कि उसका कार्य संतोषप्रद नहीं है। इस मामले के तथ्य इस प्रकार हैं, सहायक सर्जन के रिक्त स्थायी पद पर डा० सुमति को, छः मास अथवा संघ लोक सेवा आयोग से नियमित चयन तक, जो भी पहले हो, तदर्थ रूप से नियुक्त किया गया था। समय-समय पर उनकी सेवाकाल में वृद्धि की जाती रही। अंतिम बार दिनांक 15.2.1985 तक के लिए सेवाकाल में वृद्धि की गई, परन्तु दिनांक 12.1.1985 के पत्र द्वारा उन्हें सूचित किया गया कि दिनांक 15.2.85 से उनकी सेवाएं समाप्त मानी जाएंगी।

10-आयल ऐण्ड नेच्युरल गैस कमीशन बनाम डा० स्कन्दर अली-आ०इ०रि० 1980 सु०को० 1242

11-डा० [श्रीमती] सुमति पी० शेरे बनाम भारत संघ-आ०इ०रि० 1989 सु०को० 1431

उसने बम्बई उच्च न्यायालय में रिट याचिका प्रस्तुत की, जो केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण को अंतरित कर दी गई। अधिकरण ने डा॰ सुमति की गोपनीय पत्रावली का अवलोकन किया, जिससे ज्ञात हुआ कि सक्षम प्राधिकारी उनके कार्य से संतुष्ट नहीं थे। अधिकरण ने निर्णय किया कि यह सेवा-समाप्ति दण्ड नहीं है। परन्तु उच्चतम न्यायालय ने कहा कि डा0 सुमति को कभी भी उनके कार्य की कमियों के बारे में नहीं बताया गया, एकाएक सेवा-समाप्ति का आदेश किया गया। यदि उनकी सेवा-समाप्त की जानी थी तो पहले उन्हें बता देना चाहिए था कि उनका कार्य संतोषप्रद नहीं है। परन्तु ऐसा नहीं किया गया। अतः सेवा-समाप्ति का आदेश अनुचित है।

उच्चतम न्यायालय के इस निर्णय का सार यह है कि अस्थायी सेवक को, "असंतोषप्रद कार्य" से अवगत कराकर, सुधार का अवसर दिया जाना चाहिए। यदि इसके बावजूद उसका कार्य असंतोषप्रद हो तो पद के लिए अयोग्यता के आधार पर, उसकी सेवा समाप्त की जा सकती है।

सेवा-समाप्ति का आदेश करने से पूर्व सक्षम प्राधिकारी उस सेवक के कार्य आचरण पर विचार करके निर्णय लेते हैं कि क्या वह अस्थायी सेवक पद के योग्य है? इसके लिए वह एकतरफा जाँच करते हैं, जो संविधान के अनुच्छेद 311|2| में नियत "औपचारिक विभागीय जाँच" नहीं है। यह जाँच सेवा अभिलेखों एवं अन्य सुसंगत सामग्री का अवलोकन करके यह जानने के लिए की जाती है कि वह सेवक सेवा में बनाए रखे जाने योग्य है या नहीं? इस जाँच की प्रकृति, तथा औपचारिक विभागीय जाँच से इसकी भिन्नता, स्पष्टतः समझ लेनी अनिवार्य है।

जाँच की प्रकृति

यह सुप्रतिष्ठित है कि अस्थायी सरकारी सेवक की सेवा, नियमों या संविदा के अधीन, बिना कारण बताए, कभी भी समाप्त की जा सकती है। ऐसी सेवा-समाप्ति, "साधारण" है, "पदच्युति" या "सेवा

से हटाना" नहीं है, न ही संविधान का अनुच्छेद 311 आकर्षित होता है, अर्थात् विभागीय जाँच कराना आवश्यक नहीं है। परन्तु अस्थायी सरकारी सेवक को, दुराचरण के लिए दण्डित करके, सेवा से हटाया या पदच्युत भी किया जा सकता है, ऐसी दशा में अनुच्छेद 311[2] के अनुरूप विभागीय जाँच कराना अनिवार्य है, क्योंकि अस्थायी सरकारी सेवक भी संविधान के अनुच्छेद 311[2] के सुरक्षोपाय पाने का उसी प्रकार हकदार है जैसे स्थायी सेवक।[12] कहने का तात्पर्य यह कि अस्थायी सेवक की सेवा दो तरीके से समाप्त की जा सकती है,- पहला, साधारण तरीके से नोटिस या वेतन देकर। सेवा संविदा या नियमों के अधीन एक मास की नोटिस या नोटिस के बदले वेतन देकर, कोई कारण बताए बगैर, अस्थायी सेवक की सेवा समाप्त की जा सकती है, यदि सक्षम प्राधिकारी संतुष्ट हो कि अस्थायी सेवक पद पर बनाए रखे जाने योग्य नहीं है। दूसरा, दुराचरण के लिए दण्डित करके। अस्थायी सेवक के विरुद्ध आरोप विरचित करके तथा संविधान के अनुच्छेद 311[2] के अनुरूप उसे सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देते हुए "विभागीय जाँच" कराकर उसकी सेवा दण्ड स्वरूप भी समाप्त की जा सकती है।[12]

अतः नियुक्ति प्राधिकारी को किसी अस्थायी सरकारी सेवक की सेवा समाप्त करने की दो शक्तियाँ प्राप्त हैं, पहली, अस्थायी सरकारी सेवक [सेवा-समाप्ति] नियमावली के अधीन तथा दूसरी, दुराचरण के आरोप पर विभागीय जाँच में दण्डित करके।[13]

पहली शक्ति का प्रयोग करते समय भी सक्षम प्राधिकारी, अस्थायी सेवक के पद के लिए अयोग्यता का विनिश्चय करने हेतु जाँच कर सकते हैं, जो प्रारम्भिक प्रकृति की जाँच होती है। अस्थायी सेवक पद के योग्य है या नहीं?, का विनिश्चय करने से पूर्व की गई प्रारम्भिक जाँच मात्र से सेवा-समाप्ति के आदेश की प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं होता है। इस प्रारम्भिक जाँच में सेवक के विरुद्ध कोई आरोप विरचित नहीं किया जाता है तथा वह सुनवाई का कोई अवसर पाने का अधिकारी नहीं होता है, क्योंकि ऐसी जाँच में दाण्डिक कार्यवाहियों के कोई तत्व

12-उ0प्र0 राज्य बनाम कौशल किशोर शुक्ला-1991[62] एफ0एल0आर0 350 [सु0को0]

13-जगदीश मित्तर बनाम भारत संघ-आ0इं0रि0 1964 सु0को 449

विद्यमान नहीं होते। यह जाँच कराने का अभिप्राय अस्थायी सेवक को दण्ड देना नहीं होता, बल्कि सिर्फ यह अभिनिश्चय करना होता है कि क्या वह सेवा में बनाए रखे जाने योग्य है अथवा नहीं?[14 व 15] यदि जाँच के फलस्वरूप नियुक्ति प्राधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अस्थायी सेवक सेवा में बनाए रखे जाने योग्य नहीं है तब नियमावली या संविदा द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए, एक मास की नोटिस या वेतन देकर उसकी सेवा-समाप्ति या सेवोन्मुक्ति का आदेश कर सकते हैं। यह जाँच, संविधान के अनुच्छेद 311(2) में अनुध्यात "विभागीय जाँच" नहीं है तथा ऐसे मामले में उस सेवक को संविधान के अनुच्छेद 311 के सुरक्षोपाय प्राप्त नहीं होते, क्योंकि पूर्वोक्त जाँच का प्रयोजन सिर्फ यह अभिनिश्चित करना था कि नियमावली या संविदा के अधीन शक्ति का प्रयोग करके अस्थायी सेवक को सेवोन्मुक्त किया जाए अथवा नहीं।[14]

परन्तु ऐसे मामले भी हो सकते हैं जिनमें नियुक्ति प्राधिकारी पूर्वोक्त दूसरी शक्ति का प्रयोग करना चाहें, अर्थात्, अस्थायी सेवक को, दुराचरण या दुर्व्यवहार के लिए, दण्डित करके सेवोन्मुक्त करना चाहें, अर्थात् पदच्युति या सेवा से हटाने का दण्ड अधिरोपित करके उसकी सेवा समाप्त करना चाहें। ऐसे मामले में औपचारिक विभागीय जाँच की जानी अनिवार्य है। जब औपचारिक विभागीय जाँच करने के उपरान्त अस्थायी सेवक की सेवा समाप्त करने का आदेश किया जाता है तो सेवा-समाप्ति का यह आदेश, "सेवा से हटाना" या "पदच्युत करना" माना जाएगा।

अतः सेवा संविदा या नियमों के अधीन, अस्थायी सेवक की सेवा समाप्त करने की शक्ति का प्रयोग करते समय सक्षम प्राधिकारी, पद के लिए उसकी योग्यता के बारे में, प्रारम्भिक प्रकृति की जाँच कर सकते हैं, जो संविधान के अनुच्छेद 311(2) में अनुध्यात "विभागीय जाँच" नहीं है, न ही उसकी प्रक्रिया अपनानी होती है।

14-जगदीश मित्र बनाम भारत संघ-आ०इ०रि० 1964 सु०को० 449

15-आर०सी० लैकी बनाम बिहार राज्य तथा अन्य-1964(3) एस०सी०आर० 421(सु०को०) तथा ए०जी० बेन्जामिन बनाम भारत संघ 1967(15) एफ०एल०आर० 347 (एस०सी०) तथा उत्तर प्रदेश राज्य बनाम कौशल किशोर शुक्ला-1991(62) एफ०एल०आर० 350(सु०को०)

सेवा-समाप्ति आदेश की प्रकृति का विनिश्चय

प्रायः प्रश्न उठता है कि सेवा-समाप्ति का आदेश साधारण तरीके से अर्थात् सेवा-संविदा या नियमों के अधीन किया गया है अथवा दण्डस्वरूप किया गया है?

यह सुप्रतिष्ठित है कि इसके विनिश्चय के लिए आदेश का स्वरूप या उसकी भाषा निर्णायक नहीं है, अपितु आदेश का सार तथा आनुषंगिक तथ्य एवं परिस्थितियाँ निर्णायक हैं।[16 व 17]

जगदीश मित्तर बनाम भारत संघ के मामले[18] में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि सेवा-समाप्ति आदेश की प्रकृति का विनिश्चय करने के लिए उस आदेश के पूर्व विद्यमान "तात्विक तथ्य" पर विचार किया जाएगा, तथा नियुक्ति प्राधिकारी के मस्तिष्क में कार्य कर रहा "हेतु" सारवान् नहीं होगा और न ही सेवा-समाप्ति के स्वरूप को परिवर्तित करेगा। यद्यपि अस्थायी सेवक की सेवा समाप्त करने का आदेश करने में, उसके दुराचरण, दुर्व्यवहार, उपेक्षा या अक्षमता, नियुक्ति प्राधिकारी के मस्तिष्क में "हेतु" या उत्प्रेरक का कार्य कर सकते हैं, परन्तु मात्र इसी कारण से वह आदेश पदच्युति अथवा सेवा से हटाने का दण्ड नहीं माना जाएगा, न ही विभागीय जाँच की जानी अनिवार्य होगी। परन्तु यदि अस्थायी सेवक की सेवा, दुराचरण, दुर्व्यवहार, उपेक्षा या अक्षमता के "आधार" पर, समाप्त की जाती है तो इसे "पदच्युति या सेवा से हटाने" का दण्ड माना जाएगा, जिसके पूर्व विभागीय जाँच की जानी अनिवार्य होगी।

पुरूषोत्तम लाल ढिंगरा के मामले[19] में उच्चतम न्यायालय ने, अस्थायी सेवक की सेवा-समाप्ति का आदेश साधारण है या दाण्डिक? का विनिश्चय करने के लिए, दो परीक्षण सूत्र बताए हैं :-

1. क्या संबंधित सेवक को पद धारण करने का अधिकार प्राप्त था? या,

---

16-मदन गोपाल बनाम पंजाब राज्य-ए०आई०आर० 1963 सु०को० 531.
17-शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य-ए०आई०आर० 1974 सु०को० 2192 एवं उ०प्र० राज्य बनाम कौशल किशोर शुक्ला-1991[62] एफ०एल०आर० 240[सु०को०]
18-ए०आई०आर० 1964 सु०को० 449
19-ए०आई०आर० 1958 सु०को० 36

2. क्या सेवा-समाप्ति के आदेश से "सिविल दुष्परिणाम" उत्पन्न होते हैं?

यदि इनमें से किसी एक भी प्रश्न का उत्तर सकारात्मक हो तो यही माना जाएगा कि सेवा-समाप्ति का आदेश दण्डस्वरूप पारित किया गया है। इस संदर्भ में, यह बात ध्यान में रखनी अनिवार्य है कि अस्थायी सेवक को पद धारण करने का अधिकार नहीं होता है तथा उसकी सेवा-समाप्ति से कोई सिविल दुष्परिणाम उत्पन्न नहीं होते, अर्थात्, यदि सेवा-संविदा या नियमों के अनुरूप अस्थायी सेवक की सेवा समाप्त की जाती है तो इससे सिविल दुष्परिणाम उत्पन्न नहीं होते। इस सिद्धान्त का अनुमोदन उच्चतम न्यायालय ने उ0प्र0 राज्य बनाम कैलाश किशोर शुक्ला के मामले[20] में भी किया है।

अतः यदि सेवा समाप्ति आदेश का सार तथा आनुषंगिक तथ्य एवं परिस्थिति पर विचारोपरान्त उक्त दोनों प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक हो तो, इसे साधारण सेवा-समाप्ति माना जाएगा, लेकिन किसी एक भी सूत्र का उत्तर सकारात्मक हो तो सेवा-समाप्ति का आदेश दण्डात्मक प्रकृति का माना जाएगा। अस्थायी सेवक के मामले में सामान्यतया, प्रथम सूत्र का उत्तर नकारात्मक ही होता है। द्वितीय सूत्र का उत्तर, साधारण सेवा-समाप्ति के मामले में तो नकारात्मक होता है, परन्तु दण्डात्मक मामले में सकारात्मक होता है। जब सेवक के दुराचरण या दुर्व्यवहार के "आधार" पर सेवा समाप्त की जाती है तो यह आदेश उसे कलंकित करता है तथा भविष्य में उसके सेवायोजन में बाधक होता है, जो "सिविल दुष्परिणाम" है। ऐसे मामले में द्वितीय प्रश्न का उत्तर सकारात्मक होगा तथा सेवा-समाप्ति आदेश, "दण्ड" माना जाएगा।

जब सेवा-समाप्ति आदेश को न्यायालय में चुनौती दी जाती है तो न्यायालय को उसके स्वरूप पर ही नहीं, अपितु "सार" पर भी विचार करना होता है। न्यायालय, सेवा-समाप्ति के आदेश

20. 1991 (62) एफ0एल0आर0 350 (सु0को0)

के शब्दों एवं भाषा के अतिरिक्त उन सभी सामग्रियों का अवलोकन कर सकता है जिनके आधार पर वह आदेश पारित किया गया हो। तदुपरान्त न्यायालय यह विनिश्चय करेगा कि सेवा-समाप्ति का आदेश करने में सेवक का दुराचरण या दुर्व्यवहार आदेश का "हेतु" मात्र था अथवा "आधार" था। यदि दुराचरण या दुर्व्यवहार "हेतु" मात्र ही रहा हो तो वह "साधारण सेवा-समाप्ति" मानी जाएगी, जिसके पूर्व विभागीय जाँच कराने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु दुराचरण या दुर्व्यवहार, "आधार" रहा हो तो वह सेवा-समाप्ति, पदच्युति या सेवा से हटाने का, दण्ड मानी जाएगी, जिसके पूर्व विभागीय जाँच करानी आवश्यक है।[21]

शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य के मामले[22] में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि अस्थायी सेवक की सेवा-समाप्ति आदेश की वास्तविक प्रकृति जानने के लिए आदेश का स्वरूप निर्णायक नहीं होगा। हानि-रहित या कलंक-रहित शब्दों वाला सेवा-समाप्ति का आदेश हो तो भी उस मामले के तथ्य एवं परिस्थितियाँ यह प्रमाणित कर सकती हैं कि दुराचरण के गंभीर अभियोग, जिसमें कलंक अंतर्ग्रस्त था, के बारे में जाँच कराई गई थी तथा इस जाँच में संविधान के अनुच्छेद 311[2] के उपबंधों का उल्लंघन किया गया था, जिसके कारण वह आदेश, पदच्युति का दण्ड माना जा सकता है। ऐसे मामले में आदेश का स्वरूप एवं भाषा की सरलता उसकी वास्तविक प्रकृति का निर्णायक नहीं होगा।

यदि सेवा-समाप्ति आदेश से क्षुब्ध व्यक्ति का कथन हो कि यह आदेश उसे पदच्युत करने के आशय से किया गया है, तो यह सिद्ध करने का भार, कि आदेश करने वाले प्राधिकारी का ऐसा आशय था, उसी व्यक्ति पर होगा।[23]

इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत दो मामले उल्लेखनीय हैं। पहला मामला, **त्रिपुरा संघीय राज्य क्षेत्र बनाम गोपाल चन्द दत्त चौधरी,**[23] का है जिसमें श्री गोपाल चन्द त्रिपुरा पुलिस फोर्स में सिपाही पद पर दिनांक 18·4·1954 को अस्थायी रूप से नियुक्त किया गया था। नियमों के अधीन उनकी सेवा एक माह की नोटिस

21।-शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य-आ०ई०आर० 1974 सु०को० 2192 तथा दिल्ली ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन बनाम डी०टी०सी० मजदूर कांग्रेस एवं अन्य-1991[1] बाला न० 56 [उच्चतम न्यायालय]

22-आ०ई०आर० 1974 सु०को० 2192

23-त्रिपुरा संघीय. राज्य क्षेत्र बनाम गोपाल चन्द दत्त चौधरी-आ०ई०आर० 1963 सु०को० 601

पर समाप्त की जा सकती थी। पुलिस अधीक्षक ने दिनांक 6-12-57 के आदेश द्वारा, श्री गोपाल चन्द की सेवा दिनांक 6-1-1958 से समाप्त करने का आदेश किया। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि यह आदेश करने से पूर्व गोपाल चन्द के दुराचरण या दुर्व्यवहार के लिए दोषी होने का विनिश्चय करने हेतु कोई जाँच नहीं कराई गई थी, यह गोपाल चन्द की सेवा-समाप्ति का साधारण आदेश है एवं ऐसा आदेश करने में कोई त्रुटि नहीं है।

दूसरा मामला, श्रीमती राजेन्दर कौर बनाम पंजाब राज्य[24] का है, जिसमें दिनांक " 5-79 को श्रीमती राजेन्दर कौर को सिपाही के पद पर परिवीक्षा पर नियुक्त किया गया था। प्रशिक्षण के उपरान्त मार्च, 1980 में उन्हें पुलिस लाइन, होशियारपुर में तैनात किया गया। श्रीमती कौर के विरूद्ध रिपोर्ट की गई कि उसने दो रातें एक पुरूष सिपाही के साथ बिताई। इस अभियोग की जाँच की गई, तदुपरान्त दिनांक 9-9-80 के आदेश से उसे सेवोन्मुक्त कर दिया गया। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि सेवोन्मुक्ति का यह आदेश दुराचरण पर आधारित था, अतः यह "पदच्युति" है, जो अनुच्छेद 311[2] के अनुरूप विभागीय जाँच करके ही किया जा सकता था। परन्तु सेवोन्मुक्ति के पूर्व श्रीमती कौर के विरूद्ध जो जाँच की गई उसमें न तो कोई आरोप-पत्र दिया गया, न ही गवाहों से प्रतिपरीक्षा करने की अनुमति दी गई, अर्थात् वह जाँच अनुच्छेद 311[2] के अनुरूप नहीं की गई थी। अतः यह आदेश अवैध है एवं तदनुरूप निरस्त किया जाता है।

सारांश यह है कि अस्थायी सेवक का दुराचरण, दुर्व्यवहार, उपेक्षा या अक्षमता, उसकी सेवा-समाप्ति आदेश का "हेतु" मात्र रहा हो तथा इस आदेश से उस पर कोई कलंक न लगता हो तो वह "साधारण सेवा-समाप्ति" का आदेश माना जाएगा। परन्तु दुराचरण, दुर्व्यवहार आदि सेवा-समाप्ति आदेश का आधार रहा हो अथवा वह आदेश अस्थायी सेवक को कलंकित करता हो तो सेवा-समाप्ति का यह आदेश, पदच्युति

24-1987[1] सरला नं० 33[सु०को०]

या सेवा से हटाना माना जाएगा, क्योंकि इस आदेश से "सिविल दुष्परिणाम" उत्पन्न होते हैं।

विभागीय जाँच बन्द करके सेवा-समाप्ति

यदि अस्थायी सेवक के विरुद्ध औपचारिक विभागीय जाँच की जा रही हो तो सक्षम प्राधिकारी यह जाँच बन्द करके नियमों के अधीन उसकी सेवा समाप्त कर सकते हैं। सेवा-समाप्ति का यह आदेश वैध है तथा पदच्युति का दण्ड नहीं है।[25]

अस्थायी सरकारी सेवक की सेवा-समाप्ति का आदेश दण्ड है या नहीं? यह जानने के लिए विभागीय जाँच कराने का तथ्य हमेशा निर्णायक नहीं होता है।[26] यदि विभागीय जाँच शुरू करके बन्द कर दी गई हो तो यह ज्ञात करने के लिए कि क्या सेवा-समाप्ति का आदेश वास्तव में पदच्युति आदेश है? उस मामले के तथ्य एवं परिस्थितियों पर विचार करना होगा। यदि अस्थायी सेवक के विरुद्ध जाँच यह जानने के लिए की गई हो कि क्या उस सेवक के कथित दुर्व्यवहार के लिए अनुशासनिक कार्यवाही की जानी चाहिए? तो यह जाँच दाण्डिक कार्यवाई करने के प्रयोजन के लिए "विभागीय जाँच" मानी जाएगी। ऐसी जाँच एवं इसकी रिपोर्ट पर पारित सेवा-समाप्ति का आदेश पदच्युति या सेवा से हटाने का दण्ड माना जाएगा।[27]

इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत दो मामले उल्लेखनीय हैं। एक मामला, नेपाल सिंह बनाम उ0प्र0 राज्य[28] का है, जिसमें श्री नेपाल सिंह के विरुद्ध दुराचरण के लिए विभागीय जाँच की जा रही थी। कुछ साक्षियों के बयान भी लिए गए थे, परन्तु बाद में स्थानीय क्षेत्राधिकार न होने के कारण जाँच बन्द कर दी गई। उसके उपरान्त पुनः जाँच करने का कोई प्रयास नहीं किया गया, अपितु श्री नेपाल सिंह की सेवा, एक मास की नोटिस के बदले वेतन देकर, समाप्त कर दी गई। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जब सरकारी सेवक के विरुद्ध दुराचरण का अभियोग लगाया गया हो तथा संविधान का अनुच्छेद

25-ए0वी0 बेन्जामिन बनाम भारत संघ-1967[15] ए0एल0आर0 347 [सु0को0] तथा आयल ऐण्ड नेच्युरल गैस कमीशन बनाम डा0 एस्कदर अली-आ0इं0रि0 1980 सु0को0 1242

26-उड़ीसा राज्य बनाम राम नरायन दास-आ0इं0रि0 1961 सु0को0 177

27-मदन गोपाल, बनाम पंजाब राज्य-आ0इं0रि0 1963 सु0को0 531

28-1985[2] सु0को0रि0 ।

311[2] आकर्षित होता हो तो अनुशासनिक प्राधिकारी जाँच बन्द करके सेवा-समाप्ति का आदेश नहीं कर सकते हैं।

परन्तु इसके विपरीत दूसरा मामला, रवीन्द्र कुमार मिश्र बनाम यू0पी0 स्टेट हैण्डलूम कारपोरेशन लि0[29] का है, जिसमें श्री आर0के0 मिश्र उपकर्मा निगम में डिप्टी प्रोडक्शन मैनेजर के पद पर कार्यरत थे। वह अस्थायी सरकारी सेवक थे। उनके विरुद्ध लगाए गए दुराचरण के अभियोग की प्रारम्भिक जाँच की गई तथा दिनांक 22·11·82 के आदेश से उन्हें निलम्बित कर दिया गया। निलम्बन का यह आदेश दिनांक 1·2·1983 को वापस ले लिया गया तथा दिनांक 10·2·83 को उनकी सेवा-समाप्ति का आदेश किया गया, जिसे उन्होंने न्यायालय में चुनौती दी। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि यह निर्विवादित है कि अस्थायी सेवक की सेवा नोटिस देकर समाप्त की जा सकती है। प्रश्न यह है कि उक्त सेवा-समाप्ति का आदेश साधारण है अथवा पदच्युति आदेश के समान है। इस संदर्भ में इस न्यायालय ने कई निर्णयों में, सेवा-समाप्ति आदेश का प्रभाव जानने के लिए, "हेतु एवं आधार" की संकल्पना को अभिव्यक्त किया है। यदि अस्थायी सेवक का दुराचरण, उसकी सेवा समाप्त करने में अनुशासनिक प्राधिकारी के मस्तिष्क में "हेतु" का कार्य किया हो तो वह आदेश दण्ड नहीं माना जाएगा, लेकिन यदि उसका दुराचरण सेवा-समाप्त करने का "आधार" रहा हो, अर्थात् दुराचरण को आधार बनाकर सेवा-समाप्ति का आदेश किया गया हो तो वह आदेश दण्ड माना जाएगा। ऐसे मामले हो सकते हैं, जिनमें जाँच कार्यवाही चल रही हो तथा गंभीर आरोपों के बारे में, प्रथम दृष्टया, सामग्री भी उपलब्ध हो तथा आरोपित सेवक को निलम्बित किया गया हो, तदुपरान्त अनुशासनिक प्राधिकारी यह विनिश्चय करें कि विभागीय जाँच जारी न रखी जाए, अपितु उस अस्थायी सेवक की सेवा-समाप्ति का आदेश किया जाए। ऐसा आदेश सिर्फ इस कारण से दण्ड नहीं माना जाएगा कि विभागीय जाँच की जा रही थी। अतः श्री आर0के0 मिश्र की सेवा-समाप्ति का आदेश वैध है।

29-आर0एस0आर0 1987 सु0को0 2408

नेपाल सिंह के मामले तथा रवीन्द्र कुमार मिश्र के मामले के उक्त चर्चित निर्णयों के बीच विरोधाभास पर विचार करके उच्चतम न्यायालय ने, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम कैलाश किशोर शुक्ला के नवीनतम मामले[30] में रवीन्द्र कुमार मिश्र के मामले के उक्त निर्णय का अनुमोदन किया है तथा कहा है कि नेपाल सिंह के मामले का निर्णय "अनवधानता के कारण"[31] है, एवं यह कहना गलत है कि जहाँ अस्थायी सरकारी सेवक के विरुद्ध लगाए गए अभियोग के बारे में प्रारम्भिक जाँच कराई गई हो या विभागीय जाँच की जा रही हो तथा उस जाँच को बन्द करके सेवा-समाप्ति का आदेश किया गया हो तो ऐसा आदेश आवश्यक रूप से दण्डिक प्रकृति का होगा। कैलाश किशोर के मामले के तथ्य इस प्रकार हैं, लोकल फण्ड इक्जामिनर, यू0पी0 के अधीन सहायक लेखा परीक्षक के पद पर दिनांक 18-2-77 को श्री शुक्ला को तदर्थ रूप से, नियत अवधि के लिए, नियुक्त किया गया था, जो समय-समय पर बढ़ाया गया तथा अन्तिम बार दिनांक 28-2-81 तक के लिए बढ़ाया गया था। श्री शुक्ला एवं एक अन्य सेवक को राजा रघुबर दयाल इण्टर कालेज, सीतापुर के लेखा वर्ष 1979-80 की संपरीक्षा करने के लिए भेजा गया। श्री शुक्ला के विरुद्ध एक परिवाद प्राप्त हुआ कि उन्होंने संपरीक्षा के दौरान, अनुचित रूप से, दो हजार रुपये लिए। इसकी प्रारम्भिक जाँच कराई गई तथा इस कथन में सत्यता पाई गई, इसके उपरान्त नियमों के अधीन दिनांक 23-9-80 के आदेश से उनकी सेवा समाप्त कर दी गई। श्री शुक्ला ने इस आदेश को उच्च न्यायालय में चुनौती दिया कि संविधान के अनुच्छेद 311 का उल्लंघन करके सेवा समाप्त की गई है, जो अवैध है। उच्च न्यायालय ने उनकी रिट याचिका स्वीकार करके सेवा समाप्ति आदेश निरस्त कर दिया, जिसके विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की गई। उच्चतम न्यायालय ने अपील स्वीकार करते हुए कहा कि श्री शुक्ला के अनुचित आचरण की प्रारम्भिक जाँच मात्र की गई थी। उसके उपरान्त

30- 1991 [62] एफ0एल0आर0 240 [सु0को0]

31- Per Incuriam; जब उच्चतम न्यायालय अपने "पूर्व निर्णय के" ignorance में निर्णय करे तो इसे "अनवधानता के कारण" कहा जायगा। [पंजाब लैंड डेवलपमेन्ट कारपोरेशन का मामला 1991 [61] एफ0एल0आर0 [सु0को0]

न तो कोई आरोप-पत्र विरचित किया गया, न ही जाँच अधिकारी नियुक्त किया गया, अपितु सक्षम अधिकारी ने सेवा नियमावली के अधीन शक्ति का प्रयोग करके श्री शुक्ला की सेवा समाप्त करना उचित समझा। प्रारम्भिक जाँच कराने से सेवा समाप्ति आदेश की प्रकृति नहीं बदलती। सेवा समाप्ति का आदेश वैध है।

अतः उच्चतम न्यायालय की अद्यतन निर्णयज विधि से यह सुस्पष्ट है कि अस्थायी सेवक के विरुद्ध की जा रही विभागीय जाँच बन्द करके उसकी सेवा, नियमों या संविदा के अधीन, समाप्त करने का आदेश आवश्यक रूप से दाण्डिक प्रकृति का नहीं होगा, अपितु आदेश की आनुषंगिक परिस्थितियों पर विचार करके उसके "हेतु एवं आधार" का विनिश्चय किया जाएगा। यदि दुराचरण या दुर्व्यवहार, जिसके लिए विभागीय जाँच की जा रही थी, सेवा समाप्ति आदेश का "हेतु" मात्र रहा हो तो इसे दण्ड नहीं माना जाएगा। परन्तु दुराचरण या दुर्व्यवहार, सेवा समाप्ति आदेश का "आधार" रहा हो तो इसे दण्ड माना जाएगा।

सारांश

अस्थायी सरकारी सेवकों एवं परिवीक्षाधीन सेवकों की सेवा-समाप्ति या सेवोन्मुक्ति संबंधी निर्णयज विधि का सारांश इस प्रकार है,[32]

1· किसी पद पर परिवीक्षा पर नियुक्त होने वाले व्यक्ति को वह पद धारण करने का अधिकार नहीं होता है तथा उसकी सेवा, महादण्ड के लिए नियत विभागीय जाँच कराए बगैर, समाप्त की जा सकती है।

2· परिवीक्षा पर पद धारण करने वाले व्यक्ति की सेवा, कोई भी जाँच किए बगैर, समाप्त करने से यह नहीं कहा जा सकता कि उसे पद के किसी अधिकार से वंचित किया गया है, अतः ऐसी सेवा-समाप्ति दण्ड नहीं है।

32-बिहार राज्य बनाम गोपी किशोर आ०इ०आर० 1960 सु०को० 689

3. यदि सेवायोजक ऐसे सेवक के कथित दुराचरण या अक्षमता या अन्य बातों के लिए जाँच कराते हैं तो ऐसी दशा में पारित किया गया सेवा-समाप्ति का आदेश दण्ड माना जाएगा, क्योंकि यह उसकी क्षमता को कलंकित करता है तथा उसके "भविष्य के कैरियर" को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है। ऐसे मामले में वह व्यक्ति संविधान के अनुच्छेद 311(2) के सुरक्षोपाय पाने का अधिकारी है।

4. यदि उक्त चर्चित तीसरे मामले में परिवीक्षाधीन सेवक को, कथित दुराचरण या अक्षमता के लिए विभागीय जाँच कराए बगैर तथा उसे सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर दिए बगैर, सेवोन्मुक्त किया जाता है तो यह आदेश अनुच्छेद 311(2) के अधीन "सेवा से हटाने" के समान होगा।

5. यदि सेवायोजक परिवीक्षाधीन सेवक की सेवा, जाँच कराए बगैर एवं युक्तियुक्त अवसर दिए बगैर, साधारण रूप से समाप्त कर देवे तो उस सेवक को कोई वाद-कारण प्राप्त नहीं हो सकता, भले ही इसके पीछे "वास्तविक हेतु" उस सेवक का दुराचरण या अक्षमता रहा हो।

यदि शासन इस निष्कर्ष पर पहुँचा हो कि वह व्यक्ति सरकारी सेवा में पद धारण करने के लिए योग्य एवं उचित व्यक्ति नहीं है तो शासन, उसके कथित दुराचरण की जाँच कराए बगैर, उसे सेवोन्मुक्त कर सकता है। यदि शासन उस सेवक की सत्यनिष्ठा, ईमानदारी या क्षमता की निन्दा किए बगैर उसे सेवोन्मुक्त करता है तो कानून की दृष्टि में ये सेवा से हटाने का दण्ड नहीं माना जाएगा, परन्तु शासन उस सेवक के विरुद्ध जाँच कार्यवाई करके उस पर बेईमानी एवं अक्षमता का दाग या कलंक लगा रहा हो तो उस सेवक को अनुच्छेद 311(2) के सुरक्षोपाय प्राप्त होंगे और यदि ये सुरक्षोपाय उसे न दिए गए हों तो उस आदेश को वह न्यायालय में चुनौती दे सकता है।

सारांश यह कि, अस्थायी सरकारी सेवक की सेवा, पद के लिए उसकी अयोग्यता के आधार पर किसी भी समय कारण बताए बगैर, समाप्त की जा सकती है। उचित होगा यदि उस सेवक को उसके "असंतोषप्रद कार्य" से अवगत कराकर उसे सुधार का अवसर उपलब्ध करा दिया जाए। परन्तु यदि दुराचरण के आधार पर अस्थायी सेवक की सेवा समाप्त की जानी प्रस्तावित हो तो संविधान के अनुच्छेद 311(2) में अनुध्यात "विभागीय जाँच" करके ही यह आदेश किया जा सकता है। यदि अस्थायी सेवक के विरुद्ध औपचारिक विभागीय जाँच की जा रही हो तो सक्षम प्राधिकारी उसे बन्द करके नियमों या संविदा के अधीन उसकी सेवा, एक मास की नोटिस या वेतन देकर, समाप्त कर सकते हैं, परन्तु ऐसा करने में सावधानी रखनी होगी कि सेवक का दुराचरण या दुर्व्यवहार सेवा-समाप्ति आदेश का "आधार" न हो तथा आदेश में ऐसे शब्द या भाषा का प्रयोग न किया जाए जिससे सेवक पर कोई कलंक लगे।

अध्याय- सोलह

वैकल्पिक सेवानिवृत्ति

सामान्यतया सेवा नियमों में, सरकारी सेवकों की सेवानिवृत्ति की आयु 58 वर्ष है। सेवानिवृत्ति के लिए नियत आयु से पूर्व वैकल्पिक सेवानिवृत्ति का भी प्रावधान होता है। शासन लोकहित में 50 वर्ष की आयु पूर्ण कर लेने वाले सेवक को वैकल्पिक सेवानिवृत्त कर सकता है। वैकल्पिक सेवानिवृत्ति की दशा में सेवक को पेंशन आदि की सुविधाएं मिलती हैं।

वैकल्पिक सेवानिवृत्ति से सेवा समाप्त की जाती है। प्रश्न उठता है कि क्या वैकल्पिक सेवानिवृत्ति द्वारा की गई सेवासमाप्ति, पदच्युति या सेवा से हटाने के समान है?

इसका उत्तर इस बात पर निर्भर है, कि क्या "पदच्युति" या "सेवा से हटाने" की कार्यवाई के तत्व एवं प्रसंग, वैकल्पिक सेवानिवृत्ति के लिए की जाने वाली कार्यवाई में पाए जाते हैं?

"पदच्युति" या "सेवा से हटाने" की कार्यवाई का अभिप्राय है कि उस सेवक का आचरण किसी भी ढंग से निन्दनीय समझा गया। अर्थात् उसे किसी दुराचरण या अक्षमता या कर्तव्य के प्रति उपेक्षा के लिए दोषी पाया गया। यह कार्यवाई कुछ ऐसे आधारों पर की जाती है, जो उस सेवक के "वैयक्तिक" होते हैं, इनके बारे में उस सेवक के विरूद्ध आरोप लगाए जाते हैं, जिनका स्पष्टीकरण या खण्डन उस सेवक द्वारा ही किया जा सकता है। परन्तु वैकल्पिक सेवानिवृत्ति में इस प्रकार का कोई आरोप या अभियोग का तत्व नहीं होता। "वैकल्पिक सेवानिवृत्ति" की सिर्फ दो शर्तें होती हैं,

[1] सेवक ने नियत आयु [सामान्यतया 50 वर्ष की] पूर्ण कर ली हो, तथा

[2] लोकहित में उसकी सेवासमाप्ति आवश्यक हो।

1-श्याम लाल बनाम उ0प्र0 राज्य-आ0इ0आर0 1954 सु0को0 369

वैकल्पिक सेवानिवृत्ति में कलंक, दुर्व्यवहार या दुराचरण का कोई तत्व नहीं होता। अतः वैकल्पिक सेवानिवृत्ति का आदेश "पदच्युति" या "सेवा से हटाने" के समान है या नहीं? यह जानने का प्रमुख सूत्र है, क्या वैकल्पिक सेवानिवृत्ति द्वारा की गई सेवासमाप्ति में "पदच्युति" या "सेवा से हटाने" के तत्व विद्यमान हैं? यदि ये तत्व विद्यमान न हों तो ऐसी सेवासमाप्ति, वैकल्पिक सेवानिवृत्ति ही मानी जायगी, पदच्युति या सेवा से हटाना नहीं मानी जायगी।[2]

पदच्युति या सेवा से हटाने के प्रसंग में सेवक को अर्जित सेवा लाभ की हानि होती है। जबकि वैकल्पिक सेवानिवृत्ति में यह हानि नहीं होती, पेंशन आदि के जो सेवा-लाभ उस सेवक को अर्जित हुए हैं, वे वैकल्पिक सेवानिवृत्ति के उपरान्त भी उसे प्राप्त होते हैं। तर्क किया जा सकता है कि "पदच्युति या सेवा से हटाने" के प्रसंग समान, वैकल्पिक सेवानिवृत्त होने पर, वह सेवक अवशेष सेवा अर्थात् सेवानिवृत्ति की आयु तक वेतन आदि पाने, एवं तदुपरान्त बढ़े दर से पेंशन आदि पाने का अवसर खो देता है, जो एक दण्ड है। परन्तु उच्चतम न्यायालय ने "अर्जित लाभ" तथा "भविष्य में अर्जित होने वाले लाभ" के बीच स्पष्ट भिन्नता बताते हुए कहा कि "अर्जित लाभ" वर्तमान में निश्चित है, परन्तु "भविष्य में अर्जित होने वाले लाभ" अनिश्चित हैं क्योंकि सेवक को कोई शारीरिक असमर्थता हो सकती है या उसकी मृत्यु हो सकती है, जिसके कारण वह सेवा न कर पाए। अतः भविष्य में प्रत्याशित लाभ की हानि विधानतः दण्ड नहीं मानी जा सकती है। अतः दूसरा सूत्र है, क्या सेवासमाप्ति के फलस्वरूप उस सेवक को पेंशन आदि अर्जित सेवा-लाभों की हानि हुई है, जैसा कि पदच्युति या सेवा से हटाने के मामले में होती है? चूँकि वैकल्पिक सेवानिवृत्ति के मामले में यह हानि नहीं होती है, अतः पदच्युति या सेवासमाप्ति के मामले में अर्जित सेवा-लाभ की हानि का जो तत्व है वह भी वैकल्पिक सेवानिवृत्ति के मामले में विद्यमान नहीं होता।

2श्याम लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य-आ०इं०रि० 1954 सु०को० 369

उच्चतम न्यायालय ने, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम श्याम लाल **शर्मा**,[3] के मामले में, "वैकल्पिक सेवानिवृत्ति" के संबंध में निम्नलिखित सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं:-

|1| "वैकल्पिक सेवानिवृत्ति" का आदेश दण्ड माना जाएगा, यदि उस आदेश में संबंधित सेवक के विरुद्ध किसी आरोप या कलंक या अभियोग या कुर्व्यवहार का तत्व विद्यमान हो।

|2| "वैकल्पिक सेवानिवृत्ति" का आदेश दण्ड का सूचक होगा, यदि उसके फलस्वरूप सेवक को अर्जित सेवालाभ की हानि होती हो।

|3| "वैकल्पिक सेवानिवृत्ति" का ऐसा आदेश, "पदच्युति" या "सेवा से हटाना" नहीं माना जाएगा, जो उसके लिए नियत आयु या सेवा पूर्ण करने के उपरान्त तथा लोकहित में सेवा समाप्त करने के आशय से पारित किया गया है, क्योंकि इसमें दण्ड का कोई तत्व नहीं होता है।

|4| "वैकल्पिक सेवानिवृत्ति" का आदेश इस कारण से दण्ड नहीं माना जाएगा कि इस आदेश से भविष्य में प्राप्त होने वाले सेवा-लाभ की हानि होने की संभावना है, अर्थात् वह सेवक सामान्य सेवानिवृत्ति की आयु तक जो वेतन आदि पाता वह उसे नहीं मिलेगा, अथवा अवशेष सेवापूर्ण न करने के कारण बढ़े दर से पेंशन आदि पाने से वंचित रह जाएगा।

अतः यह सुप्रतिष्ठित है कि पूर्ण रूपेण नियमानुसार की गई वैकल्पिक सेवानिवृत्ति, "पदच्युति" या "सेवा से हटाने" के समान नहीं है, और न ही अनुच्छेद 311 के उपबंध आकृष्ट होते हैं।[4] यहाँ नियमानुसार वैकल्पिक सेवानिवृत्ति का तात्पर्य सेवा नियमों या शर्तों के अनुरूप की गई वैकल्पिक सेवानिवृत्ति से है। उत्तर प्रदेश मूल नियमावली, 1942 के नियम 56 में सरकारी सेवकों की सेवानिवृत्ति के उपबंध इस प्रकार हैं,

---

3-1972 सoलoरिo 53 |सुoकोo|
4-श्याम लाल का पूर्वोक्त केस तथा मुख्य न्यायाधिपति, आंध्र प्रदेश बनाम एलoवीoएo दीक्षितुलु एवं अन्य-1979 सoलoरिo 332 सुoकोo।

[1] प्रत्येक सरकारी सेवक 58 वर्ष की आयु पूर्ण होने वाले माह की अंतिम तिथि को सेवानिवृत्त होगा। यदि किसी सेवक की जन्मतिथि माह के प्रथम दिन पड़ती हो तो वह सेवक उस माह के पूर्ववर्ती माह के अंतिम दिन अपराह्न में सेवानिवृत्त होगा।

[2] जब कोई सरकारी सेवक 50 वर्ष की आयु पूरी कर लेवे तो नियुक्ति प्राधिकारी किसी भी समय, कोई कारण बताए बगैर, तीन माह की नोटिस देकर उसे सेवानिवृत्त कर सकते हैं। परन्तु नोटिस दिए बगैर अथवा कम अवधि की नोटिस देकर भी नियुक्ति प्राधिकारी अपने आदेश द्वारा, ऐसे किसी कर्मचारी को जो 50 वर्ष की आयु का हो, तात्कालिक प्रभाव से सेवानिवृत्त कर सकते हैं। ऐसी दशा में नोटिस की तीन माह की अवधि अथवा अवशेष अवधि का वेतन एवं भत्ता मांगने का अधिकार उस सेवक को होगा। इसे वैकल्पिक सेवानिवृत्ति कहते हैं।

[3] सरकारी सेवक 45 वर्ष की आयु पूरी कर लेने पर अथवा 20 वर्ष की अर्हक सेवा पूर्ण कर लेने पर स्वैच्छिक रूप से सेवानिवृत्त हो सकता है, लेकिन उसे भी तीन माह की नोटिस नियुक्ति प्राधिकारी को देनी होगी। यदि वह नोटिस दिए बगैर सेवानिवृत्त होना चाहे तो नियुक्ति प्राधिकारी नोटिस के स्थान पर शास्ति लिए बगैर उसे सेवानिवृत्त होने की अनुमति दे सकते हैं। परन्तु जहाँ सरकारी सेवक के विरुद्ध कोई विभागीय कार्यवाही विचाराधीन हो अथवा आसन्न हो तो उसके द्वारा दी गई नोटिस तब तक प्रभावी नहीं होगी, जब तक कि नियुक्ति प्राधिकारी उसे स्वीकार न कर लेवें। जहाँ विभागीय कार्यवाही आसन्न हो, वहाँ नोटिस की अवधि समाप्त होने से पूर्व नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा उसे सूचित करना होगा कि उसकी नोटिस स्वीकार नहीं की गई है।

[4] सेवानिवृत्ति के उपरान्त पेंशन एवं अन्य सुविधाएं सभी सरकारी सेवकों को नियमानुसार अनुमन्य होंगी।

सरकारी सेवक की वैकल्पिक सेवानिवृत्ति का प्रयोजन एवं उद्देश्य यह है कि अक्षम, भ्रष्ट, बेईमान एवं भारस्वरूप सेवकों को सरकारी सेवा से निकाल दिया जाए। शासन का यह अधिकार सुप्रतिष्ठित है जो सुसंगत सेवा नियमों के अनुरूप प्रयोग किया जाता है। इस शक्ति का प्रयोग लोकहित में करना होता है। यहाँ लोकहित का अभिप्राय कार्यकुशल एवं ईमानदार सेवकों को सेवा में बनाए रखने तथा अयोग्य, भ्रष्ट, बेईमान एवं भारस्वरूप सेवकों की सेवाएं समाप्त करने से है।[5]

यह विनिश्चय करने के लिए कि क्या लोकहित में उस सेवक की सेवा समाप्त करना आवश्यक है?, शासन जाँच करता है या करा सकता है। परन्तु यह जाँच, संविधान के अनुच्छेद 311 में वर्णित विभागीय जाँच से पूर्णतः भिन्न है।[6]

बम्बई राज्य बनाम सुभगचन्द दोशी,[7] के मामले में कहा गया है कि यद्यपि वैकल्पिक सेवानिवृत्ति का आदेश करते समय संबंधित सेवक के दुराचरण तथा अक्षमता पर विचार किया जाता है, परन्तु अंतर यह है कि "वैकल्पिक सेवानिवृत्ति" के मामले में ये बातें पृष्ठभूमि का कार्य करती हैं तथा जाँच करना अनिवार्य नहीं है, फिर भी यदि जाँच की जाती है तो सिर्फ इसलिए कि आदेश करने वाले प्राधिकारी संतुष्ट हो सकें। जबकि "पदच्युति" तथा "सेवा से हटाने" के मामले में ये बातें ही आदेश पारित करने के आधार होते हैं तथा अनुच्छेद 311[2] के अनुरूप विभागीय जाँच तथा नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का पालन करना अनिवार्य होता है।

"वैकल्पिक सेवानिवृत्ति" से सिविल दुष्परिणाम उत्पन्न नहीं होते हैं। अतः किसी सरकारी सेवक को सेवानिवृत्त करने से पूर्व उसे सुनवाई का अवसर देना आवश्यक नहीं है।[8]

आई० एन० सक्सेना बनाम मध्य प्रदेश राज्य,[9] में कहा गया है कि यदि "वैकल्पिक सेवानिवृत्ति" के आदेश में कोई ऐसा शब्द नहीं

5-बृजमोहन सिंह बनाम बिहार राज्य-आ०इ०रि० 1987 सु०को० 948
6-श्याम लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य-आ०इ०रि० 1954 सु०को० 369
7-आ०इ०रि० 1957 सु०को० 892
8-भारत संघ बनाम जे०एन० सिन्हा-आ०इ०रि० 1971 सु०को० 40, एवं डी० वैंकटेश्वर राव नायडू बनाम भारत संघ-आ०इ०रि० 1973 सु०को० 698
9-आ०इ०रि० 1967 सु०को० 1264

है, जो संबंधित सेवक पर कोई कलंक लगाता हो तो इसके द्वारा की गई सेवा समाप्ति, सेवा से हटाने का दण्ड नहीं माना जाएगा, तथा यदि आदेश में कोई अभियोग या आरोप या कलंक लगाने वाले शब्द न हों तो इसकी खोज शासन की पत्रावली में नहीं की जानी चाहिए। परन्तु बल्देवराज बनाम भारत संघ,[10] में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि जब वैकल्पिक सेवानिवृत्ति आदेश को चुनौती दी गई हो तो शासन को वह सभी सामग्री प्रकट करनी होगी जो "लोकहित" के आधार को प्रमाणित करने के लिए समुचित हो, जिससे न्यायालय संतुष्ट हो सके कि वैकल्पिक सेवानिवृत्ति का आदेश, सामग्री के अभाव के कारण, अनुचित तो नहीं है।

यदि सेवा नियमों में सेवानिवृत्ति तथा वैकल्पिक सेवानिवृत्ति के लिए अलग-अलग आयु नियत की गई हो, तभी सेवानिवृत्ति से पूर्व वैकल्पिक सेवानिवृत्ति की जा सकती है। यदि वैकल्पिक सेवानिवृत्ति के लिए कोई आयु, नियमों में, नियत न हो, अथवा यदि नियत आयु से पूर्व ही सेवानिवृत्ति कर दी जाए तो यह सेवा समाप्ति "पदच्युति या सेवा से हटाना" मानी जाएगी।[11]

वैकल्पिक सेवानिवृत्ति से पूर्व सक्षम प्राधिकारी को "अपेक्षित राय" बनानी अनिवार्य है। अपेक्षित राय यह है कि संबंधित सेवक को, लोकहित में, सेवानिवृत्त करना आवश्यक है। यह राय व्यक्तिगत, राजनीतिक या अन्य हितों पर आधारित नहीं होनी चाहिए। मात्र जनसेवा के हितों से यह राय नियंत्रित होगी। यह राय आत्मनिष्ठ नहीं अपितु वस्तुनिष्ठ तथा सद्भाविक एवं सुसंगत बातों पर आधारित, होनी अनिवार्य है।[12]

एक अधिकारी ने चौदह वर्षों की निरन्तर सेवा, दक्षतारोध पार करते हुए, किया था तथा वेतनमान के उच्चतम प्रक्रम पर पहुँचा था। उसे किसी बहुत पुरानी "प्रतिकूल टिप्पणी" के आधार पर वैकल्पिक सेवानिवृत्त कर दिया गया, जबकि वैकल्पिक सेवानिवृत्ति से तुरन्त पूर्व

10-आ०इं०रि० 1981 सु०को० 70
11-बम्बई राज्य बनाम सुभाग चन्द्र दोशी-आ०इं०रि० 1957 सु०को० 892
12-बल्देवराज बनाम भारत संघ-आ०इं०रि० 1981 सु०को० 70

पाँच वर्षों की अवधि के दौरान उसके कार्य व आचरण के बारे में कोई "प्रतिकूल टिप्पण" नहीं था। उच्चतम न्यायालय ने कहा, ऐसा आदेश, विनिश्चय के लिए सुसंगत आवश्यक सामग्री की उपेक्षा के कारण, अनुचित है। यह वैकल्पिक सेवानिवृत्ति पुरानी सामग्री को, जो कम महत्वपूर्ण थी, आधार बनाकर की गई है, जबकि आवश्यक सामग्री की उपेक्षा की गई है। अतः यह वैकल्पिक सेवानिवृत्ति अवैध है।[13]

यह सुप्रतिष्ठित सिद्धान्त है कि किसी सेवक के कार्य आचरण के संबंध में "प्रतिकूल टिप्पण", यदि कोई हो, का महत्व उस सेवक के उच्च पद पर पदोन्नति के उपरान्त लुप्त हो जाता है। वैकल्पिक सेवानिवृत्ति पर विचार करते समय संबंधित सेवक के कार्य आचरण की काफी पुरानी टिप्पणियों पर ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए, बल्कि तुरन्त पूर्व की पाँच से दस वर्ष पुरानी टिप्पणियों पर विचार करके, "अपेक्षित राय" बनानी चाहिए कि उस सेवक को लोक हित में सेवानिवृत्त किया जाए अथवा नहीं। तुरन्त पूर्व की अच्छी टिप्पणियों की उपेक्षा करके बहुत पुरानी प्रतिकूल टिप्पणियों पर विचार करना अनुचित एवं अयुक्तियुक्त होगा। यदि प्रतिकूल टिप्पणियाँ संबंधित सेवक को संसूचित न की गई हों अथवा संसूचित की गई हों, परन्तु उनके विरूद्ध प्रस्तुत प्रतिवेदन पर न तो विचार किया गया हो, न ही निस्तारण किया गया हो, तब ऐसी प्रतिकूल टिप्पणियों के आधार पर उस सेवक की वैकल्पिक सेवानिवृत्ति अनुचित एवं अयुक्तियुक्त होगी तथा नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के प्रतिकूल होगी।[14]

यद्यपि किसी सेवक की वैकल्पिक सेवानिवृत्ति करने के प्रश्न पर विचार करते समय उसके संपूर्ण सेवा अभिलेखों पर विचार किया जाएगा, परन्तु यदि पिछले दस वर्षों के सेवा अभिलेखों से उसके कार्य एवं आचरण में कोई कमी प्रकट न होती हो तो उससे पुरानी किसी "प्रतिकूल टिप्पण" को आधार बनाकर उसकी वैकल्पिक सेवानिवृत्ति का आदेश अनुचित एवं अयुक्तियुक्त होगा।[14]

13-बल्देवराज बनाम भारत संघ-आ०इं०रि० 1981 सु०को० 70
14-बृजमोहन सिंह बनाम बिहार राज्य-आ०इं०रि० 1987 सु०को० 948

एक सरकारी सेवक, जिसे कुछ माह पूर्व ही उच्च पद पर पदोन्नत किया गया हो, को वैकल्पिक सेवानिवृत्त करना सर्वथा अनुचित है। यदि किसी सरकारी सेवक को उच्च पद पर पदोन्नत किया गया हो, तथा कुछ माह बाद ही उसे वैकल्पिक सेवानिवृत्त कर दिया जाए, जबकि इस अवधि के दौरान किसी प्रकार की अयोग्यता का प्रमाण न हो, तो वैकल्पिक सेवानिवृत्ति का यह आदेश अवैध होगा।[15] इस संदर्भ में **रघुबीर सिंह चौहान बनाम उ० प्र० राज्य सड़क परिवहन निगम**[15] का मामला उल्लेखनीय है, जिसमें श्री रघुबीर सिंह, बस कंडक्टर को दिनांक 1·4·89· को पदोन्नत करके सहायक यातायात निरीक्षक के पद पर नियुक्त किया गया तथा दिनांक 21·5·90 को उन्हें वैकल्पिक सेवानिवृत्त करने का आदेश किया गया। उच्च न्यायालय ने पाया कि उनके विरुद्ध सिर्फ एक प्रतिकूल टिप्पण वर्ष 1976-77 का था, पदोन्नति के बाद कोई प्रतिकूल टिप्पण नहीं था। अतः वैकल्पिक सेवानिवृत्ति का यह आदेश अनुचित एवं अवैध मानते हुए उच्च न्यायालय ने इसे निरस्त कर दिया।

वैकल्पिक सेवानिवृत्ति प्रतिशोधस्वरूप नहीं की जानी चाहिए। इस संदर्भ में **बलदेवराज बनाम पंजाब राज्य**।[17] का मामला एक अच्छा उदाहरण है। श्री बलदेवराज पंजाब पुलिस बल में सिपाही थे, जिन्हें निलम्बित किया गया था तथा उनके विरुद्ध आपराधिक मामला भी चलाया जा रहा था। इस दौरान उच्चतम न्यायालय के एक निर्णय के अनुरूप अभियोजन वापस ले लिया गया तथा उन्हें सेवा में बहाल कर दिया गया। दिनांक 11·2·80 को पूर्वाह्न में श्री बलदेवराज को सेवा में बहाल किया गया तथा उसी दिन अपराह्न में उन्हें वैकल्पिक सेवानिवृत्त कर दिया गया। उच्चतम न्यायालय ने श्री बलदेवराज की वैकल्पिक सेवानिवृत्ति को निरस्त कर दिया तथा कहा कि यह सही है कि वैकल्पिक सेवानिवृत्ति का प्रयोजन अक्षम सेवकों को निकालना है, परन्तु यह कार्य प्रतिशोधस्वरूप नहीं किया जाना चाहिए।

15-डी० रामास्वामी बनाम तमिल नाडु राज्य-आ०ई०आर० 1982 सु०को० 793
16-1991 [62] एफ०एल०आर० 326 [इलाहाबाद उच्च न्यायालय]
17-आ०ई०आर० 1984 सु०को० 986

यदि सरकारी सेवक के विरूद्ध विभागीय जाँच आरम्भ की गई हो या प्रारम्भिक जाँच की जा रही हो तो अनुशासनिक प्राधिकारी उसे बन्द करके उस सेवक को वैकल्पिक सेवानिवृत्त करने का आदेश कर सकते हैं। अर्थात् नियुक्ति प्राधिकारी ने सरकारी सेवक के विरूद्ध अनुशासनिक कार्रवाई करने का विनिश्चय करके जाँच कार्यवाही आरम्भ कर दी हो तो बाद में जाँच बन्द करके उस सेवक को, नियमों के अधीन, वैकल्पिक सेवानिवृत्त करने में कोई कानूनी बाधा नहीं है।[18]

अतः सरकारी सेवक को, नियमानुसार, लोकहित में वैकल्पिक सेवानिवृत्त करना न्यायसंगत है, यदि उस सेवक की सत्यनिष्ठा, योग्यता एवं क्षमता संबंधी सुसंगत सामग्री से प्रकट होता है कि "अर्हक सेवा" पूर्ण कर लेने के बाद उसे सेवा में बनाए रखना उपयोगी नहीं है।[19]

वैकल्पिक सेवानिवृत्ति के आदेश से व्यथित सरकारी सेवक उस आदेश को निम्नलिखित आधारों पर चुनौती दे सकता है,

§1§ यह कि अपेक्षित राय नहीं बनाई गई है,या

§2§ यह कि विनिश्चय, साम्पार्श्विक कारणों पर आधारित है, या

§3§ यह कि वैकल्पिक सेवानिवृत्ति "मनमाना विनिश्चय" है।

यदि सरकारी सेवक यह दिखा सके कि वैकल्पिक सेवानिवृत्ति का आदेश उपर्युक्त में से किसी अवगुण से ग्रसित है तो न्यायालय उस आदेश को निरस्त करने की अधिकारिता रखता है।[20]

सारांश

सरकारी सेवक, जो "अर्हक सेवा" या आयु पूर्ण कर लिए हों, के सेवा अभिलेखों, विशेषकर पाँच से दस वर्ष पूर्व की टिप्पणियों, का अवलोकन करके नियुक्ति प्राधिकारी को यह राय बनानी होगी कि क्या लोकहित में उस सेवक को सेवा से निकालना आवश्यक है?, यदि लोकहित में यह आवश्यक हो तो वह वैकल्पिक सेवानिवृत्ति का आदेश कर सकते हैं। यदि यह आदेश साम्पार्श्विक कारणों या किसी दुराचरण,

---

18-वशिष्ठ नारायण बनाम कमिश्नर, इन्कमटैक्स, बिहार-1968 ब0ला रि0 422§पटना उच्च न्यायालय§

19-भारत संघ बनाम इन्द्रजीत राजपूत-1990§1§यू0को0के0 79

20-भारत संघ बनाम जे0एन0 सिन्हा-1970§2§ यू0को0के0 458,एवं बी0डी0 आहलावादी बनाम भारत संघ-1990§2§ यू0को0के0 328

कलंक, अभियोग या दुर्व्यवहार पर आधारित हो तो वैकल्पिक सेवानिवृत्ति, पदच्युति या सेवा से हटाने का दण्ड मानी जाएगी। यदि वैकल्पिक सेवानिवृत्ति आदेश को चुनौती दी गई हो तो न्यायालय वह सभी सामग्री देख सकेगा, जिसके आधार पर वैकल्पिक सेवानिवृत्ति का विनिश्चय किया गया।

परिशिष्ट-एक

अनुशासनिक कार्यवाही सम्बन्धी शासकीय निर्देश

उत्तर प्रदेश सरकार

शासनादेश संख्या 327/का0-1/87

लखनऊ, दिनांक 8 मई, 1987

सरकारी सेवकों के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही करने के सम्बन्ध में आवश्यक व्यवस्था/प्रक्रिया सिविल सर्विसेज [क्लासिफिकेशन कन्ट्रोल एण्ड अपील] रूल्स में राजपत्रित समूह "क" तथा "ख" के कार्मिकों के लिए तथा अन्य के लिए पनिशमेंट एण्ड अपील रूल्स फार सबार्डिनेट सर्विसेज में दी गई है। इन नियमों का सही तथा प्रभावी ढंग से अनुपालन सुनिश्चित करने हेतु समय-समय पर आवश्यक निर्देश भी जारी किए जाते रहे हैं। सुस्पष्ट नियमों/निर्देशों के होते हुये भी कतिपय स्तरों पर अनुशासनिक कार्यवाही हेतु अपेक्षित प्रक्रिया न अपनाये जाने के कारण समस्त कार्यवाही ही अनियमित हो जाती है तथा न्यायालय/लोक सेवा अधिकरण द्वारा अवैध घोषित कर दी जाती है। परिणामस्वरूप नए सिरे से कार्यवाही करनी पड़ती है, जिससे प्रभावित अधिकारी/कर्मचारी को तो कठिनाई का सामना करना ही पड़ता है साथ ही शासकीय धन तथा समय का भी अपव्यय होता है। अतः उक्त नियमों/निर्देशों का सही ढंग से पालन सुनिश्चित करने के उद्देश्य से तथा सम्भावित सामान्य त्रुटियों को दृष्टिगत रखते हुए नियमों/निर्देशों के मुख्य प्राविधानों का [संदर्भ सहित] क्रमबद्ध संकलन निम्नवत है:-

सरकारी सेवकों के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही करते समय ध्यान में रखे जाने हेतु मुख्य बातें:-

[क] प्रक्रिया/व्यवस्था,जिसका अनुपालन/अनुसरण आवश्यक है

प्रक्रिया/व्यवस्था	संदर्भ
1. किसी सरकारी सेवक के विरुद्ध किसी भी माध्यम से प्राप्त शिकायती-पत्र में उल्लिखित तथ्यों का अध्ययन उसके नियन्त्रणाधिकारी या उच्चतर अधिकारी द्वारा किया जायगा। यदि शिकायती-पत्र में कोई विशिष्ट तथ्य न दिये गए हों, या और शिकायतकर्ता का नाम व पता न दिया गया हो,तो सामान्यतया शिकायती-पत्र को निक्षेप कर दिया जायगा।	एम0जी0ओ0 का पुनरीक्षित संस्करण 1981 का प्रस्तर 771[3]
2. अन्य शिकायती-पत्रों की प्राथमिक जाँच विभागीय स्तर पर अथवा आरोप/साक्ष्य/प्रमाणों की जटिलता को देखते हुए सतर्कता विभाग से कराई जायगी परन्तु विभागीय स्तर पर प्राथमिक जाँच दण्डन प्राधिकारी द्वारा स्वयं या आरोपित सरकारी सेवक से कम से कम एक स्तर [परन्तु सामान्यत: दो स्तर ऊपर के अधिकारी] से सम्पन्न कराई जायगी। यदि किसी प्रकरण में एक से अधिक अधिकारी/कर्मचारी आरोपित हों,	[1] शासनादेश संख्या-820/43-2-14-2[83]/83, दिनांक 28-2-1983 [प्रशासनिक सुधार अनुभाग-2] [2] शासनादेश संख्या-7/2/77-कार्मिक-1,दिनांक 28-2-1977

भी जांचाधिकारी एक ही रहेगा।

3. चूँकि जाँच की प्रक्रिया इस तथ्य पर निर्भर करती है कि मामला लघु दण्ड का अथवा वृहद् दण्ड का है और यदि लघु दण्ड का है तो कौन सा/कौन से दण्ड दिये जाने की संभावना है अतः दण्डन प्राधिकारी [पनिशिंग अथारिटी] द्वारा बिना प्राथमिक जाँच कराये स्वप्रेरणा से अथवा प्राथमिक जाँच के आधार पर अनियमितताओं/आरोपों की गम्भीरता व स्वरूप को देखते हुए यह निर्णय लिया जायगा कि आरोपित सरकारी सेवक को प्रथम दृष्टया निम्नलिखित में से कौन सा/कौन से दण्ड देने का औचित्य है :-

लघु दण्ड :

[1] भर्त्सनात्मक प्रविष्टि [सेंसर] देना। [2] दक्षतारोक पर रोका जाना। [3] समयमान में उन प्रक्रमों पर जिन पर कोई दक्षतारोक न हो, वेतन वृद्धि रोकना।	अनुशासनिक कार्यवाही के परिणामस्वरूप दिये जा सकने वाले दण्डों का उल्लेख सी0 सी0ए0 रूल्स के नियम 49/ पनिशमेंट एण्ड अपील रूल्स फार सबार्डिनेट सर्विसेज के नियम-4 में है।
[4] उपेक्षा या नियमों अथवा आज्ञाओं का उल्लंघन करने के कारण सरकार को हुई	

आर्थिक क्षति को पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से वेतन से वसूली।

वृहद् दण्ड :

[1] नीचे के किसी पद या समयमान में या किसी समयमान में नीचे के किसी स्तर में पदावनति करना।

[2] सेवा से हटाना [रिमूवल]

[3] सेवा से पदच्युत करना [डिसमिसल] जिसमें वह व्यक्ति अन्य सरकारी सेवा के लिये अपात्र हो जाता है।

4. यदि उपरोक्त स्तम्भ संख्या [3] में उल्लिखित लघु दण्ड संख्या [1] एवं/अथवा [2] दिये जाने का औचित्य है तो बिना औपचारिक जाँच के तथा बिना स्पष्टीकरण माँगे दण्डादेश उस प्राधिकारी द्वारा अपने विवेक का प्रयोग करके जारी किया जा सकता है जिसे इस प्रयोजनार्थ विधिवत् प्राधिकृत किया गया हो।

सी0सी0ए0 रूल्स का नियम 55-बी[ए]/पनिशमेंट एण्ड अपील रूल्स फार सबार्डिनेट सर्विसेज का नियम 5 बी-[ए]

5. यदि दण्डाधिकारी द्वारा प्रथम दृष्टया उपरोक्त स्तम्भ [3] में उल्लिखित लघु दण्ड संख्या [3] एवं/अथवा [4] देने का औचित्य पाया जाय तो आरोपों का स्पष्ट विवरण देते हुए उनके विषय में आरोपित सरकारी

सी0सी0ए0 रूल्स का नियम 55-बी [बी]/पनिशमेंट फार सबार्डिनेट सर्विसेज का नियम 5-बी[बी]

सेवक का लिखित स्पष्टीकरण, ¦बिना औपचारिक रूप से आरोप पत्र दिये हुए¦ तर्क सम्मत अवधि में, माँगा जायगा तथा स्पष्टीकरण, यदि समयान्तर्गत कोई दिया जाय, के प्रकाश में अपने विवेक का प्रयोग करके यथावश्यक दण्डादेश जारी किया जा सकता है। दण्डन प्राधिकारी द्वारा इस प्रक्रिया के उपरान्त औचित्य पाये जाने पर लघु दण्ड संख्या¦1¦ एवं/अथवा ¦2¦ भी दिये जा सकते हैं।

6. यदि प्रथम दृष्ट्या आरोप/अनियमितताओं की गम्भीरता/स्वरूप को देखते हुए उपर्युक्त स्तम्भ ¦3¦ में उल्लिखित कोई वृहद् दण्ड दिये जाने का औचित्य हो तो नियुक्ति प्राधिकारी जो कि उक्त दण्डों के लिए दण्डन प्राधिकारी है, द्वारा स्वयं या अपने द्वारा नियुक्त, जाँचाधिकारी के माध्यम से विस्तृत जाँच कराई जा सकती है।	सी0सी0ए0 रूल्स का नियम 55 ¦2¦/पनिशमेंट एण्ड अपील रूल्स फार सबार्डिनेट सर्विसेज का नियम 5 ¦2¦।
7.¦1¦ यदि नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा स्वयं या इस प्रयोजनार्थ विधिवत् सक्षम प्राधिकारी द्वारा आवश्यक समझा जाय तो आरोपित सरकारी सेवक को उसके वर्तमान स्थान से स्थानान्तरित अथवा निलम्बित किया जा सकेगा। निलम्बन आदेश यथा सम्भव शासनादेश संख्या 15/8/81-कार्मिक-1,दिनाँक 17/11/81 के साथ	शासनादेश संख्या 22/4/78-कार्मिक-1,दिनाँक 18 जुलाई, 1979,शासनादेश संख्या 7/2/78-कार्मिक-1,दिनाँक 31-5-1984

प्रसारित प्रारूप [संलग्नक]। पर जारी किया जाना चाहिये। निलम्बन सामान्यतः तभी किया जाना चाहिये जब औपचारिक जाँच करने का निर्णय ले लिया जाये।

[2] निलम्बन सामान्यतः उसी दशा में किया जाना चाहिये, जबकि आरोपों के सिद्ध होने पर वृहद् दण्ड दिये जाने का औचित्य हो।

शासनादेश संख्या 22/4/71, नियुक्ति [ख], दिनाँक 2 जुलाई, 1971।

[3] यदि निलम्बन काल की अवधि 6 माह से अधिक बीत जाय, तो प्रत्येक 6 माह में निलम्बन का पुनरीक्षण किया जाय।

शासनादेश संख्या 7/3/78-का-1/80, दिनाँक 12 अगस्त, 1980 तथा 7/3/78-का-1/79, दिनाँक 21 दिसम्बर, 1979।

[4] उक्त जाँच हेतु आरोपित सरकारी सेवक को विस्तृत तथा स्वतः स्पष्ट आरोप पत्र दिया जायगा जिसमें प्रत्येक आरोप को सिद्ध करने हेतु पृथक-पृथक साक्ष्यों का स्पष्ट उल्लेख हो। यदि दण्ड की मात्रा सुनिश्चित करने के लिये आरोपित सरकारी सेवक के पुराने अभिलेख देखे जाने प्रस्तावित हों तो आरोप पत्र में ही उस पिछले अभिलेख का उल्लेख कर दिया जायगा।

सी0सी0ए0 रूल्स का नियम-55 [1]/पनिशमेंट एण्ड अपील रूल्स फ़ार सबार्डिनेट सर्विसेज का नियम-5 [1] तथा शासनादेश सं0 17/6/68 कार्मिक-1, दिनाँक 18-1-82

[5] निलम्बन के साथ ही अपचारी कर्मचारी पर आरोप-पत्र तामील किया जाय। पुलिस केस दर्ज कराये जाने, गबन के मामलों तथा लोकहित

शासनादेश संख्या-7/2/78-कार्मिक-1, दिनाँक 18-7-79।

के ऐसे मामलों, जिसमें तत्काल निलम्बन आदेश तामील किया जाना आवश्यक हो, ऐसी अपवादिक परिस्थितियों में निलम्बन आदेश जारी होने के तीन सप्ताह के अन्दर आरोप-पत्र तामील किया जाय और यदि यह सम्भव न हो तब कारण अभिलिखित करते हुए अपने ठीक ऊपर के अधिकारी को परिस्थितियों से अवगत कराया जाय।

|6| उपरोक्त आरोप-पत्र या तो स्वयं दण्डन प्राधिकारी द्वारा या उनके पूर्वानुमोदन पर उनकी ओर से तथा उनके कृते के रूप में जाँचाधिकारी द्वारा आरोपित सरकारी सेवक के नाम जारी किया जायगा।

|7| आरोपित सरकारी सेवक को अपनी सफाई पेश करने का युक्तियुक्त अवसर प्रदान किया जायगा।

सी0सी0ए0कानियम-55|1|/ पनिशमेंट एण्ड अपील रूल्स फार सबार्डिनेट सर्विसेज का नियम-5|1| संविधान का अनुच्छेद 311|2| ।

|8| जाँचाधिकारी द्वारा जाँच के दौरान गवाहों के बयान आरोपित सरकारी सेवक के समक्ष तथा विधिवत् शपथ दिलवाने के उपरान्त लिये जायेंगे।

शासनादेश संख्या-405/2/बी-153-50,दिनांक 10-3-69

|9| यदि आरोपित सरकारी सेवक अपनी सफाई में, अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए कोई अभिलेख देखने या उसकी प्रति प्रदान करने की प्रार्थना करता है,निम्नलिखित परिस्थितियों के

शासनादेश संख्या-17/8/68-नियुक्ति|ख| दिनांक 26-6-69

सिवाय अभिलेख दिखा देना/प्रति प्रदान कर देना चाहिये :-

!क! यदि माँगे गये अभिलेख आरोप-पत्र के संदर्भ में सुसंगत नहीं हैं।

!ख! यदि माँगे गये अभिलेख की प्रति प्रदान करना/दिखाया जाना लोक हित में नहीं है।

टिप्पणी :-

यदि अभिलेख लम्बे हैं परन्तु उपरोक्तानुसार उन्हें दिखाया जाना/प्रति देना अपत्ति-जनक नहीं है तो सम्बन्धित सरकारी सेवक को अभिलेख देखने/उद्धरण लेने की अनुमति दे देनी चाहिए।

!10! जाँच पूरी होने के बाद जाँचाधिकारी द्वारा दण्डन प्राधिकारी को जाँचाख्या प्रस्तुत की जाएगी जो अपने विवेक का प्रयोग करके यथावश्यक उपरोक्त स्तम्भ-3 में उल्लिखित कोई एक या अधिक लघु अथवा वृहद् दण्ड देने का निर्णय ले सकते हैं। यदि स्तम्भ-3 के लघुदण्ड!3!,!4! अथवा वृहद् दण्ड में कोई एक या अधिक दण्ड देते हुए दण्डादेश महामहिम राज्यपाल द्वारा जारी किया जाना हो तो उसे जारी करने के पूर्व लोक सेवा आयोग !चाहे पद

उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग !कृत्यों का परिसीमन! विनियम,1954 का नियम 8 !क! अधिसूचना संख्या 17/1/81-कार्मिक-1, दिनांक 26-9-83 द्वारा संशोधित।

आयोग की परिधि में हो अथवा नहीं।
का परामर्श प्राप्त करना आवश्यक होगा। यदि जाँचाधिकारी उचित समझे, वह विशिष्ट दण्ड की संस्तुति कर सकता है परन्तु उसके द्वारा दण्ड की संस्तुति जाँचआख्या में नहीं की जायेगी वरन् अलग शीट पर अंकित की जाएगी।

टिप्पणी :

यदि दण्ड की मात्रा सुनिश्चित करने के लिये पूर्व अभिलेख देखे जाने का प्रस्ताव हो परन्तु उन अभिलेखों का उल्लेख आरोप-पत्र में न किया जा सका हो तो विचाराधीन मामले में दण्ड की मात्रा निर्धारित करने के सीमित उद्देश्य से अन्तिम चरण में दूसरी कारण बताओ नोटिस दी जाएगी। यदि आयोग का परामर्श आवश्यक है तो आयोग को मामला संदर्भित करने से पूर्व ही ऐसी नोटिस दी जाएगी।

शासनादेश सं0 17/6/68-कार्मिक-1, दिनांक 18-1-87

।।।। उपरोक्त कार्यवाही पूरी करके नियुक्ति प्राधिकारी।दण्डन प्राधिकारी। द्वारा स्वत: स्पष्ट व सकारण आदेश जारी किया जाएगा जिसमें आरोपों का संक्षिप्त विवरण जाँचाधिकारी का निष्कर्ष/संस्तुति व दण्डन प्राधिकारी की इससे सहमति/असहमति के कारण तथा दण्ड की मात्रा का स्पष्ट उल्लेख किया जाएगा।

शासनादेश संख्या 1524/2-बी-61-63, दिनांक 28-6-63, तथा शासनादेश संख्या-19/11/75-कार्मिक-1, दिनांक 23-9-75

|12| जाँच का शीघ्रता से पुरा किया जाना सुनिश्चित किया जाएगा। अपचारी कर्मचारी से आरोप-पत्र का स्पष्टीकरण 15 दिन से एक माह के अन्दर प्रस्तुत करने को कहा जाय। इससे अधिक समय न दिया जाय। स्पष्टीकरण प्राप्त होने के एक माह के अन्दर जाँच पुरी कर ली जाय। और जाँच पुरी होने के 15 दिन के अन्दर रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी जाय। यदि लोक सेवा आयोग का परामर्श अपेक्षित हो तब जाँच रिपोर्ट प्राप्त होने के 6 सप्ताह के अन्दर आयोग का परामर्श प्राप्त कर लिया जाए। अन्यथा जाँच रिपोर्ट प्राप्त होने की तिथि से 15 दिन के अन्दर दण्डनाधिकारी द्वारा अन्तिम आदेश पारित कर दिया जाय। यदि इस समय सारिणी का अनुपालन न हो सके तब जाँच अधिकारी/दण्डन प्राधिकारी कारणों का स्पष्टतया उल्लिखित करेंगे।

शासनादेश सं0 7/8/1977-का0-1, दिनांक 30-7-1977

9. अनुशासनिक कार्यवाही के अन्तिम परिणाम स्वरूप यदि आरोपित सरकारी सेवक को सेवा से पृथक/पदच्युत करने से भिन्न कोई एक या अधिक दण्ड दिये जाते

शासनादेश संख्या-17/1/82-कार्मिक-1, दिनांक 13-1-83

है और उक्त सरकारी सेवक निलम्बित रह चुका है अथवा निलम्बित रहते दण्डादेश के परिणाम स्वरूप पदाच्युत किया गया है तो निलम्बनकाल के वेतन की कटौती के आदेश पारित करने से पूर्व आरोपित सरकारी सेवक को मूल नियम-54 की अपेक्षानुसार कारण बताओ [Show cause] नोटिस दी जाएगी।

टिप्पणी :

पुलिस एक्ट की धारा-7 से शासित होने वाले पुलिस कर्मचारियों के अतिरिक्त अन्य कर्मचारियों के संबंध में जिन आरोपों के विषय में किसी सरकारी सेवक के विरुद्ध विधि न्यायालय में अभियोग चल रहा हो/चलाया गया हो उन्हीं आरोपों के संबंध में उस सरकारी सेवक के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही की जा सकती है।	शासनादेश संख्या-17/1/69-नियुक्ति [ख], दिनांक 6-6-69 तथा समसंख्यक शासनादेश दिनांक 1-7-73
10. पदच्युत तथा सेवा से पृथक किये जाने का आदेश तात्कालिक प्रभाव अर्थात् उस तिथि से प्रभावी होगा, जिस तिथि को वह आदेश संबंधित सरकारी सेवक को संसूचित किया जाय। उस स्थिति में जहाँ अधिकारी/कर्मचारी को निलम्बित किया गया हो संसूचित किये जाने की तिथि वही होगी जिस तिथि को आदेश	शासनादेश संख्या-7/9/1975-कार्मिक-1, दिनांक 25-2-1976

तामीली के लिये डाक या किसी अन्य माध्यम के हवाले कर दिया जाय और सक्षम अधिकारी को उस आदेश में कोई परिवर्तन करने का अधिकार न रह जाय। निलम्बन न होने की स्थिति में तात्कालिक प्रभाव की तिथि वही होगी जिस तिथि को आदेश संबंधित अधिकारी/कर्मचारी पर तामील हो जाय।

[ग] अनुशासनिक कार्यवाही के संबंधों में निषेधात्मक निर्देश

1-शिकायती-पत्र के संबंध में आरोपित सरकारी सेवक से स्पष्टीकरण मांगते समय उसे शिकायत कर्ता का नाम/पता नहीं बताया जाना चाहिए।	शासनादेश संख्या-13/15/77-कार्मिक-1, दिनांक 24-9-77
2-सतर्कता विभाग की खुली या गोपनीय जाँच, जो प्राथमिक जाँच है, के परिणाम सामने आने पर पुनः विभागीय स्तर पर प्राथमिक जाँच नहीं की जानी चाहिए बल्कि सीधे औपचारिक जाँच, यदि आवश्यक हो, प्रारम्भ की जानी चाहिए।	शासनादेश सं0 12/14/65-नियुक्ति [ख] दिनांक 17-1-66
3-आरोप-पत्र में सतर्कता जाँच का उल्लेख नहीं किया जाना चाहिए।	शासनादेश सं0 1075/39[4-82-40][134]/81टी0सी0, दिनांक 26-3-83
4-यदि मामला, जाँच हेतु प्रशासनाधिकरण/सतर्कता अधिष्ठान/अपराध अनुसंधान विभाग को सौंप दिया गया हो तो	शासनादेश सं0 12/7/65-नियुक्ति [ख], दिनांक 23-12-65 व दिनांक 21-4-69 तथा

विभागीय स्तर पर औपचारिक जाँच नहीं की जानी चाहिए और यदि विभागीय स्तर पर जाँच चल रही हो, तो रोक देनी चाहिये तथा प्रशासनाधिकरण की अन्तिम जाँचआख्या प्राप्त होने पर नियमानुसार अग्रिम कार्यवाही की जानी चाहिए।	शासनादेश सं0 2693/कार्मिक-1-80, दिनांक 18-2-81
5-आरोपित सरकारी सेवक को दण्डादेश जारी करने के निमित्त शोकाज नोटिस दिये जाने की आवश्यकता नहीं है। [संविधान के 42 वें संशोधन के फलस्वरूप सेकेन्ड अपारच्युनिटी का स्तर अब समाप्त हो गया है।]	शासनादेश सं0 7/1/77-कार्मिक-1, दिनांक 27-4-77
6-न्यायालय द्वारा दोष सिद्ध के आधार पर यदि दण्ड दिया जाना हो तो न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध सरकारी सेवक द्वारा अपील किये जाने की प्रतीक्षा तथा यदि अपील की जा चुकी हो तो उसके निर्णय की प्रतीक्षा नहीं की जानी चाहिए बल्कि ट्रायल [प्राथमिक] कोर्ट द्वारा की गई दोष सिद्ध के आधार पर समुचित दण्डादेश पारित कर देना चाहिये। इस कार्यवाही के लिए संविधान के अनुच्छेद 311[2] [ए] के अनुसार किसी जाँच की आवश्यकता नहीं है।	शासनादेश संख्या 6/10/79-कार्मिक-1, दिनांक 12-10-79
7-यदि अनुशासनिक कार्यवाही के परिणामस्वरूप आरोपित सरकारी सेवक को पूर्णतया दोषमुक्त नहीं पाया जाता और अत्यन्त	सी0सी0ए0 रूल्स का नियम 49/पनिशमेंट एण्ड अपील रूल्स पार

साधारण दण्डस्वरूप चेतावनी नहीं दी जानी चाहिये क्योंकि चेतावनी दण्ड की श्रेणी में नहीं आती है। ऐसी दशा में सेन्सर इंट्री दी जा सकती है।	सबार्डिनेट सर्विसेज का नियम-।
8-सेवा से पदच्युत करना *[Dismiss] और सेवा से हटाना [Removal] का दण्ड आरोपित सरकारी सेवक के वास्तविक नियुक्ति प्राधिकारी से नीचे के स्तर के प्राधिकारी द्वारा नहीं दिया जा सकता।	संविधान का अनुच्छेद 311[2]
9-दण्डादेश जारी करने हेतु विभागाध्यक्ष या किसी अन्य प्राधिकारी यदि वे जाँचाधिकारी नहीं हैं, की अनुज्ञा या राय नहीं प्राप्त करनी चाहिये।	
10-यदि महामहिम राज्यपाल द्वारा प्रशासनाधिकरण की जाँच के आधार पर अथवा संविधान के अनुच्छेद 311[2] [ग] के तहत दण्डादेश पारित किया जाय तो लोक सेवा आयोग के परामर्श की आवश्यकता नहीं है।	उत्तर प्रदेश लोक सेवाआयोग [कृत्यों का परिसीमन] विनियम 1954 के नियम 8[क] का प्रथम परन्तुक [अधिसूचना संख्या 17/1/81-कार्मिक-1, दिनांक 26-9-1983]
11-यदि दण्डादेश महामहिम राज्यपाल से भिन्न किसी प्राधिकारी द्वारा पारित किये जाने हों तो लोक सेवा आयोग का परामर्श आवश्यक नहीं है चाहे आरोपित सरकारी सेवक की नियुक्ति	उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग [कृत्यों का परिसीमन] विनियम,1954 के नियम 8[सी] के नीचे उल्लिखित उदाहरण संख्या [5]

लोक सेवा आयोग के परामर्श से उनके द्वारा आयोजित चयन के आधार पर की गई हो।	
12-यदि किसी अनियमितता/आरोप के विषय में कार्यवाही प्रारम्भ होने के पश्चात् दण्ड देकर अथवा बिना दण्ड दिये एक बार मामला अन्तिम रूप से समाप्त हो गया है तो ठीक उसी अनियमितता या आरोप के आधार पर किसी सरकारी सेवक के विरुद्ध पुनः दण्डात्मक कार्यवाही नहीं की जा सकती ।	शासनादेश सं0-12/7/65-नियुक्ति [ख], दिनांक 23-12-1965
13-यदि अनुशासनिक कार्यवाही के लम्बित रहते हुये आरोपित सरकारी सेवक अपनी अधिवर्षता आयु पर सेवा निवृत्त हो जाता है तो लम्बित जाँच को सी0एस0आर0 के अनुच्छेद 351-ए के तहत पेंशन से कटौती के लिये जारी रखा जा सकता है। परन्तु सेवा निवृत्त सरकारी सेवक को कोई अनुशासनिक दण्ड नहीं दिया जा सकता है और न ही उक्त दण्ड के उद्देश्य से कार्यवाही प्रारम्भ की/ जारी रखी जा सकती है।	सी0एस0आर0 का अनुच्छेद 351[ए]
टिप्पणी :	
यदि सेवानिवृत्ति के पश्चात् कोई तथ्य सामने आये तो सेवानिवृत्ति के पश्चात् भी सी0एस0आर0 351-ए	

के तहत कार्यवाही की जा सकती है बशर्ते कि जिस घटना के सम्बन्ध में जाँच प्रारम्भ की जाय, जाँच प्रारम्भ करने की तिथि को उस घटना को चार वर्ष से अधिक समय न बीत चुका हो।

[ग] अस्थायी सरकारी कर्मचारियों की सेवा समाप्त करने की व्यवस्था

1-अस्थायी सरकारी कर्मचारी की सेवा जो दीर्घकालीन तथा संतोषजनक हो मामूली से दोष पर, जल्दबाजी में तथा आवेश में आकर न समाप्त की जाये। सेवायें समाप्त के लिये पर्याप्त औचित्य नितान्त आवश्यक है तथा ऐसी कार्यवाही के पूर्व उसकी अवधि तथा पूर्व सेवानिवृत्ति पर विचार कर लेना चाहिये।	शासनादेश सं0-20/1/72-नियुक्ति-3 दिनाँक 10-8-72
2-अस्थायी कर्मचारी की सेवा एक माह की नोटिस देकर समाप्त की जा सकती है। सेवा तुरन्त भी समाप्त की जा सकती है और ऐसी समाप्ति पर सरकारी सेवक नोटिस की अवधि या यथास्थिति ऐसी नोटिस एक माह से जितनी कम हो उतनी अवधि का वेतन पाने का दावेदार होगा [नोटिस का प्रारूप संलग्न-2] नोटिस में सेवा समाप्ति के कारण का उल्लेख नहीं होना चाहिये।	[1] उ0प्र0 अस्थाई सरकारी [सेवा समाप्ति]नियमावली, 1975 [2] शासनादेश सं0-43/1/71-कार्मिक-1, दिनाँक 5-6-81
3-अधिष्ठान में कमी के कारण सेवा-	[1] शासनादेश सं0-43/1/71-

समाप्ति अन्तिम आगमन "प्रथम बहिर्गमन" के सिद्धान्त पर की जाय।	नियुक्ति-3, दिनांक 14-9-72
4-यदि किसी कर्मचारी की सेवायें असंतोषजनक कार्य/आचरण के कारण समाप्त की गई है और उसने न्यायालय/अधिकरण में वाद दायर किया है तब काउन्टर एफीडेविट में सेवा समाप्ति के कारणों का अवश्य उल्लेख इस आशय से किया जाय कि वे सेवा समाप्ति के "आधार" नहीं है। बल्कि "प्रेरक" है।	तदैव
5-निम्न कर्मचारियों के सम्बन्ध में एक माह की नोटिस या वेतन का प्रतिबन्ध लागू न होगा :- [अ] संविदा पर नियुक्ति [ब] पूर्णकालिक सेवायोजन में न हो। [स] जिन्हें आकस्मिक व्यय की धनराशि से अदायगी की जाती है। [द] कार्यप्रभारित [वर्कचार्ज] अधिष्ठान में समायोजित। [य] पुनर्नियुक्ति के मामले में। [र] निर्दिष्ट अवधि, के लिए सेवायोजित। [ल] अल्पकालिक व्यवस्था/रिक्तियों में सेवायोजित।	उ०प्र० अस्थायी सरकारी सेवक [सेवा समाप्ति] नियमावली, 1975 का नियम-4 ।

परिशिष्ट-दो

आरोप-पत्र का प्रारूप

कार्यालय [का नाम]....................

सेवा में,

श्री........[आरोपित सेवक का नाम एवं पदनाम]........

एतद्द्वारा आपके विरुद्ध निम्नलिखित आरोप लगाए जाते हैं,

[1] आप दिनांक..........से/तक.........[पदनाम].......पद पर कार्यरत हैं/थे, तथा आपका............ कार्य/दायित्व था। दिनांक.........को या उसके लगभग या दिनांक..........से दिनांक.........तक आपने ....[दुराचरण या दुर्व्यवहार का विवरण] किया। इस प्रकार आपने सरकारी कर्मचारी आचरण नियमावली, 1956 [या अन्य जो नियमावली लागू होती हो] के नियम ....का उल्लंघन किया अथवा शासनादेश या आदेश सं0..........का उल्लंघन किया।

इस आदेश के समर्थन में निम्नलिखित साक्ष्यों पर विचार करना प्रस्तावित है-

[1] साक्षी श्री..........

[2] दस्तावेजी साक्ष्य...........

[2] कि आप......................[उपरोक्तानुसार]।

इस आरोप के समर्थन में............

[3] कि आप..................

इस आरोप के समर्थन में..................

[जितने आरोप हों उनका उपरोक्त ढंग से उल्लेख किया जाएगा एवं उसके नीचे साक्ष्यों का विवरण लिखा जाएगा।]

आपसे अपेक्षा की जाती है कि दिनांक............को या उसके पूर्व प्रत्येक आरोप के उत्तर में अपने बचाव का लिखित-कथन प्रस्तुत करें। यदि उक्त तिथि तक अधोहस्ताक्षरी को आपका कोई लिखित-कथन प्राप्त नहीं होता है तो यह उपधारणा की जाएगी कि आपको ऐसा कोई कथन प्रस्तुत नहीं करना है एवं आपके विरूद्ध एकतरफा जाँच कार्यवाही करके, आपके मामले में तदनुरूप आदेश पारित कर दिया जाएगा।

आपसे यह भी अपेक्षा की जाती है कि लिखित-कथन देने के साथ ही आप अधोहस्ताक्षरी को लिखित सूचना देवें कि क्या आप व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर चाहते हैं?

यदि आप किसी साक्षी को परीक्षित करना या प्रतिपरीक्षा करना चाहते हों तो अपने लिखित-कथन के साथ उन साक्षियों के नाम पते भी प्रस्तुत करें। संक्षेप में यह भी बताएं कि वे साक्षी किस बिन्दु पर साक्ष्य देने हेतु अपेक्षित हैं।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर एवं पदनाम
अनुशासनिक प्राधिकारी	जाँच अधिकारी
जाँच अधिकारी	

(नोट:- (i) उचित होगा यदि आरोप के उक्त प्ररूप में "आपके मामले में तदनुरूप आदेश पारित कर दिया जाएगा" के स्थान पर "आपके विरूद्ध एकतरफा कार्यवाही करके, तदनुरूप आदेश किया जाएगा" लिखा जाए।

(ii) यदि आरोप-पत्र, अनुशासनिक प्राधिकारी से अन्यथा किसी प्राधिकारी या जाँच अधिकारी ने विरचित किया हो तो उपरोक्त ढंग से जाँच अधिकारी एवं अनुशासनिक प्राधिकारी के हस्ताक्षर होंगे। परन्तु यदि अनुशासनिक प्राधिकारी ने स्वयं ही आरोप विरचित किया हो तो सिर्फ उन्हीं का हस्ताक्षर होगा।)

परिशिष्ट-तीन
साक्षी को समन

सेवा में,

श्री........[साक्षी का नाम व पता]...................
....

मेरे समक्ष विचाराधीन विभागीय जाँच सं0.........., जो श्री........[आरोपित सेवक का नाम]..........के विरुद्ध है, में मुझे प्रतीत होता है कि यह संभाव्य है कि आप अभियोजन/बचाव पक्ष के लिए तात्विक साक्ष्य दें या कोई दस्तावेज या अन्य चीज पेश करें।

इसलिए आपको समन किया जाता है कि ऐसे दस्तावेज या चीज को पेश करने, या इस विषय में आप जो कुछ जानते हों, साक्ष्य देने के लिए मेरे समक्ष दिनांक........को दिन में........ बजे.......[स्थान का नाम].......पर हाजिर हों।

तिथि:

[हस्ताक्षर]
जाँच अधिकारी

निलम्बन आदेश का प्ररूप

उत्तर प्रदेश शासनादेश सं0 24/38/1976-कार्मिक-1, दिनांक 13 अगस्त, 1976 में निलम्बन आदेश का प्ररूप, जो शासनादेश सं0 15/81/81-कार्मिक-1, दिनांक 17 नवम्बर, 1981 द्वारा संशोधित किया गया है, इस प्रकार है,

उत्तर प्रदेश शासन[1]

...........अनुभाग

संख्या............

दिनांक...........

आदेश

श्री..........[नाम व पदनाम]..........को जिनके विरूद्ध निम्नलिखित आरोपों के संबंध में अनुशासनिक कार्यवाही प्रस्तावित है, एतद्द्वारा तात्कालिक प्रभाव से निलम्बित किया जाता है:-

[1][2]

[2]

[3]

[4]

2· निलम्बन की अवधि में श्री...............को वित्तीय नियम संग्रह, खण्ड-2, भाग 2 से 4 के मूल नियम 53 के प्राविधानों के अनुसार जीवन-निर्वाह भत्ते की धनराशि अर्द्ध वेतन पर देय अवकाश

---

1 -ऐसे मामले में जिनके नियुक्ति प्राधिकारी राज्यपाल नहीं है, वहाँ सम्बन्धित कार्यालय का नाम लिखा जाये।

2 -यहाँ आरोपों का संक्षिप्त विवरण लिखा जाये।

वेतन की राशि के बराबर देय होगी तथा उन्हें जीवन-निर्वाह भत्ते की धनराशि पर महँगाई भत्ता, यदि ऐसे अवकाश वेतन पर देय है, भी अनुमन्य होगा, किन्तु ऐसे अधिकारी को जीवन-निर्वाह भत्ते के साथ कोई महँगाई भत्ता अथवा महँगाई भत्ते का उपान्तिक समायोजन प्राप्त नहीं था। निलम्बन के दिनांक को प्राप्त वेतन के आधार पर अन्य प्रतिकर भत्ते भी निलम्बन की अवधि में इस शर्त पर देय होंगे, जब इसका समाधान हो जाए कि उनके द्वारा उस मद में व्यय वास्तव में किया जा रहा है, जिसके लिए उक्त प्रतिकर भत्ते अनुमन्य हैं।

3· उपरोक्त प्रस्तर 2 में उल्लिखित मदों का भुगतान तभी किया जाएगा जबकि श्री·············इस आशय का प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करें कि वह किसी अन्य सेवायोजन, व्यापार, वृत्ति, व्यवसाय में नहीं लगे हैं।

नियुक्ति प्राधिकारी

राज्यपाल के आदेश से
आयुक्त एवं सचिव

श्री···············
·················
·················

परिशिष्ट-पाँच

एक मास का नोटिस देने पर सेवा समाप्ति

[ऐसे प्रकरणों के लिए प्रोफार्मा जहाँ नियुक्ति प्राधिकारी राज्यपाल है]

उत्तर प्रदेश सरकार

अनुभाग

कार्यालय ज्ञाप

संख्या---------------------------

दिनांक---------------------------

नियुक्ति अनुभाग-3 की अधिसूचना संख्या 20/1/74-नियुक्ति-3, दिनांक 11 जून, 1975 के साथ विज्ञापित उत्तर प्रदेश अस्थायी सरकारी सेवक [सेवा समाप्ति] नियमावली, 1975 के अन्तर्गत श्री. . . . . अस्थायी. . . . . [पदनाम] . . . . को यह नोटिस दिया जाता है कि उनकी सेवाओं की अब आगे आवश्यकता नहीं रह गई है और इस नोटिस की प्राप्ति के दिनांक से एक मास की समाप्ति पर उनकी सेवायें समाप्त समझी जायेंगी।

राज्यपाल की आज्ञा से,

सचिव।

[ऐसे प्रकरणों के लिए प्रोफार्मा जहाँ नियुक्ति प्राधिकारी राज्यपाल से भिन्न अधिकारी है]

-----------का कार्यालय

कार्यालय ज्ञाप

संख्या-----------------

दिनांक-----------------

नियुक्ति अनुभाग-3 की अधिसूचना संख्या 20/1/74-नियुक्ति-3, दिनांक 11 जून,1975 के साथ विज्ञापित उत्तर प्रदेश अस्थायी सरकारी सेवक [सेवा समाप्ति] नियमावली,1975 के अन्तर्गत अधोहस्ताक्षरकर्ता श्री...

अस्थायी...............[पदनाम]...........................

को नोटिस देते हैं कि उनकी सेवाओं की अब आगे आवश्यकता नहीं रह गई है और इस नोटिस की प्राप्ति के दिनांक से एक मास की समाप्ति पर उनकी सेवायें समाप्त समझी जायेंगी।

नियुक्ति प्राधिकारी का हस्ताक्षर
तथा पदनाम।

नोटिस के बदले एक महीने के वेतन पर सेवा समाप्ति

[ऐसे प्रकरणों के लिए प्रोफार्मा जहाँ नियुक्ति प्राधिकारी राज्यपाल है]

उत्तर प्रदेश सरकार

----------अनुभाग

कार्यालय ज्ञाप

संख्या-----------------------

दिनांक-----------------------

नियुक्ति अनुभाग-3 की अधिसूचना संख्या 20/1/74-नियुक्ति-3, दिनांक 11 जून,1975 के साथ विज्ञापित उत्तर प्रदेश अस्थायी सरकारी सेवक [सेवा समाप्ति] नियमावली,1975 के अन्तर्गत श्री..................

अस्थायी......................[पदनाम]...............

को नोटिस दिया जाता है कि उनकी सेवाओं की अब आगे और आवश्यकता नहीं रह गई है और उनकी सेवायें इस नोटिस की प्राप्ति के दिनांक से समाप्त समझी जायेंगी और यह निर्देश दिया जाता है कि नोटिस की एक मास की प्राविधानित अवधि के लिए उसी पद पर अपने वेतन तथा भत्ते, यदि कोई हों, की धनराशि के बराबर धन के दावेदार होने के हकदार होंगे, जिस दर पर उनकी अपनी सेवासमाप्ति से ठीक

पूर्व पा रहे थे।

राज्यपाल की आज्ञा से,
सचिव।

[ऐसे प्रकरणों के लिए प्रोफार्मा जहाँ नियुक्ति प्राधिकारी राज्यपाल से भिन्न अधिकारी है]

----------------का कार्यालय

कार्यालय ज्ञाप

संख्या-----------------------

दिनांक--------------------

नियुक्ति अनुभाग-3 की अधिसूचना संख्या 20/1/74-नियुक्ति-3, दिनांक 11 जून, 1975 द्वारा विज्ञप्ति उत्तर प्रदेश अस्थायी सरकारी सेवक [सेवा समाप्ति] नियमावली, 1975 के अन्तर्गत अधोहस्ताक्षरकर्ता श्री.......................अस्थायी................ [पदनाम].....................को नोटिस देते हैं कि उनकी सेवाओं की अब आगे और आवश्यकता नहीं रह गई है और उनकी सेवायें इस नोटिस की प्राप्ति के दिनांक से समाप्त समझी जायेंगी और यह निदेश देते हैं कि नोटिस की एक मास की प्रतिबंधित अवधि के लिए उसी दर पर अपना वेतन और भत्ते, यदि कोई हों, की धनराशि के बराबर धन के दावेदार होने के हकदार होंगे, जिस दर पर वह उनको अपनी सेवा समाप्ति के ठीक पूर्व पा रहे थे।

नियुक्ति प्राधिकारी के हस्ताक्षर
तथा पदनाम।

नोटिस की शेष अवधि का वेतन देकर सेवा समाप्ति

[ऐसे प्रकरणों के लिए प्रोफार्मा जहाँ नियुक्ति प्राधिकारी राज्यपाल हैं]

उत्तर प्रदेश सरकार

--------अनुभाग

कार्यालय ज्ञाप

संख्या-----------------------

दिनांक-----------------------

कार्यालय ज्ञाप संख्या ---------------------------दिनांक के क्रम में तथा नियुक्ति अनुभाग-3 की अधिसूचना संख्या 20/1/74-नियुक्ति-3, दिनांक 11 जून, 1975 द्वारा विज्ञापित उत्तर प्रदेश अस्थायी सरकारी सेवक [सेवा समाप्ति [नियमावली, 1975 के अन्तर्गत श्री·················अस्थायी [पदनाम]····················को नोटिस दिया जाता है कि उनकी सेवायें इस नोटिस की प्राप्ति के दिनांक से समाप्त समझी जायेंगी और यह निदेश दिया जाता है कि सन्दर्भित कार्यालय ज्ञाप दिनांक····················में दिए गए एक महीने के नोटिस की शेष अवधि के लिए उसी दर पर अपने वेतन तथा भत्ते, यदि कोई हो, की धनराशि के बराबर धन के दावेदार होने के हकदार होंगे, जिस दर पर वह उनको अपनी सेवा समाप्ति से ठीक पूर्व पा रहे थे।

राज्यपाल की आज्ञा से,

सचिव।

[ऐसे प्रकरणों के लिए प्रोफार्मा जहाँ नियुक्ति प्राधिकारी राज्यपाल से भिन्न अधिकारी है]

---------------का कार्यालय

कार्यालय ज्ञाप

संख्या-----------------------

दिनांक-----------------------

कार्यालय ज्ञाप संख्या* -------------------दिनांक-----

----

*(उस कार्यालय ज्ञाप का नम्बर तथा दिनांक लिखा जाय जिसके द्वारा एक महीने का नोटिस दिया गया था।)

के क्रम में तथा नियुक्ति अनुभाग-3 की अधिसूचना संख्या 20/1/74-नियुक्ति-3, दिनांक 11 जून, 1975 के साथ विज्ञापित उत्तर प्रदेश अस्थायी सरकारी सेवक [सेवा समाप्ति] नियमावली, 1975 के अन्तर्गत अधो-हस्ताक्षरकर्ता श्री..........................अस्थायी..................[पदनाम]..................को नोटिस देते हैं कि उनकी सेवायें इस नोटिस की प्राप्ति के दिनांक से समाप्त समझी जायेंगी और यह निदेश देते हैं कि सन्दर्भित कार्यालय द्वारा दिनांक..................में दिए गए एक महीने के नोटिस को शेष अवधि के लिए उसी दर पर अपने वेतन तथा भत्ते, यदि कोई हों, की धनराशि के बराबर धन के दावेदार होने के हकदार होंगे जिस दर पर वे उनको अपनी सेवा समाप्ति के ठीक पूर्व पा रहे थे।

नियुक्ति प्राधिकारी के हस्ताक्षर
तथा पदनाम।

परिशिष्ट—छ:

प्रतिलिपि शुल्क

विभागीय जांच में सरकारी सेवक, यदि किसी दस्तावेज की प्रतिलिपि प्राप्त करना चाहता है तो उससे नियत शुल्क* जमा कराकर दस्तावेज की प्रतिलिपि निर्गत की जानी चाहिए। परन्तु ऐसे गोपनीय दस्तावेजों की प्रतिलिपियां निर्गत नहीं की जानी चाहिए जिनका निर्गत होना शासन के लिए हानिकारक हो। यदि सम्बन्धित नियमावली में प्रतिलिपि शुल्क की दरें नियत की गई हों तो उसके अनुरूप शुल्क जमा कराकर प्रतिलिपि निर्गत की जानी चाहिए। यदि प्रतिलिपि की दरें नियत न की गई हों, तो निम्नलिखित दर पर शुल्क लिया जाएगा* :—

1. 1500 शब्दों तक की प्रतिलिपि का शुल्क रु0 0.50
2. 1500 शब्दों से अधिक प्रत्येक 300 शब्दों के लिए शुल्क रु0 0.12 अतिरिक्त

प्रत्येक विवरण एवं रिपोर्ट आदि को अलग दस्तावेज मानते हुए अलग-अलग शुल्क लिया जाना चाहिए। यदि पुस्तक, रजिस्टर एवं नक्शे की प्रतिलिपि दी जानी हो तो कार्यालयाध्यक्ष द्वारा उचित शुल्क नियत किया जाएगा*।

प्रतिलिपि शुल्क पहले ही नकद लेकर सम्बन्धित लेखा मद में जमा कर दिया जाना चाहिए। प्रतिलिपि, कार्यालय के किसी लिपिक से, अतिरिक्त पारिश्रमिक दिए बगैर, तैयार कराई जाएगी।*

---

* उत्तर प्रदेश का शासनादेश सं0–4135/11–339–40, दिनांकित 23-10-1940

	पृष्ठ संख्या
अधिकरण	209
-असेसर की नियुक्ति	211
-आरोपों में संशोधन	211
-का संगठन	210,211
-को मामले प्रेषित करने के निदेश	209
-जाँच की प्रक्रिया	212
-मामले का विवरण	210
-विधि व्यवसायी की नियुक्ति	211
अधिष्ठायी	6
अंतरिम निलम्बन	215
अनन्तिम नियुक्ति	12
अनुशासनिक प्राधिकारी का विनिश्चय	135
अपील	
-अपवर्जन	153
-अवधि	151,152
-व्यक्तिगत सुनवाई	152
-विचारणीय बातें	154
अभ्यावेदन	19
-का उचित अवसर	84,96
अर्थदण्ड	44,48
-वसूली	48

विषयानुक्रमणिका

अस्थायी पद

-परिभाषा 4

अस्थायी सेवक की सेवा समाप्ति 231

-अन्तिम आवक प्रथम जावक पद्धति 233

-अपवाद 232

-असंतोषप्रद कार्य की सूचना पर 234

-आदेश की प्रकृति का विनिश्चय 238

-केन्द्रीय सिविल सेवाओं में 233

-जाँच की प्रकृति 235

-नोटिस की अवधि 231

-विभागीय जाँच बन्द होने पर 242

आरोप-पत्र 93

-अपेक्षाएं 93

-तामील 101

-प्रारूप 94

-युक्तियुक्त अवसर 95,96

-विरचित करने की शक्ति 95,107

-शक्ति का प्रत्यायोजन 95,107

-संशोधन 95

आरोपित सेवक

-लिखित कथन 104,106

-दोष स्वीकृति 105

-समुचित अवसर 104

-साक्ष्य 104

एकतरफा जाँच 102

-अपेक्षाएं 102,103

-उदाहरण 103

औपचारिक जाँच	71
कदाचार	18
चिकित्सीय प्रमाण-पत्र का प्रपत्र	7
जाँच अधिकारी	
-नियुक्ति	107-110
-परिवर्तन	110
जाँच आसन्न होना	218
जाँच के अपवाद	175
जाँच प्रक्रिया	69,72,75, 81,84
जाँच रिपोर्ट	
-अन्तर्वस्तु	133
-बाध्यता	134,135
-संघटक	133
जीवन निर्वाह भत्ता	226
दण्ड	43
-अर्धदण्ड	44
-आनुपातिक	150
-एक साथ दो दण्डों का अधिरोपण	51
-महादण्ड	43,51
-लघुदण्ड	43
दण्डादेश	
-विचारणीय बातें	149
-संसूचना	150

क्षतारोध पार करने से रोकना 50

दाण्डिक विचारण एवं विभागीय जाँच 188

-अन्तर 192

-प्रयोजन 189

दुराचरण

-उदाहरण 37

-तात्पर्य 36,37

-निजी जीवन में 38

-पदीय कर्तव्यों से असम्बन्धित कार्य और लोप 39

-परिभाषा 35

-परीक्षण 88

-पश्चातवर्ती 200,206

-पूर्ववर्ती 40

दूसरी जाँच 184

-कब 184

-दोहरा परिसंकट का नियम 185

धारणाधिकार 5,61

-परिभाषा 7

-पुनर्जीवित होना 12

-निलम्बन 10

-समाप्ति 12

न्यायाधीश को पद से हटाना 18

न्यायिक अधिकारी

-के विरुद्ध जाँच 194,212

-प्राधिकार 194

निजी सेवा 1

निलम्बन

-अभिप्राय 214
-आदेश का प्रभाव 222,223
-आदेश की अवधि 225
-आपराधिक आरोप लगाने पर 220
-की शक्ति का प्रयोग 220
-जाँच आसन्न होना 218
-जीवन निर्वाह भत्ता 226
-दोषसिद्ध होने पर निलम्बन 222
-प्रकार 214

-अंतरिम निलम्बन 215
-कानूनी उपबन्ध 217
-दाण्डिक 223
-विभागीय जाँच के दौरान 217
-सिद्वान्त 216

-प्रभाव 219
-भूतलक्षी 221

नियत अवधि 6
नियंत्रक महालेखापरीक्षक को पद से हटाना 18
निर्वाचन आयुक्त को पद से हटाना 19
नैसर्गिक न्याय

-अपवाद 110,167
-सिद्वान्त 97,159

पदच्युति 60

-अभिप्राय 60
-उदाहरण 63
-परीक्षण 62

पदों का वर्गीकरण 4

पदोन्नति रोकना 50

परमाधिकार 20

परिवीक्षा 5

परिवीक्षा अवधि के दौरान सेवा समाप्ति 61

प्राधिकृत टिप्पण 254

प्रतिनियुक्ति 11

प्रसाद का प्रत्यायोजन 22

प्रसाद प्रयोग 20,22

प्रसाद का विस्तार 18

प्रसाद का सिद्धान्त 17

प्रारम्भिक जाँच

- -उदाहरण 90
- -प्रक्रिया 91
- -प्रयोजन 66,89,90

प्रास्थिति 2

पूर्ववर्ती दुराचरण 40

- -अनुशासनिक कार्यवाई 41
- -उदाहरण 40

भूतलक्षी निलम्बन 221

महत्वपूर्ण सेवा शर्तें 13

महादण्ड 43,51

- -अपवाद 52
- -अभ्यावेदन का उचित अवसर 84,96
- -जाँच प्रक्रिया 75,81,84
- -पदच्युति 60
- -प्रकार 43
- -रैंक में अवनति 52

-वैकल्पिक रेखांकित 67
-सेवा से हटाना 60
-सुरक्षोपाय 51
-सुरक्षोपाय का उल्लंघन 52

युक्तियुक्त अवसर 77,98,99

रक्षा सेवा 3

रैंक का तात्पर्य 56

रैंक में अवनति 52

-आशय 53
-उदाहरण 54
-परिस्थिति 59
-परीक्षण 53

लघु दण्ड 43

-अधिरोपण 47
-अभ्यावेदन का उचित अवसर 71
-अर्धदण्ड 48
-एक साथ दो लघु दण्ड-कब 72
-औपचारिक जाँच 71
-जाँच प्रक्रिया 69,72
-दण्डादेश का कारण 72
-दुराचरण की लिखित सूचना 71
-दक्षतारोध पार करने से रोकना 50
-पदोन्नति रोकना 50
-प्रकार 43
-लोक सेवा आयोग से परामर्श 73
-वेतन वृद्धि रोकना 49
-वेतन से वसूली 51

-स्पष्टीकरण का अवसर	71
-सेंसर	47
वाह्य सेवा	9,14
विभागीय जाँच	156
-अपवाद	175
-अपेक्षाएं	156
-अभिलेखों का निरीक्षण	98
-आरोपों की सूचना	77
-कौन जाँच करा सकता है	86
-जाँच अधिकारी का परिवर्तन	110
-जाँच अधिकारी की नियुक्ति	107,108, 109,110
-न्यायिक अधिकारी के विरुद्ध	194,212
-प्रक्रम	84,85
-प्रकृति	77
-प्रस्तुति अधिकारी	111
-बचाव सहायक	111
-कब विधि-व्यवसायी की सहायता ली जा सकती है	112
-सम्बन्धित सेवानियमावलियाँ	79
-सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर	77,98,99
वेतन वृद्धि रोकना	49
-कब महादण्ड होगी	49
वेतन से वसूली	51
वैकल्पिक सेवानिवृत्ति	61,67, 248
-आशय	67

विभागीय जाँच
- -चुनौती के आधार 256
- -दण्डस्वरूप या अन्यथा 68,248
- -परीक्षण 68,249
- -पदोन्नति के पश्चात् 225
- -लोकहित 248,252,253

शास्ति 19

सब्स्टेंटिव 5

संवर्ग 4

संविदा 2

सरकारी सेवक
- -आचरण 27,35
- -कर्तव्यपरायणता 36
- -दुराचरण 35,36,37,38
- -परिभाषा 2
- -पूर्ववर्ती दुराचरण 40
- -सत्यनिष्ठा 36

सरकारी सेवा 1,4

स्थानान्तरित 9

स्थानापन्न 5

स्थायीपद
- -परिभाषा 4

सावधिपद 8

साक्ष्य 114
- -अधिमूल्यन 129,131

-अधिसंभाव्यता की प्रबलता 129,133
-टेपरिकार्ड का 126
-प्रक्रिया 115
-प्रतिपरीक्षा 125
-प्राइवेट दस्तावेज 127
-युक्तियुक्त अवसर 121,124
-लेखन की प्रक्रिया 122,132
-लोक दस्तावेज 127
-साक्षी का तलब किया जाना 116,121,124
-दायित्व 116,121
-समन का निष्पादन 117
-समन का प्ररूप [परिशिष्ट-तीन] 116
सिविल सेवक को पद से हटाना 19
सिविल सेवा 3
सेन्ट्रलाइज सर्विसेज 70
सेवाकाल में दुराचरण 200
सेवानिवृत्त होने पर जाँच 199
सेवा विधिशास्त्र 8
सेवानिवृत्त 12
सेवाशर्तें 1
सेवा संवर्ग 10
सेवा से हटाना 60
-अस्थायी सेवक 65
-उदाहरण 63
-परीक्षण 62
सैसर
-आशय 47
-उदाहरण 47